अलबेरूनी का भारत

अलबेरूनी का भारत

(पहला भाग)

अनुवादक
सन्तराम बी. ए.

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, प्रयाग

प्रथमवार] [मूल्य १।)
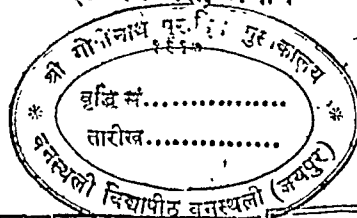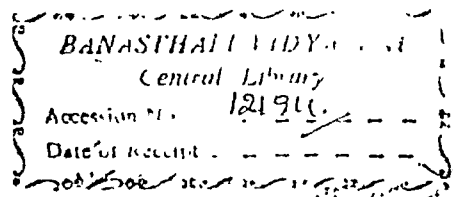
अनुवादक का निवेदन।

अलबेरूनी कौन था, उसने यह पुस्तक कब और क्यों लिखी, इसमें किन किन विषयों का वर्णन है इत्यादि सभी बातें पाठक सम्पादकीय भूमिका में पढ़ेंगे। इस पुस्तक के महत्त्व के विषय में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि मूल अरबी पुस्तक का सम्पादन और फिर उसका अँग्रेज़ी अनुवाद स्वयम् भारत सरकार ने एक बहुत बड़े जर्मन विद्वान् से कराया है। इस विद्वान् का नाम है डाकृर एडवर्ड सी० सचौ। आप के शुभ नाम के साथ निम्नलिखित उपाधिमाला है:—

Dr. Edward C. Sachau, Professor in the Royal University of Berlin and Principal of the Seminary for Oriental Languages; Member of the Royal Academy of Berlin, and Corresponding member of the Imperial Academy of Vienna; Honorary member of the Asiatic Society of Great Britain and Ireland, London, and of the American Oriental Society, Cambridge, U. S. A.

जैसे अलबेरूनी एक बहुत बड़ा पण्डित था वैसे ही सचौ महाशय भी अरबी, फ़ारसी, यूनानी, संस्कृत और अँग्रेज़ी आदि भाषाओं के विद्वान् हैं। यह बात आपकी लिखी भूमिका और टीका से स्पष्ट प्रमाणित होती है। पाठकों से हमारा सानुरोध निवेदन है कि अलबेरूनी की मूल पुस्तक को आरम्भ करने के पहले एक बार भूमिकान्तर्गत सभी विषयों का अवश्य पाठ करलें। इससे पुस्तक के समझने में उन्हें बहुत सहायता मिलेगी।

पुस्तक के अस्सी परिच्छेदों के विषयों की बाँट इस प्रकार से हो सकती है:—

पहला परिच्छेद—साधारण भूमिका।

दूसरे से ग्यारहवें परिच्छेद तक—धार्मिक, दार्शनिक, और ऐसे ही विषय।

बारहवें से सत्रहवें परिच्छेद तक—साहित्य और छन्दःशास्त्र, विचित्र रीतियाँ और मूढ़ विश्वास।

अठारहवें से इकत्तीसवें परिच्छेद तक—वर्णनात्मक, गणित-सम्बंधी, और परम्परागत अर्थात् पौराणिक भूगोल।

बत्तीसवें से बासठवें परिच्छेद तक—काल-निर्णय-विद्या और ज्योतिष। इनमें धार्मिक पारम्पर्य तथा नारायण, वासुदेव-प्रभृति का भी समावेश है।

तरेसठवें से छयत्तरवें परिच्छेद तक—नीति, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, त्योहार और उपवास के दिन।

सतत्तरवें से अस्सीवें परिच्छेद तक—फलित-ज्योतिष-सम्बंधी विषय।

इस खण्ड में हमने डाकूर सचौ की सारगर्भित भूमिका और अलबेरूनी की पुस्तक के प्रथम ग्यारह परिच्छेदों का ही अनुवाद दिया है। यदि आर्य्य-भाषा-प्रेमियों ने इसे अपनाया तो अवशिष्ट भाग का भाषान्तर भी शीघ्र ही हो जायगा। जहाँ तक हमें मालूम है हम कह सकते हैं कि इस ग्रन्थ-रत्न का अभी तक किसी भी अन्य भारतीय भाषा में अनुवाद नहीं हुआ। राष्ट्र-भाषा के साहित्य-भाण्डार को भरने के उद्देश से ही हमने इस कठिन कार्य्य में हाथ डाला है। सच्चिदानन्द परमेश्वर हमारी सहायता करें!

कृषि-आश्रम,
पट्टी—ज़ि० लाहोर।

सन्तराम बी० ए०।

सम्पादकीय भूमिका।

हिन्दुओं के भारत पर अरबी भाषा में किसी पुस्तक का होना साहित्य संसार में एक अनोखी और अत्यन्त असंगत बात है। यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि .कुरान की भाषा में लिखने वाला लेखक इतने उदार विचार रक्खे कि हिन्दुओं को अपने अध्ययन का प्रिय विषय बना कर उन पर एक पुस्तक लिखे। प्राचीन काल के अरबी लोग हाथ में तलवार लेकर अपने मत को फैलाना, और विदेशों को जीत कर वहाँ बस्तियाँ बनाना .खूब जानते थे; परन्तु उन्होंने पुरातत्व-सम्बन्धी अन्वेषणों पर कभी ध्यान नहीं दिया, और यह जानने का उन्हें कभी विचार ही न हुआ कि उनके प्रवेश के पूर्व उन देशों में क्या क्या हो चुका था। मिस्र, सिरिया, एशिया-माइनर, स्पेन आदि की दशा मुसलमानों का उनमें प्रवेश होने के पहले क्या थी इस विषय में जो कुछ भी उन्होंने लिखा है वह सारा का सारा गड़बड़ है। उसका बहुत थोड़ा अंश छोड़ कर शेष सब ऐतिहासिक दृष्टि से किसी काम का नहीं। उन लोगों का विचार था कि इसलाम ही सारे संसार में फैलेगा, जो कुछ इसलाम के पूर्व था और जो कुछ इसलाम के बाहर है वह सब शैतान का काम है—और सदैव के लिए नारकी है। अतः मुसलमान लोग उस पर जितना कम ध्यान देंगे उतना ही उन की आत्माओं के कल्याण के लिए अच्छा होगा।

इसलाम की शासक प्रवृत्ति का परिचय उस मुसलमान बादशाह के कार्यों से ही भली भाँति मिल जाता है जिसके शासन-काल में कि यह पुस्तक लिखी गई थी। ग़ज़नी के महान् महमूद का

जो चित्र भारतीय इतिहास खींचता है वह देवालयों और देवमूर्तियों के सर्वनाश का ही चित्र है। इस पर भी उसकी विजयिनी पताका की छत्र-छाया में एक ऐसा शान्त पण्डित, आध्यात्मिक रण-क्षेत्र का एक ऐसा वीर काम कर रहा था जो कि हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध करने में प्रवृत्त न होकर उन से कुछ सीखने, संस्कृत तथा संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करने, और संस्कृत पुस्तकों का अरबी अनुवाद करने में जी-जान से यत्नवान् था। इस्लाम की श्रेष्ठता पर पूर्ण विश्वास रखते हुए भी वह भारतीय मस्तिष्क की उपज—साहित्य, और कलाकौशल की अद्भुत कृतियों—की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करता था। जो कोई मानसिक युद्ध-क्षेत्र में हिन्दुओं का सामना करना चाहता है और उनके साथ न्याय और निरछलता के भाव से वर्ताव करने की इच्छा रखता है उसके लिए पहले उनकी नीति, उनके विशेष आचार-विचार और रीति-रिवाजों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। इसी सिद्धान्त को सामने रख कर उस विद्वान् ने भारतीय सभ्यता का एक व्यापक वर्णन तैयार किया है। इसमें सर्वत्र उसने उस सभ्यता के वास्तविक तत्त्व को समझने और एक निष्पक्ष दर्शक की भांति उसे यथार्थ रूप में प्रकट करने का यत्न किया है। पुस्तक का नाम, जो कि सूक्ष्म विवेक के कारण कुछ भद्दा सा प्रतीत होता है, यह है:—

"हिन्दुओं के सब प्रकार के, क्या उपादेय और क्या हेय, विचारों का एक सत्य वर्णन।"

كتاب ابوالريحان محمد ابن احمد البيرونى فى تحقيق
ما للهند من مقولة مقبولة فى العقل او مرذولة -

इस पुस्तक का विषय मुसलमानों के लिए तो नवीन था ही, परन्तु योरुप में इतने दिनों से संस्कृत की चर्चा होने पर भी, आज

भी संस्कृत के विद्वान् अलबेरूनी की इस पुस्तक को देखने के अभिलाषी हैं, और इसके सम्पादन के लिए आग्रह कर रहे हैं।

जिस समय हमारा मुसलमान ग्रंथकार भारत में आया भारतीय सभ्यता सर्वथा लोप हो चुकी थी और आर्य्य जाति चिरकाल से अपनी प्राचीन अवस्था को भूल चुकी थी। अलबेरूनी ने भारत में आकर एक वैदेशिक सभ्यता को पाया जो बड़ी विचित्र और आश्चर्य्यकारिणी थी। परन्तु इस सभ्यता को भी विदेशी आक्रामक हड़प किया चाहते थे। अलबेरूनी का समय, अर्थात् ग़ज़नी के महान् महमूद का काल, भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता का अन्तिम काल था। इसी समय से मुसलमानी शासन का आरम्भ हुआ। यह एक ऐतिहासिक उत्कर्ष का प्रारम्भ था जो कि अन्त में सारे भारतीय प्रायद्वीप में अँग्रेज़ी राज्य की स्थापना के साथ समाप्त हुआ। महमूद के पहले भी विदेशी आक्रामकों ने भारत के कई भागों को विजय किया था; परन्तु पीछे से भारतीय सभ्यता ने स्वयम् उन्हें परास्त कर लिया—यहाँ तक कि वे पूरे पूरे भारतीय बन गये, जिस प्रकार कि गिलज़ई लोग—जो वास्तव में पठान थे—अफ़ग़ानिस्तान में जाकर अफ़ग़ान हो गये हैं। परन्तु मुसलमान लोग भारत में आकर भी वही रहे जो यहाँ आने के पहले थे। यद्यपि उन्होंने विजित जाति की भाषा तथा अन्य कई रीति-रिवाज ग्रहण कर लिये पर धर्म्म और नीति में वे इस देश के लिए विदेशी ही बने रहे। जिस भारत का अलबेरूनी ने चित्र खींचा है वह उस समय का भारत है जब कि उसका राष्ट्रीय अस्तित्व मिटा चाहता था। उसकी सभ्यता उस समय सारतः वैदिक थी। बौद्ध धर्म्म उस समय भारत से सर्वथा निर्वासित नहीं हो

चुका था। कई स्थानों में तब तक भी वह एक राजनैतिक शक्ति था। पर अलबेरुनी ने उसे आप नहीं देखा। अलबेरूनी के पूर्व जो विदेशी भारत में आये और जिन्होंने इसके विषय में कुछ लिखा वे केवल दो व्यक्ति थे। उन में से एक तो यूनानी राज-सचिव था और दूसरा चीन देश का एक बौद्ध यात्री। ईसा के कोई २९५ वर्ष पूर्व सम्राट सिल्यूकस (प्रथम) ने मगस्थनीज़ को अपना दूत बनाकर पाटलि पुत्र अर्थात् पटने में महाराज चन्द्रगुप्त के पास भेजा था। इस राजदूत ने प्रायः सारे उत्तर भारत का भ्रमण किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह जानकारी के अच्छे अच्छे स्रोतों तक पहुँचा था। पर दुर्भाग्य से उसके देशभाइयों ने उस के अत्युत्तम वृत्तान्त की क़दर न की। इसी कारण आज हमें उसके बहुत थोड़े भाग मिलते हैं। जिस समय मगस्थनीज़ आया क्या वह भारतीय सभ्यता की बाल्यावस्था थी? कदापि नहीं। भारतीय सभ्यता बहुत पुरानी है। मगस्थनीज़ के वृत्तान्त के कई अंश पुराणों से लिये हुए हैं, और पुराण भारतीय सभ्यता के आदि स्तर को नहीं दर्शाते।

अलबेरूनी के चार सौ वर्ष पहले ह्यून-त्साङ्ग नामक एक चीनी यात्री भारत में आया था। उसने जो कुछ यहाँ देखा और सुना उसी के आधार पर घर लौटकर अपना भ्रमण-वृत्तान्त लिख डाला। उस समय में उस के अग्रगामी फ़ाहियान (सन् ३९९ से ४१३ तक) और सुङ्ग-युन (५०२ ई०) थे। उनकी पुस्तकें बड़े महत्व की हैं—विशेषतः भूगोल और इतिहास-सम्बन्धी विषयों में। ह्यून-त्साङ्ग ने ६२९ से ६४५ ईसवी तक भारत में भ्रमण किया।

यदि मुसलमान लोग अलबेरूनी की इस पुस्तक पर उचित गर्व करते हुए इसे अरबी साहित्य रूपी गगनमण्डल का एक सर्वोत्कृष्ट देदीप्यमान तारा समझें, तो हिन्दू भी इसे दैव की विशेष कृपा मान

सकते हैं ; क्योंकि एक सत्यप्रिय और परम सुशिक्षित मनुष्य उनके पूर्वजों की तत्कालीन सभ्यता का चित्र छोड़ गया है। पुस्तक की बहुत सी बातों के साथ वे सहमत न होंगे, इस की कई टीका-टिप्पणियों से उनके हृदयों को ठेस लगेगी, परन्तु उन्हें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसका उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्यों को जानना और उन्हें उनके यथार्थ रूप में प्रकट करना है। उन्हें इस बात को भी भूल नहीं जाना चाहिए कि कई अन्य स्थलों पर उसने मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा भी की है।

पुस्तक कब और कहाँ लिखी गई।

जिस समय अलबेरूनी ने यह पुस्तक लिखी उस समय उसका सम्राट, महमूद—जिसने उससे (संवत् ४०८ हिजरी की बसन्त ऋतु में) मध्य एशिया में स्थित उसकी प्यारी जन्म-भूमि छुड़ा कर उसे अफ़ग़ानिस्तान में ला बसाया था—इस लोक में न था। उसकी मृत्यु २३ वीं रबी द्वितीय संवत् ४२१ हिजरी, तदनुसार बृहस्पति वार ३० एप्रिल १०३० ई० को हो चुकी थी। पुस्तक के हस्तलेख पर अरबी में एक नोट लिखा है जिस से ज्ञात होता है कि अलबेरूनी ने उसे ग़ज़नी नगरी में, पहली मुहर्रम ४२३ हिजरी, तदनुसार २९ दिसम्बर १०३१ ई० को, अर्थात् महमूद की मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद समाप्त किया था। इसलिए यह पुस्तक निश्चय ही ३० एप्रिल १०३० ई० और २९ दिसम्बर के बीच में किसी समय लिखी गई होगी। आन्तरिक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि पुस्तक ३० एप्रिल और ३० सितम्बर १०३० ई० के बीच में कभी लिखी गई थी। आश्चर्य है कि इतने थोड़े समय में ऐसी विस्तृत और व्यापक पुस्तक कैसे लिख ली गई ! इस के कई भाग पहले से ही उसके

पास अवश्य तैयार पड़े होंगे। जब अलबेरूनी ने यह पुस्तक लिखी वह ग्रीष्म १०३० ई० बड़ा ही क्षुब्ध समय था। सारा ग़ज़नी-साम्राज्य, जिसके अन्तर्गत उस समय फ़ारस, मध्य एशिया का पश्चिमी अर्धभाग, अफ़ग़ानिस्तान, और भारत के कई खण्ड थे, हिलता हुआ प्रतीत हो रहा था। जब राजनैतिक आंधी ने भयानक रूप धारण किया तो अलबेरूनी अपने अध्ययन के कमरे में घुसकर साहित्य-कार्य्य में मग्न हो गया। जब आंधी गुज़र गई तो फ़ौरन ही उसने अपना कार्य भी समाप्त कर दिया।

अपनी मृत्यु के पूर्व महमूद ने अपने पुत्र मुहम्मद को, जो कि बल्ख़ में निवास करता था, अपना उत्तराधिकारी नियत कर दिया था। नया सम्राट बल्ख़ से चल कर चालीस दिन में, अर्थात् कोई ९ जून को, ग़ज़नी की राजधानी में पहुँचा। इसके भाई मसऊद ने, जोकि इस्पहान में था, साम्राज्य के पश्चिमी अर्धभाग पर अधिकार जमालिया था। मुहम्मद ने इस विषय में मसऊद को लिखा, परन्तु उसने उत्तर में उसे फटकार बताई। तब मुहम्मद ने सेना लेकर हरात की ओर कूच किया ताकि वह भाई के साथ इस झगड़े को निपटावे। वह पहली रमज़ान को ताकिनाबाद नामक स्थान पर पहुँचा। यहीं पर उसने रोज़ों का महीना पूरा व्यतीत किया। परन्तु तीसरी शव्वाल (४ अक्तूबर) को जबकि वह मदिरापान से अन्धा हो रहा था, तब उसके ही सिपाहियों ने उस पर आक्रमण करके उसे बन्दी बना लिया। उसका चचा, कुमार यूसुफ़, और उसके पिता महमूद का प्रिय कर्म्मचारी अली खेशवन्द ही इस षड्यंत्र के दारमदार थे। ये लोग झट मसऊद से जा मिले और मुहम्मद को उसके सिपुर्द कर दिया।

मसऊद ने इस्पहान का प्रबन्ध करके रै, निशापुर, और हरात की ओर कूच किया। हरात में ही ये राजद्रोही उसे मिले। उसने

सब को दण्ड दिया। अली ख़ेशवन्द को झटपट मार डाला, यूसुफ़ को वन्दीगृह में फेंक दिया, और अपने भाई मुहम्मद की आंखें निकाल डालीं।

ज़ुलक़ाद मास (३१ अक्तूबर से २९ नवम्बर तक) में मसऊद अपने पिता के साम्राज्य का एक मात्र अधिकारी स्वीकृत हुआ। उसने शरद ऋतु हिन्दूकुश के उत्तर में व्यतीत की, फिर कुछ दिन वल्ख़ में ठहर कर ग़ज़नी की राजधानी में, ८ वीं जमादी द्वितीय, सन् ४२२ हिजरी (तदनुसार ३ जून १०३१ ई०) को, प्रवेश किया। मसऊद वही सम्राट् है जिस के नाम पर अलबेरूनी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अलक़ानूनुलमसऊदी' समर्पित की थी।

अलबेरूनी ने ये राजनैतिक उतार चढ़ाव सब देखे थे। तेरह वर्ष तक उसने महमूद की अपूर्व शक्ति और वैभव का अवलोकन किया था। जिस समय उसने यह पुस्तक लिखी उस समय उस की आयु ५८ वर्ष की थी।

अलबेरूनी ने कहां बैठ कर पुस्तक लिखी इसका पता केवल पुस्तक के अन्तिम पृष्ट पर के नोट से ही लगता है, कि हस्तलेख ग़ज़नी में समाप्त हुआ। उस समय ग़ज़नी एशिया की बड़ी बड़ी राजधानियों में से एक थी। यहां उसे सब प्रकार के हिन्दुओं से परामर्श लेने के यथेष्ट अवसर प्राप्त थे। यहां हिन्दू निवासियों की संख्या सम्भवत: बहुत अधिक होगी; क्योंकि काबुलिस्तान के अधिवासी हिन्दुओं तथा लड़ाई में क़ैद होकर आये हुओं के अतिरिक्त इस वैभव-शालिनी नगरी की ओर और भी बहुत से स्वतंत्र मनुष्य खिंच आये थे। ये लोग यहां सेवक, शिल्पी, और कारीगर बन कर उसी प्रकार मुसलमान विजेताओं के लिए मसजिदें और भवन बनाते थे जिस प्रकार कि दमिश्क़ में ख़लीफ़ा उमैया के कुल के लिए यूनानी शिल्पियों ने किया था।

इनके सिवाय उत्तरपश्चिमी भारत के प्रायः सभी भागों, सभी जातियों, और सभी वर्गों के प्रतिनिधि रूप सिपाही, अफ़सर, राजनीतिज्ञ, विद्वान, व्यापारी आदि भी वहां मौजूद थे।

केवल ग़ज़नी में बैठकर ही अलबेरूनी ने भारत का अध्ययन नहीं किया। उसने स्वयं भारत की यात्रा की और सम्भवतः कई वर्ष तक वह यहां भ्रमण करता रहा। ग़ज़नी और काबुल के अतिरिक्त उसने निम्नलिखित स्थान देखे थे:—

गन्दी (كندى) जो रिबातुल अमीर अर्थात् राजा के ठहरने का स्थान भी कहलाती है। शायद यह गन्दमक नामक स्थान है।

दुनपुर (دنپور) जोकि मेरे ख़याल में जलालाबाद है।

लमग़ान, पेशावर, वैहन्द या उदर, जेहलम, स्यालकोट, लाहौर, नन्दन, जोकि बालानाथ नामक प्रसिद्ध पर्वत पर एक दुर्ग है। यह पर्वत झेलम नदी पर झुका हुआ है और आजकल टिल्ला कहलाता है।

मन्दककूर (مندككور) या मन्दुकूर (مندهوكور) यह लाहौर के उत्तर में कोई कोट था।

तथा मुलतान।

अलबेरूनी ने केवल काबुल नदी की घाटी और पंजाब ही देखे थे। वह स्वयं लिखता है कि मैं हिन्दुओं के देश में इन स्थानों से आगे नहीं गया। इसलिए यह स्पष्ट है कि उसने सिंध और कशमीर नहीं देखे थे। दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर उस ने दो कोट देखे थे। एक का नाम वह राजगिरि और दूसरे का लहूर (لهور) लिखता है। ठीक पता नहीं चलता कि ये स्थान कहां थे।

मुलतान से अलबेरूनी का विशेष परिचय प्रतीत होता है। इस पुस्तक में कई बार इसका नाम आया है। एक स्थान पर वह मुलतान के जल-वायु का वर्णन करता है और दूसरे स्थान पर मुलतानी संवत्

के प्रारम्भ का उल्लेख है। तीसरी जगह वह मुलतान के हिन्दुओं के एक त्यौहार का वृत्तान्त लिखता है। उसे मुलतान के स्थानीय इतिहास और स्थल-विवरण का अच्छा ज्ञान था। यहाँ के दुर्लभ नामक एक विद्वान् का भी वह उल्लेख करता है। अन्त में वह लिखता है कि पुरशूर (پرشور) नामक स्थान में मैंने हिन्दुओं को शंख और ढोल बजा कर दिन का स्वागत करते देखा। उस समय हिन्दू-विज्ञान और विद्याओं के बड़े बड़े विश्व-विद्यालय कश्मीर और काशी आदि मुसलमानों के लिए दुर्गम थे।

अनुवादक रूप में ग्रंथकार का काम, और भारतीय विषयों पर उसकी पुस्तकें।

अनुवादक रूप में अलबेरूनी का काम दुहरा था। उसने संस्कृत से अरबी में और अरबी से संस्कृत में अनुवाद किये। वह मुसलमानों को भारतीय विद्याओं के अध्ययन का अवसर देना चाहता था, और साथ ही अरबी विद्या का हिन्दुओं में प्रचार करने की भी उसे उत्कट अभिलाषा थी। जिन पुस्तकों का उसने अरबी में अनुवाद किया है वे ये हैं:—

(१) कपिल का सांख्य।

(२) पतञ्जलि की पुस्तक।

(३) पौलिस (पौलस्त्य) सिद्धान्त, तथा

(४) ब्रह्म सिद्धान्त। ये दोनों पुस्तकें ब्रह्मगुप्त कृत हैं। अभी इन का अनुवाद समाप्त नहीं हुआ था कि उसने भारत पर पुस्तक लिखी।

(५) बृहत्संहिता, तथा।

(६) लघुजातकम्। ये दोनों पुस्तकें वराहमिहिर की बनाई हुई हैं। जब वह भारत पर अपनी पुस्तक लिख रहा था उसी समय वह

(१) उक्लैदस (यूक्लिड),

(२) टोलमी का अलमजस्ट (Almagest) और

(३) अस्तरलाब के निर्माण पर अपना एक निबंध,

भी संस्कृत श्लोकों में लिखता जा रहा था । सम्भवतः वह शब्दार्थ अपने पण्डितों को बता देता था, और वे उसे संस्कृत श्लोक में परिणत कर देते थे ।

वह पञ्चतंत्र का अरबी अनुवाद दुबारा करना चाहता था, क्योंकि पहला अनुवाद विश्वसनीय न था ।

हिन्दुओं में अरबी विद्या का प्रचार करने की उसे उत्कट अभिलाषा थी । इस का भारी प्रमाण यह भी है कि उसने कश्मीर के श्यावबल(?) के लिए अरबी—ज्योतिष पर एक छोटी सी पुस्तक लिखी और इस का नाम ब्रह्मगुप्त की प्रसिद्ध पुस्तक का अनुकरण करते हुए 'अरबी खण्ड खाद्यक' रक्खा ।

भारत पर पुस्तक लिखते समय उसने साथ ही निम्नलिखित और भी पुस्तकें तैयार कीं:—

(१) ब्रह्मगुप्त कृत सिद्धान्त के अरबी अनुवाद 'सिंधिन्द' पर, जिसका मुसलमान विद्वान प्रयोग करते थे, एक निबन्ध । उसका नाम है । جوامع الموجود لخواطر الهنود فی حساب التنجيم

(२) अल अरकन्द का नया संस्करण । यह ब्रह्मगुप्त कृत खण्ड खाद्यक का प्रचलित अरबी अनुवाद था । पुराना अनुवाद अरब लोगों को समझ नहीं पड़ता था । इसलिए उसने मूल संस्कृत के साथ मिला कर उसका परिशोधन किया ।

(३) हिन्दुओं के ग्रहणों की गणनाओं पर एक पुस्तक जिसे 'ख्यालुलकुसूफैन' कहते थे । (उसका इस पुस्तक में भी उल्लेख है ।)

(४) सिंध श्रौर भारत में शून्यों के साथ गिनने कि शैली श्रौर गणित पर एक निबंध ।

(५) हिन्दुश्रों की गणित सीखने की विधि पर ।

(६) यह बात दर्शाने के लिए एक पुस्तक कि गिनती में दर्जे के विषय में जो श्ररवी विधि है वह हिन्दुश्रों की विधि से श्रधिक शुद्ध है।

(७) हिन्दुश्रों के राशिक पर ।

(८) सङ्कलित पर ।

(९) ब्रह्मसिद्धान्त की गणित-सम्बन्धिनी विधियों का श्रनुवाद ।

(१०) हिन्दू-काल-निर्णय-विद्या के श्रनुसार समय का वर्तमान मुहूर्त्त मालूम करना ।

(११) इकहरे चान्द्र स्थानों से सम्बन्ध रखने वाले स्थिर तारों के निश्चय करने पर एक निबन्ध ।

(१२) हिन्दू ज्योतिषियों के उस पर किये हुए प्रश्नों के उत्तर ।

(१३) उसके पास काशमीर से श्राये हुए दस प्रश्नों के उत्तर ।

(१४) जीवन कितना लम्बा है यह हिसाब लगाने की हिन्दू-विधि ।

(१५) वराहमिहिर-कृत लघुजातकम् का श्रनुवाद ।

(१६) वामियान की दो मूर्तियों की कथा ।

(१७) नीलूफ़र की कथा ।

(१८) श्रल्पयार (?) का श्रनुवाद जो कि जघन्य रोगों पर एक निबंध है ।

(१९) वासुदेव के भावी श्रवतार पर एक निबंध ।

(२०) एक पुस्तक का श्रनुवाद जिसमें इन्द्रियों श्रौर बुद्धि द्वारा ज्ञातव्य सकल पदार्थों का वर्णन है । मेरी राय में इससे उसका तात्पर्य्य सांख्य से है ।

(२१) भौतिक जीवन के बन्धनों से मोक्ष लाभ करने पर पतञ्जलि की पुस्तक का अनुवाद ।

(२२) सिंधिन्द अर्थात् ब्रह्म-सिद्धान्त की शैली के अनुसार समीकरण को आधा करने के कारण पर निबंध ।

इसके अतिरिक्त उसका विचार और भी कई पुस्तकों का अनुवाद करने का था। इस विषय में वह आप ही लिखता है कि इन काम के लिए उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु, और बहुत से अवकाश की आवश्यकता है । अलबेरूनी ने अपने द्वितीय घर—अफ़ग़ान-भारत-साम्राज्य—में तेरह वर्ष व्यतीत करने के बाद भारत पर यह अपूर्व पुस्तक लिखी थी। यदि आज कोई विदेशी भारत पर ऐसी ही पुस्तक लिखना चाहे तो उसे तेरह वर्ष से कहीं अधिक समय, अध्ययन के लिए, दरकार होगा ।

ग्रंथकार का परिचय।

अबूरैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद अलबेरूनी ख़ीवा (प्राचीन ख्वारिज़म) प्रदेश का रहने वाला एक उदारशील मुसलमान था। उसका जन्म ९७३ ई० में हुआ। विज्ञान और साहित्य में निष्णात होने के कारण वह मामूनी कुल का, जो कि उस समय में शासन करता था, राजमंत्री बन गया। उस समय ग़ज़नी के सिंहासन पर महमूद था। यद्यपि ख़ीवा का शासक महमूद का नातीदार था, फिर भी महमूद उसका राज्य छीनने की धुन में रहता था। राजमंत्री अलबेरूनी ख़ीवा-नरेश को महमूद के हथकण्डों से बचाता रहता था, इसीलिए महमूद और उसका मंत्री, अहमद इब्न हसन मैमन्दी, उसे अपना कट्टर विरोधी समझते थे।

अन्ततः जब १०१७ ईसवी में महमूद ने ख़ीवा पर चढ़ाई करके मामूनी राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया और वहाँ के शासकों को पकड़ कर साथ ले आया तो उनके साथ ही अलबेरूनी भी लड़ाई के क़ैदियों में पकड़ा आया। ग़ज़नी में आकर महमूद के दरबार में उसकी दाल न गली, क्योंकि स्वयम् महमूद और उसका मंत्रि-मण्डल उसे अपना राजनैतिक शत्रु समझते थे। ग़ज़नी में उसका एक ही मित्र और साथी था। इसका नाम अबुल ख़ैर अलख़म्मार था। यह बग़दाद का एक ईसाई तत्त्ववेत्ता था। ग़ज़नी में यह वैद्यक करता था। महमूद के दरबार में यदि अलबेरूनी की कुछ पहुँच थी तो केवल ज्योतिषी के रूप ही में। जैसे टाईको डी ब्राहे सम्राट् रुडोल्फ के दरबार में था वैसे ही अलबेरूनी महमूद की कचहरी में था। महमूद को उसके धार्म्मिक जोश के लिए "ख़लीफ़ों के वंश का दहना हाथ", तथा "इसलाम का संरक्षक" की

उपाधियाँ मिली थीं, पर अलबेरूनी उसके विषय में आक्षेप से लिखता है कि "उसने भारत के वैभव को सर्वथा नष्ट कर दिया, और ऐसी ऐसी चालें चलीं कि जिन से हिन्दू मिट्टी के परमाणुओं की भांति टूट कर बिखर गये और केवल एक ऐतिहासिक बात रह गये"।

महमूद की मृत्यु के पश्चात् जब उसका पुत्र मसऊद राजसिंहासन पर बैठा तो अलबेरूनी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अलक़ानूनल मसऊदी उसे समर्पित की। इससे मसऊद बहुत प्रसन्न हुआ, और अलबेरूनी को महमूद के समय में जो शिकायतें थीं वे सब दूर हो गईं। जब ग़ज़नी के सुलतानों ने भारत पर आक्रमण किये तो, दूसरे राजनैतिक क़ैदी राजाओं के साथ, अलबेरूनी को भी राजसेना के साथ साथ भारतवर्ष में घूमना पड़ा।

हिन्दू और उनके विचार उसे बड़े रोचक और लुभावने प्रतीत होते थे। इनका अध्ययन करने में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। वह उन से सम्बंध रखने वाले प्रत्येक विषय की बड़े अनुराग के साथ खोज करता था। महमूद की दृष्टि में हिन्दू काफ़िर थे—जिन्हें कि नरक की भट्टी में जलना पड़ेगा। इन पर आक्रमण करके अपने ख़ज़ानों को स्वर्ण और रत्नों से भर लेना ही उसका मुख्योद्देश था। पर अलबेरूनी की यह बात न थी। वह हिन्दुओं को श्रेष्ठ तत्ववेत्ता, उत्तम गणितज्ञ, और निपुण ज्योतिर्विद समझता था। हाँ, जो दोष उसे इनके अन्दर देख पड़ते थे उन्हें वह कदापि नहीं छिपाता था, प्रत्युत कठोर से कठोर शब्दों में उनकी आलोचना करता था। पर साथ ही उनके छोटे से छोटे गुणों की प्रशंसा में भी उसने त्रुटि नहीं रक्खी। तीर्थों पर स्नान-घाट निर्माण कराने के विषय में वह कहता है:—

"इस विद्या में उन्होंने बहुत उन्नति की है। हमारे लोग (मुसलमान)

जब घाटों को देखते हैं तो चकित रह जाते हैं। वैसा बनाना तो दूर रहा उनका वर्णन करने में भी हम असमर्थ हैं।"

ऐसा प्रतीत होता है कि अलबेरूनी भारतीय दर्शन-शास्त्र की ओर बहुत झुका हुआ था। उसकी राय में प्राचीन भारत तथा यूनान के तत्त्ववेत्ताओं का वास्तव में एक ही मत था। अशिक्षित जन भले ही मूर्तिपूजन करते हों परन्तु इन तत्त्ववेत्ताओं का मत विशुद्ध 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' था। "प्रतिमा-पूजन का मूल कारण मृतकों के स्मरणोत्सव मनाने और 'जीवितों को शान्त करने की आकांक्षा थी, पर बढ़ते बढ़ते अब यह एक जटिल और हानिकारक रोग बन गया है।" हिन्दू विद्वानों के विषय में वह कहता है कि "उन्हें परमात्मा की सहायता है"। ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें सुन कर आज कल के मुसलमान उसे काफ़िर कह उठेंगे, क्योंकि इनका अर्थ यह है कि उन्हें ईश्वरीय ज्ञान मिलता है। जहां कहीं उसे हिन्दू-जीवन का कृष्ण पक्ष दिखलाना पड़ा है वहीं वह झट ही मुड़ कर प्राचीन अरबियों के आचार-व्यवहार का मुक़ाबला करने लग जाता है—कि वे भी इस बात में हिन्दुओं से अच्छे न थे। इससे उसका अभीष्ट यही है कि मुसलमान पाठक सुलतान महमूद के असभ्य सैनिकों द्वारा पादाक्रान्त हिन्दुओं के सामने गर्व से अपने को उच्चतर प्रकट न करें, और यह न भूल जायँ कि इसलाम के प्रवर्तक भी कोई देवता न थे। शायद हिन्दुओं के साथ इस सहानुभूति का कारण यह था कि उसका अपना देश ख़ावा भी महमूद के हाथों भारत की ही भांति पीड़ित होकर हाहाकार कर रहा था।

अलबेरूनी ने भारत पर अरबी भाषा में कोई बीस पुस्तकें लिखी हैं, पर उन में से हमारे लिए सब से महत्त्वपूर्ण यही एक पुस्तक है। जिस समय यह पुस्तक लिखी जा रही थी सारा देश युद्ध और लूट-

खसोट से अशान्त हो रहा था। परन्तु यह पुस्तक क्या है मानो इस अशान्त महासागर में एक प्रशान्त द्वीप है जिसमें जातीय पक्षपात की गंध तक नहीं।

भगवद्गीता के पवित्र विचारों ने उसे मोहित कर लिया था। अलबेरूनी ही पहला मुसलमान था जिसने इन पुस्तक-रत्न को मुसलमानों के सामने रक्खा। इसी ने पहले पुराणों का अध्ययन किया। भारत में आने के पूर्व वह ब्रह्म-सिद्धान्त, खण्ड-खाद्यक, पंचतंत्र, करणसार, और चरक का अरबी अनुवाद पढ़ चुका था। भारत में आकर उसने ज्योतिष के ग्रन्थ मूल संस्कृत में पढ़ना आरम्भ किया और पण्डितों की सहायता से पौलिस (पौलस्त्य ?) सिद्धान्त का अरबी में अनुवाद किया।

अलबेरूनी एक बहुत बड़ा विद्वान् और सत्यानुरागी पण्डित था। भारत पर लिखी उसकी इस पुस्तक में निम्नलिखित संस्कृत ग्रन्थों के अवतरण मिलते हैं:—

धर्म्म और दर्शन-शास्त्रों में—सांख्य, पतञ्जलि, और गीता।

पुराणों में—विष्णुधर्म, विष्णु-पुराण, मत्स्य-पुराण, वायु-पुराण, और आदित्य पुराण।

ज्योतिर्विद्या, भूगोल, कालनिर्णय-विद्या और नक्षत्र-विद्या में—पौलिस (पौलस्त्य ?) सिद्धान्त, खण्ड-खाद्यक, ब्रह्मगुप्त-कृत उत्तर खण्ड-खाद्यक, बलभद्र की खण्ड-खाद्यक पर टीका, वराहमिहिर-कृत बृहज्जातकम् और लघुजातकम्, बृहत्संहिता पर कश्मीर के उत्पल की टीका, छोटे आर्य्य भट्ट की एक पुस्तक, वित्तेश्वर-कृत करणसार, विजयनन्दिन-कृत करण-तिलक, श्रीपाल, ब्राह्मण भट्टिल की पुस्तक, दुर्लभ की पुस्तक (मुलतान वाली), जीव शर्मन की पुस्तक, ऋषि की पुस्तक भुवनकोश, समय की पुस्तक, सहावी के पुत्र औलियत्त की पुस्तक

(?) पञ्चलकृत लघु मानस, महादेव चन्द्रवीज-कृत श्रुधव (सर्वधर ?) कश्मीर का एक पंचाङ्ग।

चिकित्सा पर—चरक।

छन्दों पर—हरि भट्ट का एक शब्दकोश।

हाथियों पर—गज-चिकित्सा पर एक पुस्तक।

रामायण, महाभारत, और मानव धर्म्मशास्त्र का भी उसने उल्लेख किया है, पर ऐसी रीति से जिस से यह प्रकट नहीं होता कि ये पुस्तकें उसके सामने थीं।

इनके अतिरिक्त कोई चौबीस यूनानी पुस्तकों के अवतरण भी इस में मिलते हैं। अलबेरूनी ने यूनानी पुस्तकों के अरबी अनुवाद ही पढ़े थे। वह स्वयम् यूनानी नहीं जानता था।

अलबेरूनी का १०४८ ई० में देहान्त हुआ। फिर उसके बाद अकबर के समय तक मुसलमानों के अन्दर वैसा संस्कृतानुरागी दूसरा उत्पन्न नहीं हुआ। उसके बाद कई लेखक पैदा हुए जिन्होंने उसकी पुस्तक से नक़ल की, परन्तु जिस भाव और जिस रीति से वह कार्य्य करता था उस तरह कोई न कर सका। हम यहाँ दो लेखकों का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं जो कि उसके थोड़े ही दिनों बाद ग़ज़नी में उसी वंश के अधीन हुए। उन में से एक का नाम गर्देज़ी है। इस ने १०४९ ई० से १०५२ तक लिखने का काम किया। दूसरा मुहम्मद इबन उकैला—था। यह १०८९ ई० से १०९९ तक लिखता रहा। पिछले ग्रंथकारों में से जिन्हों ने अलबेरूनी की इस पुस्तक का अध्ययन किया और उसकी नक़ल की सब से ज़ियादा प्रसिद्ध रशीदुद्दीन है। इसने सारे का सारा भौगोलिक परिच्छेद (१८ वाँ) अपने बृहत्काय इतिहास में रख लिया है।

ग्रंथकार के समय में भारत की अवस्था।

जब अलबेरूनी भारत में प्रविष्ट हुआ वह समय भारतीय विद्वानों को मित्र बनाने के लिए अनुकूल न था। भारत भ्रष्ट म्लेच्छों के स्पर्श से सिकुड़ा जा रहा था। पाल वंश जो कभी काबुलिस्तान और पंजाब पर शासन करता था इतिहास के रंगमञ्च से लुप्त हो चुका था। उसके पहले देश सम्राट् महमूद के दृढ़ पंजे में थे और उन पर तुर्क वंश के दास शासन करते थे। उत्तर-पश्चिमी भारत के राजा लोग इतने अनुदार थे और वे आत्माभिमान में इतने अन्धे हो रहे थे कि ग़ज़नी से आने वाले भय का अनुभव नहीं करते थे। वे इतने अदूरदर्शी बन रहे थे कि अपनी रक्षा करने और शत्रु को मार भगाने के लिए भी आपस में न मिल सकते थे। आनन्दपाल को अकेले ही सामना करना पड़ा और वह गिर गया; परन्तु बाक़ी सब की भी उसके बाद एक एक करके वही गति हुई। जो लोग म्लेच्छों के दास नहीं बनना चाहते थे वे सब भाग कर समीपवर्ती हिन्दू साम्राज्यों में जा बसे।

कश्मीर अभी तक स्वाधीन था और विदेशियों के लिए उसके द्वार सर्वथा बन्द थे। आनन्दपाल भाग कर वहाँ चला गया था। महमूद ने उस देश को भी जीतने का यत्न किया था पर उसे सफलता न हुई थी। जिस समय अलबेरूनी ने पुस्तक लिखी, राजशासन संग्रामदेव (१००७—१०५० ई०) के हाथ से निकल कर अनन्तदेव (१०३०—१०८२ ई०) के पास चला गया था।

मध्य और अधर सिंध में महमूद ने बहुत कम हस्तक्षेप किया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह देश छोटे छोटे मांडलिक राज्यों में विभक्त था और छोटे छोटे मुसलमान वंश उन के मण्डलेश्वर थे।

१०२५ ई० में सोमनाथ पर महमूद के आक्रमण ने, जो कि मास्को पर नेपोलियन के आक्रमण के सदृश था, गुर्जर साम्राज्य की—जिसकी राजधानी अनहिलवाड़ा या पट्टन थी—अवस्थाओं में कोई स्थायी परिवर्तन पैदा किया मालूम नहीं होता। देश पर उस समय सोलङ्की-कुल का प्रभुत्व था। इस कुल ने ६८० ई० में चलुक्यों का स्थान लिया था। राजा चामुण्ड महमूद के सामने से भाग गया, जिससे उसने उसी कुल के एक और राजकुमार देवशर्मन् को गद्दी पर बिठला दिया। परन्तु इसके थोड़े ही दिन बाद हम चामुण्ड के दुर्लभ नामक एक पुत्र को १०३७ ई० तक गुर्जर का राजा पाते हैं।

मालवा पर परमार वंश का शासन था। इन्हों ने भी कश्मीर के राजाओं की भांति काबुलिस्तान के एक पालवंशीय युद्धपराङ्मुख राजा को अपने यहाँ आश्रय दिया था। अलबेरूनी ने मालवा के भोजदेव का उल्लेख किया है। इसका शासन-काल ६६७ ई० से लेकर १०५३ ई० तक है। धार में—जहाँ कि वह उज्जैन से उठ कर गया था—उसका राज-दरबार तत्कालीन विद्वानों का समागम-स्थान बन रहा था।

कन्नौज उस समय गौड अथवा बङ्गाल के पाल राजाओं के अधिकार में था। ये राजा मुङ्गेर में रहते थे। महमूद ने कन्नौज को राज्य पाल के शासन-काल में, १०१७ ई० में, लूटकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया, इसलिए म्लेच्छों से दूर, बारी नामक एक नवीन नगर की नींव रक्खी गई, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यह नया नगर कुछ फला फूला नहीं। इस स्थान में रहते हुए राजा महीपाल ने १०२६ ई० के लग भग अपने साम्राज्य को बढ़ाने और सुदृढ़ करने का यत्न किया। कहते हैं कि ये दोनों राजा बौद्ध थे।

भारतीय विद्याओं के केन्द्र काशी और कश्मीर थे, और ये

दोनों ही अलवेरूनी ऐसे वर्बर के लिए अगम्य थे। परन्तु मुसलमानों के अधिकार में भारत का जितना भाग था उसमें से, और शायद ग़ज़नी में युद्ध के क़ैदियों में से भी, उसे उसकी आवश्यकता को पूरा करने वाले अनेक पण्डित मिल गये थे।

ग्रंथकार और बौद्ध धर्म्म।

अलवेरूनी के समय का भारत बौद्ध न था, पौराणिक था। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम अर्धभाग में मध्य एशिया, खुरासान, अफ़ग़ानिस्तान, और उत्तर-पश्चिमी भारत से बौद्ध धर्म्म का नामोनिशान सर्वथा मिट चुका प्रतीत होता है; और यह एक अद्भुत बात है कि अलवेरूनी ऐसे जिज्ञासु को बौद्ध-धर्म्म के विषय में कुछ भी मालूम न हो, और न इस विषय की जानकारी लाभ करने के लिए ही उस के पास कोई साधन हो। बौद्ध-धर्म्म की उसने बहुत कम चर्चा की है, और जो की भी है वह सब ईरान शहरी की पुस्तक के आधार पर की है। ईरान शहरी ने स्वयम् ज़र्कान की पुस्तक से नक़ल किया है।

कहते हैं बुद्ध ने चूडामणि नामक एक पुस्तक रची थी। बौद्धों या शमनियों (श्रमणों) को अलवेरूनी ने मुहम्मिर अर्थात् लाल वस्त्रों वाले (रक्तपट) लिखा है। बौद्ध त्रिमूर्ति, बुद्ध, धर्म्म, संघ आदि का वर्णन करते हुए वह बुद्ध को बुद्धोदन लिखता है।

बौद्ध ग्रंथकारों में चन्द्र नामक एक वैयाकरण, सुग्रीव नामक एक ज्योतिषी और उसके एक शिष्य का ही उल्लेख अलवेरूनी करता है।

अलवेरूनी लिखता है कि उस के समय में राजा कनिष्क का वनाया हुआ एक भवन पेशावर में मौजूद था। इसका नाम कनिष्क-चैत्य था। यह वही स्तूप मालूम होता है जिस के विषय में कहते हैं कि

स्वयम् भगवान् बुद्ध की भविष्यद्वाणी के अनुसार राजा ने इसका निर्माण कराया था।

भारतवर्ष में प्रचलित लिपियों की गिनती करते हुए वह सब से अन्त में "पूर्वदेशान्तर्गत उदनपुर में प्रचलित भैक्षुकी" का नाम लेता है। यह स्वयम् बुद्ध की लिपि मानी जाती है। यह उदनपुर कहीं मगधदेश का वही प्रसिद्ध बौद्ध-विहार उदण्ड-पुरी ही तो नहीं है जिसे कि मुसलमानों ने १२०० ई० में नष्ट कर दिया था ?

वह बुद्ध और ज़रदुश्त की पारस्परिक विपक्षता का दो बार उल्लेख करता है। यदि अलबेरूनी को भारत-भ्रमण के लिए ऐसा ही सुभीता होता जैसा कि ह्वेन-त्साङ्ग को था तो वह निस्सन्देह सुगमता से ही बौद्ध धर्म्म के विषय में पर्य्याप्त जानकारी लाभ कर लेता। अलबेरूनी के ब्राह्मण पण्डितों को बौद्धधर्म्म का पर्य्याप्त ज्ञान था, पर सम्भवतः वे उसे कुछ बताना नहीं चाहते थे।

अन्ततः जिस भारत को अलबेरूनी ने देखा वह वैष्णव धर्म्माव-लम्बी था, शैव नहीं। महमूद के पहले काबुलिस्तान और पञ्जाब के शासक, पाल वंशीय राजा, शिव के उपासक थे। यह बात उनके सिक्कों पर शिव के बैल नन्दी की मूर्त्ति, और उनके अपने नामों की शैली से प्रमाणित होती है। राजा महमूद के ग़ज़नी के सिंहासन पर अन्तिम बैठने वाले उत्तराधिकारी के सिक्कों पर हम नन्दी की मूर्त्ति को दुबारा पाते हैं।

ग्रंथकार की गुणदोषविवेचना।

अलबेरूनी पूर्व-कालीन ऐतिह्यों को अन्धाधुन्ध स्वीकार नहीं कर लेता, वह उन्हें समझना और उनकी आलोचना करना चाहता है। वह भूसे से गेहूँ को अलग करना चाहता है। जो वस्तु प्रकृति और तर्क के नियमों का विरोध करती है उसी को वह दूर फेंक देता है। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि अलबेरूनी विज्ञान का भी पण्डित था। उसने दृग्विद्या, यंत्रगति-विद्या, खनिजविद्या, और रसायन-शास्त्र आदि सृष्टि-विज्ञान की बहुत सी शाखाओं पर पुस्तकें प्रकाशित की थीं; देखिए भारत वर्ष के एक समय में समुद्र होने के चिन्हों पर उसका भौगोलिक विमर्श (परिच्छेद १८), और उसके पदार्थ-विज्ञान का एक विशेष नमूना (परिच्छेद ४७)। मुझे निश्चय है कि वह ऐहिक जगत् पर नक्षत्रों के प्रभाव को मानता था, यद्यपि वह ऐसा कहीं कहता नहीं। इस विषय की सत्यता पर यदि उस का विश्वास न होता तो वह यूनानी और भारतीय फलित-ज्योतिष के अध्ययन में इतना समय और परिश्रम क्यों लगाता यह बात समझ में नहीं आती। वह एक जगह भारतीय फलित-ज्योतिष का आलेख्य देता है, क्योंकि मुसलमान पाठक "फलितज्योतिष की हिन्दू-विधियों से अनभिज्ञ हैं, और उन्हें किसी भारतीय पुस्तक के अध्ययन का कभी अवसर नहीं मिला।" (परिच्छेद ८०)। बार्डीसेनीज़ नामक एक सिरिया-देशीय तत्त्ववेत्ता और कवि ने जो कि ईसा की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ है, फलित-ज्योतिष को स्पष्ट और प्रभाव-शाली शब्दों में बुरा कहा है। अलबेरूनी इस ऊँचाई को नहीं

पहुँचा, वह यूनानी फलितज्योतिष की कल्पनाओं में ही उलझा रहा है।

उस का रसायन (कीमियागरी) में विश्वास न था, क्योंकि वह रसायन-विद्या और खनिजविद्या-सम्बन्धी क्रियाओं को अभिप्रेत प्रपंच से अलग समझता है और उसकी कठोर से कठोर शब्दों में निन्दा करता है। (परिच्छेद १७)

वह आधुनिक भाषातत्त्व-शास्त्री की नाईं हस्तलेख के ऐतिह्य की गुणदोष-विवेचना करता है। कभी वह मूल ग्रंथ को भ्रष्ट मान लेता है और फिर उस भ्रष्टता के कारण की खोज करता है। वह विविध पाठों पर विचार करता है और संशोधन का प्रस्ताव करता है। वह भिन्न भिन्न अनुवादों की विवेचना और लिपिकारों की अज्ञता और असावधानता की शिकायत करता है (परिच्छेद १५, ५५)। वह भली भांति जानता है कि भारतीय पुस्तकें बुरी तरह से अनुवादित होने और क्रमिक लिपिकारों द्वारा असावधानी से नक़ल की जाने के कारण इतनी भ्रष्ट हो जाती हैं कि यदि उस रूप में कोई पुस्तक उसके भारतीय ग्रंथकार को दिखलाई जाय तो वह अपनी कृति को कभी भी पहचान न सके! ये सब शिकायतें पूर्णतया सत्य हैं, विशेषतया विशेष संज्ञाओं के विषय में। अपने संशोधन-सम्बन्धी लेखों में उसका कई बार अपने मार्ग से विचलित हो जाना (उदाहरणार्थ, उसका ब्रह्मगुप्त के साथ पूरा पूरा न्याय करने के लिए तैयार न होना) क्षन्तव्य है, क्योंकि उस समय शुद्ध और पूर्ण रूप से संस्कृत पढ़ना प्रायः असम्भव सा था।

दस वर्ष हुए—जब मैंने अलबेरूनी की जीवनी का प्रथम आलेख्य तैयार किया था तो मुझे आशा थी कि उस के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी सामग्री का पता पूर्व और पश्चिम के पुस्तका-

लयों से मिलेगा। परन्तु, जहाँ तक मुझे मालूम है, ऐसा नहीं हुआ। उसके शील का अनुमान करने के लिए हमें उस की पुस्तकों का पाठ करना और उन्हीं में से जो थोड़े बहुत लक्षण मिलें उन्हें चुनना पड़ेगा। इसलिए इस समय उस के शील का चित्र बहुत अधूरा है। और जब तक उसकी लेखनी से निकली हुई सारी पुस्तकों का अध्ययन न हो, और जब तक वे विद्वानों तक न पहुँच जायँ, विज्ञान के उत्कर्ष के लिए उसकी सेवा के निमित्त सविस्तर कृतज्ञता का प्रकाश नहीं किया जा सकता। उस के कार्य्य के मुख्य क्षेत्र ज्योतिष, गणित, काल-गणना, गणित-विषयक भूगोल, रसायन-शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान, और खनिजविद्या हैं। उसने, अनुवाद और मूल रचनाएँ मिला कर, भारत-सम्बन्धी प्रायः बीस पुस्तकें, और बहुत सी कथाएँ और आख्यायि-काएँ, जिन का आधार भारत और ईरान का प्राचीन पाण्डित्य है, लिखी हैं। उसने अपनी मातृभूमि, ख़्वारिज़्म, और करामत के प्रसिद्ध सम्प्रदाय के इतिहास भी लिखे थे, परन्तु शोक है कि ये दोनों पुस्तकें, जो सम्भवतः तत्कालीन ऐतिहासिक साहित्य के लिए बहुमूल्य साहाय्य थीं, आज अप्राप्य हैं।

ग्रंथकार की प्रकृति।

धर्म्म और दर्शन-शास्त्र-सम्बंधी विचारों में अलबेरूनी स्वतंत्र है। वह स्पष्ट, निश्चित, और पुरुषोचित शब्दों का मित्र है। वह अर्ध-सत्य, संदिग्ध शब्द, और अस्थिर कर्म्म से घृणा करता है। सब कहीं वह अपने विश्वासों को मनुष्योचित साहस के साथ उपस्थित करता है—जिस प्रकार धर्म्म और तत्त्वज्ञान में, वैसे ही राजनीति में भी। नवें और इकहत्तरवें परिच्छेदों की भूमिका में राजनैतिक तत्त्वज्ञान के कई अद्भुत वाक्य हैं। परिवर्तन-विरोधी-स्वभाव का नीतिज्ञ होने के कारण वह राजसिंहासन और धर्म्म की वेदी का पक्ष लेता है और कहता है कि "इन दोनों का संयोग मनुष्य-समाज का सर्वोच्च विकास है। इस से बढ़कर मनुष्य और किसी बात की अभिलाषा नहीं कर सकता" (परिच्छेद ९)। वह बायबल के नियमों की कोमलता की प्रशंसा करने में भी समर्थ है। "जिसने तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारा है उस के आगे दूसरा भी कर देना, अपने शत्रु के लिए आशीर्वाद देना और उस के लिए प्रार्थना करना—मेरे प्राणों की शपथ, यह एक उच्च तत्त्वज्ञान है, पर इस संसार के मनुष्य सभी तत्त्ववेत्ता नहीं। उन में से बहुत से मूर्ख और अल्पबुद्धि हैं। तलवार और कोड़े के बिना उन्हें सन्मार्ग पर रखना कठिन है। वस्तुतः जब से विजेता कन्स्टन्टायन ईसाई हुआ, तलवार और कोड़े का सदा प्रयोग होता रहा है, क्योंकि इन के बिना शासन करना असम्भव होगा"-(परिच्छेद ७१)। यद्यपि वह व्यवसाय से पण्डित था, फिर भी वह विषय का व्यावहारिक पक्ष लेने में समर्थ है; और वह ख़लीफ़ा मुआविया की इसलिए प्रशंसा करता है कि उसने सिसली की सोने की देव-मूर्तियों को काफ़िरों की

जघन्य वस्तुएँ समझ कर नष्ट करने के स्थान में उन्हें सिन्ध के राजाओं के हाथ रुपया लेकर बेच दिया था, यद्यपि ऐसी दशा में कट्टर मुसलमान मूर्तियों के खण्डित होने से ही प्रसन्न होते। उनका राज-सिंहासन और धर्म्म-वेदी के संयोग का उपदेश उसे "पुजारियों और पुरोहितों के उन सांकेतिक छलों" की स्पष्ट शब्दों में निन्दा करने से नहीं रोकता जोकि वे अबोध जन-साधारण को अपने फन्दे में जकड़े रखने के लिए करते हैं।

वह क्या अपनी और क्या दूसरों की—बड़ी कड़ी परीक्षा करता है। वह आप पूर्णतया सरल प्रकृति का है और दूसरों से भी सरलता ही चाहता है। जब कभी वह किसी विषय को भली भांति नहीं समझ सकता, या उसके किसी एक अंश को ही समझता है, तो यह बात वह झट अपने पाठक से कह देता है। ऐसे अवसर पर या तो वह अपनी अज्ञता के लिए पाठक से क्षमा मांगता है, या, अट्ठावन वर्ष की आयु होते हुए भी, परिश्रम को जारी रखने और उस का परिणाम समय पर प्रकाशित करने की प्रतिज्ञा करता है—मानो जनता के लिए नैतिक दायित्व से कार्य्य कर रहा है। वह सदैव अपने ज्ञान की सीमाओं को स्पष्ट जतला देता है। यद्यपि हिन्दुओं की छन्द-विद्या का उसे थोड़ा ज्ञान है पर जो कुछ भी उसे आता है वह सब बता देता है। इस समय उसका सिद्धान्त यह है कि 'बहुत अच्छा' 'अच्छे' का शत्रु न होना चाहिए, मानो उसे डर है कि उपस्थित विषय का अध्ययन समाप्त होने के पूर्व ही कहीं उसकी मानव लीला समाप्त न हो जाय। वह उन लोगों का मित्र नहीं जो अपनी अज्ञता को मैं नहीं जानता कह कर स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करने से घृणा करते हैं; और जब कहीं वह सरलता का अभाव देखता है तो उसे बड़ा क्रोध आता है। ब्रह्मगुप्त यदि ग्रहणों के विषय में दो सिद्धान्तों (एक तो राहु

नामक नाग का प्रकाशमान् लोक को निगल जाना—जैसा कि लोक-प्रिय है, और दूसरा वैज्ञानिक), की शिक्षा देता है, तो वह—जाति के पुरोहितों के अनुचित दबाव से, और उस प्रकार की विपत्ति के डर से जो कि अपने देश-भाइयों के प्रचलित विचारों के विरुद्ध सम्मति रखने से सुकरात पर आई थी—निश्चय ही अपनी आत्मा के विरुद्ध पाप करता है (देखो परिच्छेद ५६)। एक और स्थल पर वह ब्रह्मगुप्त को आर्य्यभट्ट के साथ अन्याय और अशिष्टता का वर्ताव करने के लिए दोषी ठहराता है। (परिच्छेद ४२)। वराहमिहिर की पुस्तकों में वह ऐसे वाक्य पाता है जो एक सत्य वैज्ञानिक पुस्तक के सामने उसे "एक पागल की बकवाद" प्रतीत होते हैं, परन्तु इतनी दया उसने दिखाई है कि यह कह दिया है कि उन वाक्यों में कुछ गूढ़ अर्थ छिपे पड़े हैं जो कि उसे मालूम नहीं, पर वे ग्रंथकार के लिए श्रेयस्कर हैं। जब वराहमिहिर साधारण ज्ञान की सब सीमाओं का उलङ्घन कर जाता है तो अलबेरूनी विचारता है कि "ऐसी बातों का उचित उत्तर केवल मौन ही है।" (परिच्छेद ५६)

उसका व्यावसायिक उत्साह और यह सिद्धान्त कि विद्या पुनरावृत्ति का ही फल है (परिच्छेद ७८) उससे कई वार पुनरुक्ति कराते हैं, और उसकी स्वाभाविक सरलता उससे कठोर और उग्र शब्दों का व्यवहार करा देती है। वह भारतीय लेखकों और कवियों के—जो जहाँ एक शब्द से काम निकल सकता है वहाँ शब्दों के पुलन्दे रख देते हैं—वाक्प्रपंच से, शुद्धभाव से घृणा करता है। वह इसे "बकवाद मात्र—लोगों को अन्धकार में रखने और विषय पर रहस्य का आवरण डालने का एक साधन—बतलाता है। प्रत्येक दशा में यह (एक ही बात को दर्शाने वाले शब्दों की) विपुलता सम्पूर्ण भाषा को सीखने की इच्छा रखने वालों के सामने दुःखदायक काठिन्य उप-

स्थित करती है, और इसका परिणाम केवल समय का नाश है" (परिच्छेद २१, २६, १)। वह दो बार दीवजात अर्थात् मालद्वीप और लत्त्वद्वीप के मूल की (परिच्छेद २१, ५८) और दो बार भारत सागर की सीमाओं के आकार की व्याख्या करता है।

जहां कहीं उसे कपट का सन्देह होता है वह झट उसे कपट कहने में तनिक भी सङ्कोच नहीं करता। रसायन अर्थात् स्वर्ण बनाने, वृद्धों को युवक बनाने आदि के घोर व्यापार का विचार करके उसके मुख से विद्रूपात्मक शब्द निकल पड़ते हैं जो कि मेरे इस अनुवाद की अपेक्षा मूल में अधिक स्थूल हैं (परिच्छेद १७)। इसी विषय पर वह ज़ोरदार शब्दों में अपना कोप प्रकट करता है—"सोना बनाने के लिए अज्ञ हिन्दू राजाओं की लोलता की कोई सीमा नहीं"—इत्यादि। इक्कीसवें परिच्छेद में जहां वह एक हिन्दू लेखक की सृष्टिवर्णन-विषयक बकवाद की आलोचना करता है उसके शब्दों से घोर रसिकता टपकती है—"हमें तो पहले ही सात समुद्रों और उनके साथ साठ पृथ्वियों की गिनती करना क्लेश-जनक प्रतीत होता था, और अब यह लेखक समझता है कि हमारी पहली गिनी हुई पृथ्वियों के नीचे कुछ और अधिक पृथ्वियों की कल्पना करके वह इस विषय को अधिक सुगम और मधुर बना सकता है।" जब कन्नोज के मदारी उसे कालगणना की शिक्षा देने बैठे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कठोर हृदयी विद्वान् अपनी हँसी को न रोक सका। "मैं ने उनमें से प्रत्येक की परीक्षा करने, और वही प्रश्न भिन्न भिन्न समयों और भिन्न भिन्न क्रमों और प्रसङ्गों में दुहराने में बहुत सूक्ष्मता से काम लिया। परन्तु देखिए! क्या भिन्न भिन्न उत्तर मिले! परमात्मा ज्ञान-स्वरूप है!" (परिच्छेद ६२)

ग्रंथकार की शैली ।

प्रायः हमारे ग्रन्थकार की यह शैली है कि वह अपनी ओर से कुछ नहीं कहता बल्कि हिन्दुओं को ही कहने देता है, और उनके श्रेष्ठ लेखकों की पुस्तकों से विस्तीर्ण अवतरण उपस्थित करता है। वह हिन्दू-सभ्यता का वह चित्र उपस्थित करता है जो कि स्वयम् हिन्दुओं ने चित्रित किया है। कई एक परिच्छेद, (सारे नहीं) एक व्यापक प्रकार की छोटी सी विशेष भूमिका के साथ प्रारम्भ होते हैं। बहुत से परिच्छेदों का शरीर तीन भागों का बना है। पहला भाग तो विषय का संक्षिप्त सार है। दूसरे भाग में ज्योतिष, फलित-ज्योतिष, तत्त्वज्ञान, और धर्म्म पर जो परिच्छेद हैं उनमें संस्कृत पुस्तकों के अवतरण हैं; और हिन्दुओं के सिद्धान्त, साहित्य, ऐतिहासिक कालगणना, भूगोल, नियम, रीति-रिवाज, और आचार-व्यवहार पर जो परिच्छेद हैं उन में और और जानकारी की बातें या वे बातें हैं जो उसने स्वयं देखी थीं। तीसरे भाग में उसने वही किया है जो पहले मगास्थनीज़ कर चुका था। वह कई बार अत्यन्त वैदेशिक विषयों को उन की प्राचीन यूनानी सिद्धान्तों से तुलना करके या अन्य उपमाओं द्वारा अपने पाठकों को भली भांति समझा देने का यत्न करता है। इस प्रकार के क्रम का उदाहरण पांचवें परिच्छेद में मिलता है। प्रत्येक परिच्छेद के विधान में, और परिच्छेदों के अनुक्रम में एक स्पष्ट और भली भांति निरूपित कल्पना देख पड़ती है। किसी प्रकार का संग्रंथन या कोई फालतू बात बिलकुल नहीं। शब्द बिलकुल विषयोचित और यथा-सम्भव सुबद्ध हैं। सारी रचना में प्राञ्जलता और श्रेष्ठ क्रम को देख कर वह हमें निपुण गणितज्ञ जान पड़ता है और उसके लिए इस तरह क्षमा

मांगने का शायद ही मुश्किल से कोई अवसर मालूम होता है जिस तरह कि वह पहले परिच्छेद के अन्त में मांगता है कि "मैं सब कहीं रेखागणित शास्त्र के नियमों का पालन नहीं कर सका, और कई जगह अज्ञातांश को लाने के लिए बाधित हुआ हूँ, क्योंकि उसकी व्याख्या पुस्तक के पिछले भाग में ही हो सकती थी।"

वर्तमान पुस्तक को लिखने के पूर्व ग्रंथकार का भारत-सम्बन्धी अध्ययन।

पहले अबू सईद ख़लीफ़ाओं के समय में जिन पुस्तकों का अनुवाद हुआ था उन में से कई एक—जैसे कि ब्रह्मसिद्धान्त या सिंधिन्द, और अलफ़ज़ारी तथा याक़ूब इब्न तारिक के खण्डखाद्यक या अर्कन्द के संस्करण, पञ्चतंत्र या कलीला और दिमना, और अली इब्न ज़ैन का चरक का संस्करण—वर्तमान पुस्तक को लिखने के वक्त अलबेरूनी के पुस्तकालय में मौजूद थीं। उसने वित्तेश्वर कृत करणसार के एक अरबी भाषान्तर का भी उपयोग किया था, परन्तु वह यह नहीं बताता कि यह भाषान्तर पुराना था या उसी के समय में हुआ था। इन पुस्तकों से अलबेरूनी के सामने वही कठिनाइयाँ आईं जिन की वह बार बार शिकायत करता है और जो हमारे सामने आरही हैं; अर्थात् अनुवादकों के दोषों के अतिरिक्त लिपिकारों की अनवधानता से मूल में, विशेषतया विशेष संज्ञाओं के विषय में, बहुत सी ख़राबी का पैदा होना।

जब अलबेरूनी ने भारत में पदार्पण किया तो उसे सम्भवतः भारतीय गणित, ज्योतिष और कालनिर्णय-विद्या का अच्छा ज्ञान था। यह ज्ञान उसने ब्रह्मगुप्त और उसके अरबी सम्पादकों के अध्ययन से प्राप्त किया था। विशुद्ध गणित (الحساب الهندي) में उसका और अरबियों का कौन सा हिन्दू ग्रंथकार गुरु था इस का कुछ पता नहीं। अलफ़ज़ारी और याक़ूब इब्न तारिक के अतिरिक्त उसने अलख्वारिज़्मी से शिक्षा पाई थी, अहवाज़ के अबुलहसन से कुछ पढ़ा था, बल्ख़ के अबू मअशर और अलकिन्दी से मामूली मामूली बातें सीखी थीं, और

अलजहानी की प्रसिद्ध पुस्तक से शुद्ध विस्तरों का ज्ञान प्राप्त किया था। वर्त्तमान पुस्तक में जिन अन्य स्रोतों का उसने उपयोग किया है इन में से वह दो के अवतरण देता है। (१) एक मुसलमानी शास्त्र जिस का नाम अलरकीन अर्थात् अहर्गण है। मैं इस पुस्तक के इतिहास का पता नहीं चला सकता, पर मेरी राय में यह भारतीय तिथियों को फ़ारसी और अरबी तिथियों में और फ़ारसी और अरबी तिथियों को भारतीय तिथियों में बदलने के लिए कालनिर्णय विद्या की एक क्रियात्मक पुस्तिका थी। तिथियों को बदलने की आवश्यकता सबुक्तगीन और महमूद के अधीन शासन-सम्बन्धी प्रयोजनों के लिए पैदा हुई थी। इसके रचयिता का नाम नहीं मिलता। (२) अबू अहमद इब्न कतलग़तगीन से अवतरण है कि उसने करली और थानेश्वर के अक्षों की संख्या निकाली थी।

नक्षत्र-विद्या-सम्बन्धी विषयों पर और भी दो ग्रंथकारों के प्रमाण दिये गये हैं परन्तु ये भारतीय नक्षत्र-विद्या के सम्बन्ध में नहीं। इन में से एक तो सारख़स का मुहम्मद इब्न इसहाक़ है और दूसरी एक पुस्तक है जिसका नाम ग़ुर्रतुल ज़ीजात है। यह शायद किसी भारतीय स्रोत से निकली है क्योंकि इस का नाम करणतिलक से मिलता है। इस का लेखक शायद आमुल का अबू मुहम्मद अल्नाइब है। भारत में अलबेरूनी ने भारतीय ज्योतिष का अध्ययन पुनः आरम्भ किया। इस बार अनुवादों से नहीं बल्कि मूल संस्कृत से। इस समय हमें यह एक अद्भुत बात दिखाई देती है कि जो पुस्तकें भारत में प्रायः ७७० ई० में प्रामाणिक समझी जाती थीं वे अब १०३० ई० में भी वैसी ही प्रामाणिक थीं, उदाहरणार्थ ब्रह्मगुप्त की पुस्तकें। विद्वान पण्डितों से सहायता पाकर उसने इन का और पुलिस (पौलस्त्य ?) सिद्धान्त का भाषान्तर करने का यत्न किया, और जब उस ने वर्त्तमान पुस्तक

रची वह भारतीय ज्योतिष के विशेष विषयों पर कई पुस्तकें लिख चुका था। ऐसी पुस्तकों में से वह इन के प्रमाण देता है:—

(१) चान्द्रस्थानों या नक्षत्रों के निर्णय पर एक निबन्ध।

(२) ख़यालुल कुसूफ़ैनी जिस में अन्य बातों के अतिरिक्त योग-सिद्धान्त का भी वर्णन था।

(३) एक पुस्तक उपरोक्त विषय पर ही। इस का नाम अरबी खण्ड-खाद्यक था।

(४) एक पुस्तक जिसमें करणों का वर्णन था। इस का नाम नहीं दिया।

(५) भिन्न भिन्न जातियों की परिगणना की विविध रीतियों पर एक निबन्ध। इस में सम्भवतः अन्य ऐसे ही भारतीय विषयों का भी वर्णन था।

(६) एक पुस्तक जिस का नाम "ज्योतिष की चाभी" था। इस का विषय यह था कि क्या- सूर्य्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है या पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करती है।

(७) भौगोलिक रेखांश के परिसंख्यान के लिए विविध रीतियों पर अनेक पुस्तकें। वह इनके नामों का उल्लेख नहीं करता और न यही बताता है कि उन की गणना का हिन्दू रीतियों से कोई सम्बन्ध था या नहीं।

भारतीय ज्योतिष और कालनिर्णय-विद्या में निष्णात होने पर उस ने वर्त्तमान पुस्तक को लिखना आरम्भ किया। इन विषयों पर कई शताब्दियों से साहित्यिक चेष्टा चली आ रही थी, उस ने केवल इस को जारी रखा; परन्तु वह एक बात में अपने पूर्ववर्त्ती पंडितों से बढ़ गया। वह मूल संस्कृत स्रोतों तक पहुँचा; जो थोड़ी बहुत संस्कृत वह सीख सका था उस की सहायता से उसने अपने पण्डितों की पढ़-

वाल करने का यत्न किया; नवीन और अधिक शुद्ध अनुवाद किये, और गणना द्वारा भारतीय ज्योतिर्विदों के स्वीकृत तत्त्वों की परीक्षा की विवेकपूर्ण विधि निकाली। अबू सईदीय ख़लीफ़ाओं के अधीन बग़दाद में जो विद्वान पहले कार्य्य करते थे उन की आकांक्षाओं के मुक़ाबले में इसका काम एक वैज्ञानिक पुनरुद्धार को प्रकट करता है।

मालूम होता है कि अलबेरूनी की राय थी कि भारतीय नक्षत्र-विद्या अधिक प्राचीन अरबी साहित्य में नहीं गई। यह बात उसके ८० वें परिच्छेद की भूमिका से प्रकट होती है—"इन (मुसलिम) देशों में हमारे धर्म्म-भाई नक्षत्र-विद्या की हिन्दू विधियों को नहीं जानते, और न उन्हें इस विषय की किसी भारतीय पुस्तक को पढ़ने का अवसर ही प्राप्त हुआ है।" हम यह सिद्ध नहीं कर सकते कि वराहमिहिर की पुस्तकें, अर्थात् उसकी बृहत्संहिता और लघुजातकम्, जिनका अलबेरूनी अनुवाद कर रहा था, पहले ही मनसूर के समय में अरबियों को प्राप्तव्य थीं, परन्तु हमारी सम्मति में इस विषय में अलबेरूनी का निर्णय यथार्थता की सीमा का उल्लंघन करता है, क्योंकि नक्षत्र-विद्या पर, और विशेषतया जातकों पर पुस्तकें अबू सईदीय शासन-काल में पहले ही अनुवादित हो चुकी थीं। (देखो फ़िहरिस्त पृष्ठ २७०, २७१)।

भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के विषय में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि ऐसा मालूम होता है कि अलबेरूनी ने इस का विशेष अध्ययन नहीं किया था, क्योंकि वह उस समय के प्रचलित चरक के भाषान्तरों का ही उपयोग करता है—यद्यपि उनके अशुद्ध होने की भी शिकायत करता है। उस ने जघन्य रोगों पर एक संस्कृत पुस्तक का अरबी में अनुवाद किया था, पर वह इस पुस्तक के पहले किया था या पीछे इस का कुछ पता नहीं।

वर्त्तमान पुस्तक को लिखने का उद्देश्य अपने स्वदेश-भाइयों को विशेष रूप से भारतीय नक्षत्र-विद्या का ज्ञान कराना नहीं था बल्कि अलबेरूनी उन के सामने भारत के दार्शनिक और ईश्वरतत्त्व-विषयक सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन रखना चाहता था। यही बात वह पुस्तक के आदि और अन्त में कहता है। किसी अन्य विषय की अपेक्षा सम्भवतः इस विषय पर वह अपने पाठकों को अधिक नवीन और पूर्ण ज्ञान प्रदान कर सकता था, क्योंकि इस में, उसी के कथनानुसार, एक—अलईरान शहरी—ही उसका पूर्ववर्त्ती था। उसको, और जिस पुस्तक का वह अनुकरण करता है—अर्थात् ज़र्कान—उसको न जानने के कारण हम नहीं कह सकते कि अलबेरूनी के इन पर आक्षेप कहाँ तक ठीक हैं। यद्यपि इस में कुछ सन्देह नहीं कि भारतीय दर्शन शास्त्र किसी न किसी रूप में पहले काल में अरबियों तक पहुँच चुका था परन्तु जब अलबेरूनी ने स्वदेश-भाइयों या सहधर्म्मियों के सामने कपिल-कृत सांख्य और पतञ्जलि की पुस्तक के अच्छे अरबी अनुवाद रक्खे तो यह बिलकुल ही एक नई चीज़ मालूम होने लगा।

अलबेरूनी पहला मुसलमान था जिसने पुराणों का अध्ययन किया। कथाओं की पुस्तकों में से उसे इब्नल मुकफ्फा का किया हुआ पञ्चतंत्र का अरबी अनुवाद मालूम था।

अपने पूर्ववर्त्ती पंडितों के मुक़ाबले में उस का काम बहुत बढ़ चढ़कर था। उसका हिन्दू-दर्शन-शास्त्र का वर्णन सम्भवतः अनुपम था। उसकी कालनिर्णय-विद्या और नक्षत्र-शास्त्र की विधि पहले लोगों से अधिक शुद्ध और पूर्ण थी। उस के पुराणों से अवतरण, और साहित्य, आचार-विचार, व्यवहार, वास्तविक भूगोल, और ऐतिहासिक कालगणना पर उसके महत्त्व-पूर्ण परिच्छेद सम्भवतः उसके पाठकों

के लिए सर्वथा नये थे। वह एक बार राज़ी का प्रमाण देता है जिससे कि वह अच्छी तरह से परिचित था। उसने सूफ़ियों के भी प्रमाण दिये हैं, पर भारत के विषय में उसने इन में से किसी से भी अधिक नहीं सीखा।

अरबी साहित्य की उत्पत्ति ।

उमैया-वंशीय खलीफाओं की राजधानी दमिश्क़ नगरी साहित्य की क्रीड़ा भूमि प्रतीत नहीं होती । शासन की व्यावहारिक आवश्यकताओं को छोड़ कर यूनान, मिस्र या ईरान की सभ्यताओं की उन्हें कोई अभिलाषा न थी। उनके विचार सदा युद्ध, राजनीति, और धन-सञ्चय में ही लगे रहते थे । सम्भवतः उनके अन्दर कविता के लिए विशेष अनुराग था जैसा कि सब अरवियों में पाया जाता है। पर उन्हें ऐतिहासिक साहित्य को उन्नत करने का कभी ख़याल नहीं आया, और इससे उनकी ही हानि हुई । ये अरवी राजा कई मार्गों से (हाल ही में हिज़ाज की शैल-मरुभूमि से) वाहर निकले थे और उन्हें सहसा अधिराज्य-शक्ति मिल गई थी, इसलिए उनमें वद्दू शेख़ों के बहुत से गुण वाक़ी थे। उनमें से बहुत से दमिश्क़ से घृणा करते और मरुभूमि में अथवा उसकी सीमा पर निवास करना पसन्द करते थे। उनके घर— रसूफ़ा और ख़ुनासरा में—साहित्य का उससे अधिक विचार न था जितना कि इस समय हाइल में शम्मर के धूर्त मुखिया इब्नरशीद के राजभवनों में है । अरवी साहित्य का जन्म-स्थान दमिश्क़ नहीं वल्कि वग़दाद है । अब्वास कुल के ख़लीफ़ाओं ने इसके विकास और उत्कर्ष के लिए इसकी आवश्यक रक्षा की, क्योंकि ख़ुरासान में चिरकाल तक निवास करने के कारण ईरानी सभ्यता के प्रभाव से इनकी प्रकृति वदल चुकी थी ।

अरवी साहित्य की नींव ७५० ई० से ८५० ई० के अन्दर अन्दर रखी गई थी । अरवियों का धर्म्म, पैग़म्बर, और कविता-सम्बन्धी ऐतिह्य ही उनका निजी है, शेष सब विदेशीय सन्तति है। विशाल

साहित्य और उसकी शाखा-प्रशाखा का विस्तार विदेशीय सामग्री के साथ विदेशियों ने ही किया था। अरबी मस्तिष्क की दैन्यता की सहायता के लिए यूनान, फ़ारस और भारत पर बोझ डाला गया था।

यूनान ने अपना अरस्तू (अरिस्टॉटल), प्टॉलमी और हरपोक्रटीज़ देकर जो दान अरबी साहित्य को दिया है उसे सब कोई जानता है। यूनानी साहित्य के विस्तार और अन्तःप्रवाह का विस्तृत वृत्तान्त पूर्वीय भाषा तत्त्व-शास्त्र में स्मरणीय वृद्धि प्रकट करेगा। परन्तु शोक है कि इस अत्यन्त प्राचीन समय की बहुत सी अरबी पुस्तकें सदैव के लिए विलुप्त हो चुकी हैं।

अरबी साहित्य में फ़ारसी अंश।

अरबी समूहों द्वारा पददलित सीसानी साम्राज्य अर्थात् फ़ारस ने, अपने विजेताओं को साहित्य में क्या दिया? इसने ख़लीफ़ा-राज्य के पूर्व में शासन की भाषा दी। इस भाषा का पीछे की शताब्दियों में (और आधुनिक समय तक भी), सम्भवतः कभी अधिक परित्याग नहीं हुआ। शासन की यही कृत्रिम-सीसानी भाषा थी जिसका कि छोटे छोटे पूर्वीय राजवंश उपयोग करने लगे, जिसका कि अब्बूसईदीय ख़लीफ़ाओं ने पालन-पोषण किया, और जो इन वंशों में से एक (अर्थात् ख़ुरासान और ट्रान्सऑक्शियाना के सामानी राजाओं) के दर्बार में साहित्य की भाषा हो गई। इस प्रकार ईरान के एक अत्यन्त पश्चिमीय भाग की बोली उसके सुदूर पूर्व में पहले साहित्य की भाषा बनी। इसी प्रकार वर्त्तमान जर्मन भाषा उस भाषा की सन्तान है जिसका व्यवहार जर्मनी के राजा लक्समबर्ग की दीवानी अदालतों में करते थे।

अरबी में वर्णनात्मक साहित्य—कथायें, आख्यायिकाएँ और उपन्यास—अधिकतर फ़ारसी से अनुवादित होकर आया है। उदाहरणार्थ देखिए 'सहस्ररजनी चरित्र' या 'अल्फ़लैला', कलीला और

दिमना जैसी जन्तुओं के मुख से निकली हुई कथायें जो कि सम्भवतः बौद्धों की बनाई हुई हैं, ईरान के राष्ट्रीय पाण्डित्य के कुछ भाग जो कि ख़ुदानामा या "ईश्वर की पुस्तक" से लिये गये हैं, और सब से ज़ियादह प्रेम-कथायें। अबूसईदीय ख़लीफ़ाओं के शासन-काल में अनुवाद की यह रीति थी और कहते हैं कि अलमुक्तदिर के समय (९०८-९३२ ई०) में इसने सब से अधिक लोक-प्रियता लाभ की। इसके अतिरिक्त उपदेशात्मक रचनायें, जो कि प्रायः अनुशिर्वान और उसके मंत्री बुज़ुर्जुमिहर सरीखे किसी सीसानी राजा या मुनि की संहिता के रूप में होती थीं, बहुत पसन्द की जाती थीं। यही हाल नीति-प्रवादों के संग्रहों का था। ये सब पुस्तकें फ़ारसी से अनुवादित की गई थीं। इसी प्रकार युद्ध-विद्या, शस्त्र-विद्या, पशुचिकित्सा-शास्त्र, आखेट-विद्या, अनुमान की विविध रीतियां और चिकित्सा शास्त्र पर पुस्तकें ईरानियों से ली गई थीं। इसके विपरीत, यह बात विचारणीय है कि सीसानी ईरानियों में गणित तथा ज्योतिष आदि शुद्ध विद्याओं के बहुत कम चिह्न मिलते हैं। या तो उनमें ये थीं ही बहुत कम और या अरबियों ने इनका भाषान्तर कराना पसन्द नहीं किया।

कहते हैं कि अली इब्न ज़ियाद अलतमीमी नामक एक ग्रंथकार ने ज़ीजल शहरयार नामक एक पुस्तक का फ़ारसी से अनुवाद किया था। पुस्तक के नाम से अनुमान होता है कि यह ज्योतिष की पुस्तक होगी। जिस समय अलबेरूनी ने अपनी कालगणना (Chronology of Ancient Nations, translated by Edward C. Sachau, London) लिखी उस समय यह पुस्तक विद्यमान थी। शायद इसी से प्रसिद्ध ख़्वारिज्मी ने फ़ारसी ज्योतिष-सम्बधी जानकारी प्राप्त की थी जिस का परिचय उसने ख़लीफ़ा मामूँ की आज्ञानुसार बनाये हुए अपने ब्रह्मसिद्धान्त के सार में दिया है। यह फ़ारसी ज्योतिष किस प्रकार

की थी इस का हमें कुछ ज्ञान नहीं, परन्तु हमें यह मानना पड़ता है कि इसकी विधि वैज्ञानिक थी और विवेचना और परिसंख्यान इसके आधारभूत थे—अन्यथा अलख़्वारिज़्मी कभी भी इस के सिद्धान्तों को अपनी पुस्तक में स्थान न देता।

भारत की पुस्तकें और विचार दो भिन्न भिन्न मार्गों से बग़दाद में पहुँचे हैं। कुछ तो संस्कृत से अरबी में अनुवादों द्वारा सीधे गये हैं, और कुछ ईरान से होकर, अर्थात् पहले इन का संस्कृत (पाली ? प्राकृत ?) से फ़ारसी में भाषान्तर हुआ और फिर वहाँ से अरबी में। इस रीति से कलीला और दिमना की कहानियाँ, और चिकित्सा-शास्त्र पर एक पुस्तक (सम्भवतः प्रसिद्ध चरक) अरबियों को प्राप्त हुई हैं।

अरबी साहित्य में भारतीय अंश।

भारत और बग़दाद में यह व्यवहार न केवल दो मार्गों से हुआ है बल्कि साथ ही दो भिन्न भिन्न कालों में भी हुआ है।

सिन्ध देश पर ख़लीफ़ा मनसूर (७५३—७७४ ई०) का वास्तविक शासन रहने से वहाँ से बग़दाद में दूत आया करते थे। इन में कई बड़े बड़े पण्डित भी थे जो अपने साथ ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मसिद्धान्त (सिंधिन्द) और खण्डखाद्यक (अरकन्द) लाये थे। इन्हीं पण्डितों की सहायता से अलफ़ज़ारी ने, और शायद याक़ूब इब्न तारिक ने भी, उन का भाषान्तर किया था। इन दोनों पुस्तकों का बहुत उपयोग हुआ है और भारी प्रभाव पड़ा है। इसी अवसर पर पहली बार अरबियों को ज्योतिष की वैज्ञानिक विधि का ज्ञान हुआ। टॉलमी की अपेक्षा उन्होंने पहले ब्रह्मगुप्त से शिक्षा पाई थी।

हिन्दू विद्या का दूसरा प्रवाह हारूँ (७८६—८०८ ई०) के काल में चला। पुरोहितों का बर्मक नामक एक कुल शासकों के साथ बल्ख़ से बग़दाद में आया था। बग़दाद में इस समय इन का बड़ा ज़ोर था।

वल्ख में इन का एक पूर्वपुरुप एक बुद्ध-देवालय 'नौ वहार', अर्थात् नव विहार (नये देवालय) का कर्मचारी था। कहते हैं वर्मक शब्द भारतीय भाषा से निकला है और इसका अर्थ परमक (विहार का उच्च पदाधिकारी) है। इस में सन्देह नहीं कि बर्मक वंश मुसलमान हो गया था, पर इस के सहयोगी इसे कभी सच्चा मुसलमान नहीं समझते थे। अपनी कुल मर्यादा के अनुसार ये (वर्मक वंशीय लोग) चिकित्सा और भैपज-संस्कार-शास्त्र के अध्ययनार्थ विद्वानों को भारत में भेजा करते थे। इस के अतिरिक्त ये कई हिन्दू पण्डितों को नौकर रख कर बग़दाद में लाये थे और उन्हें अपने चिकित्सालयों का मुख्य चिकित्सक नियत किया था। ये पण्डित उन की आज्ञानुसार चिकित्सा, भैपज-संस्कार-शास्त्र, विप-विद्या, दर्शन-शास्त्र, नक्षत्र-विद्या और अन्य विपयों की संस्कृत पुस्तकों का अरबी में अनुवाद करते थे। पिछली शताब्दियों तक भी मुसलमान विद्वान् वर्मक वंश के वार्ताहर (अर्थात् संदेशा ले जाने वाले) बन कर इसी अभिप्राय से कई वार यात्रा करते रहे हैं। अलमुआफ़क, जो अलबेरूनी के कुछ ही समय पहले हुआ है, इसी प्रकार का वार्ताहर था।

थोड़े ही दिन बाद जब सिन्ध बग़दाद के अधीन न रहा तो यह सारा संपर्क विलकुल टूट गया। अरबी साहित्य रूपी नद ने और पात्रों की ओर मुख फेरा। अब बग़दाद में न हिन्दू विद्वानों की विद्यमानता का और न संस्कृत के भापान्तरों का ही कोई उल्लेख मिलता है। यूनानी पाण्डित्य अरबियों के मन पर पहले ही पूर्ण प्रभुत्व जमा चुका था। इस पाण्डित्य को उन तक पहुँचाने वाले नस्टोरियन चिकित्सक, ईरान के दार्शनिक, और सिरिया के तथा ख़लीफ़ाओं के साम्राज्य के अन्य भागों के ईसाई पण्डित थे। अधिक प्राचीन अथवा वैज्ञानिक-साहित्य के भारत-अरबी स्तर में से कई एक पुस्तकों के नामों

के सिवा और कुछ भी हमारे समय तक नहीं पहुँचा। इन नामों में से भी कई ऐसे विकृत रूप में हैं कि उन को लगाने के सब यत्न निष्फल हुए हैं।

इस समय के हिन्दू वैद्यों में एक इब्न धन का उल्लेख है जोकि बग़दाद में बर्मकों के चिकित्सालय का अधिष्ठाता था। यह नाम शायद धन्य या धनिन् हो जोकि धन्वन्तरि नाम से कुछ मिलता जुलता है। यही सम्बन्ध कङ्क (जोकि उसी समय में एक और वैद्य था) और काङ्कायन के नामों में दीख पड़ता है।

पेय पदार्थों पर एक पुस्तक लिखने वाले اطر 'अत्र' नामक एक ग्रंथकार का नाम शायद अत्रि शब्द का अपभ्रंश हो।

प्रज्ञा या तत्त्वज्ञान पर एक बेदबा (بيدبا कभी कभी بيد باد भी लिखा है) की बनाई पुस्तक थी। यह नाम वेदव्यास का रूपान्तर है।

फिर साद बर्म (ساد برم) नामक एक ग्रंथकार का उल्लेख है, पर दुर्भाग्य से उसकी पुस्तक के विषय का कुछ भी पता नहीं। अल-बेरूनी ने भी सत्य नामक एक व्यक्ति को एक जातक का रचयिता लिखा है। शायद यह इसी साद बर्म अर्थात् सत्यवर्म्मन् का संक्षिप्त नाम हो।

ज्योतिष पर एक पुस्तक के लेखक किसी सनघल سنجيل (SNGHL) नामक व्यक्ति का उल्लेख है। इस के संस्कृत पर्याय का पता नहीं चलता।

तलवारों के चिह्नों पर एक पुस्तक का उल्लेख है। इसका लेखक कोई बाम्भर (باجبر) नामक मनुष्य बताया जाता है। यह शब्द व्याघ्र मालूम होता है।

इब्न वाद़िह ने अपने इतिहास में भारत के विषय में जो कुछ लिखा है वह कुछ अधिक महत्त्व का नहीं। उस के ये शब्द कि

"राजा घोप (کوش) सिन्दवाद मुनि के समय में था, और इस घोप ने स्त्रियों के कपटों पर पुस्तक बनाई" इस बात के साक्षी हैं कि बुद्धघोष की कुछ कथाओं का अरबी भाषान्तर किया गया था।

ज्योतिष, गणित (الحساب الهندي), फलित ज्योतिष (विशेषतया जातक), औषध और भैपजसंस्कार-विद्या की पुस्तकों के अतिरिक्त अरबियों ने सर्प-विद्या, विष-विद्या, शकुन-परीक्षा, कवच, पशु-चिकित्सा, तत्त्वज्ञान, तर्कविद्या, आचार-शास्त्र, राजनीति, और युद्ध-विद्या पर भारतीय ग्रंथों, अनेक कथाओं, और बुद्ध की एक जीवनी का भी अरबी में भाषान्तर किया था। कई अरबी लेखकों ने हिन्दुओं से कई एक विषयों का ज्ञान प्राप्त करके उन पर स्वतंत्र पुस्तकें, टीकाएँ, और उनके सार लिखे थे। अरबियों का मनभाता विषय भारतीय गणित था। अलकिन्दी और अन्य पुस्तकों के प्रकाशन से इस विषय का ज्ञान बहुत फैला।

ख़लीफ़ा-साम्राज्य के पूर्वी देशों में जिन छोटे छोटे कुलों ने पीछे से जाकर हारूँ और मनसूर के उत्तराधिकारियों से इलाके छीन लिये थे उन्होंने भारत के साथ अपना साहित्यिक संसर्ग नहीं रखा। बनू-लैतह (८७२-९०३ ई०) जिन के अधिकार में अफ़ग़ानिस्तान का एक बड़ा भाग और ग़ज़नी थी, हिन्दुओं के पड़ोसी थे, परन्तु साहित्य के इतिहास में उनका नाम कहीं भी नहीं मिलता। कलीला और दिमना की कथाएँ बूयज़ीद-वंशीय राजाओं के लिए अनुवादित हुई थीं। इन लोगों ने पश्चिमी फ़ारस और बैबीलोनिया में ९३२ ई० से १०५५ ई० तक राज्य किया था। इन सब राज-वंशों में से सिन्ध, पञ्जाब, और काबुल के हिन्दुओं के साथ सामानी वंश का ही सब से अधिक सम्बन्ध था। इस कुल का राज्य ख़लाफ़ा-साम्राज्य के सारे पूर्वीय भाग पर (८९२ ई० से ९९९ ई० तक) था। इन के मंत्री

अलजहानी ने सम्भवतः भारत-सम्बन्धी बहुत सी जानकारी इकट्ठी की थी। वास्तव में सामानियों के दास अल्पगीन ने जो कि उस समय उनका सेनापति और प्रान्तिक शासक था, अलबेरूनी के जन्म के कुछ वर्ष पूर्व अपने आपको ग़ज़नी में स्वतंत्र कर लिया था ; और उसके उत्तराधिकारी, सबुक्तगीन ने जो कि महमूद का पिता था भारत के साथ युद्ध और वहाँ स्थायी रूप से इसलाम को स्थापित करने के लिए मार्ग साफ़ किया था।

पुस्तक का इतिहास।

१८७९ तथा १८८० ई० में सिरिया और मेसोपोटेमिया में अपनी यात्रा के फलरूप साहित्यिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के पश्चात् मैं १८८३ ई० की ग्रीष्मऋतु में "अलबेरूनी के भारत" के सम्पादन और अनुवाद में लगा। अरबी हस्तलेख की एक प्रति मैं १८७२ ई० में ही तैयार कर चुका था, और १८७३ की गरमियों में अस्तम्बोल में उसका संशोधन भी हो चुका था। पुस्तक के विषय में अपने ज्ञान की जाँच करने के उद्देश्य से मैंने फ़रवरी १८८३ और फ़रवरी १८८४ के बीच पुस्तक का आद्योपान्त जर्मन भाषा में अनुवाद किया। १८८४ की गरमियों में अरबी संस्करण के प्रकाशनार्थ प्रेस के लिए अन्तिम बार कापी तैयार करना आरम्भ किया।

१८८५—१८८६ में मूल पुस्तक (अरबी में) छपी। इसी समय मैंने दूसरी बार सारी पुस्तक का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया। जैसे जैसे अरबी पुस्तक छपती जाती थीं वैसे वैसे मैं प्रत्येक पृष्ठ का अँग्रेज़ी अनुवाद करता जाता था।

१८८७ और १८८८ के पूर्वार्ध में अँग्रेज़ी अनुवाद, टीका तथा सूचीपत्र सहित, छप गया।

अलबेरूनी की शैली में लिखी हुई अरबी पुस्तक का अँग्रेज़ी में अनुवाद करना, विशेषतः उस मनुष्य के लिए जिसकी मातृ-भाषा अँग्रेज़ी नहीं, बड़े साहस का काम है। अपने अनुवाद के विषय में मैं कह सकता हूँ कि मैंने ग्रंथकार की भाषा में व्यवहार-ज्ञान ढूँढ़ने और उसे यथासम्भव स्पष्ट करने का यत्न किया है।

जो लोग अरबी भाषा से अनभिज्ञ हैं उन्हें यह बता देना वृथा न होगा कि इस भाषा के वाक्य शब्दार्थ और विन्यास की दृष्टि से कई बार सर्वथा स्पष्ट प्रतीत होते हुए भी बिल्कुल भिन्न अर्थ दे सकते हैं। इस पुस्तक का तो हस्तलेख भी ऐसा ख़राब था कि उसे पढ़ने में भारी कठिनाई हुई।

बड़े हर्ष का विषय है कि महारानी विक्टोरिया के इंडिया आफ़िस ने न केवल मूल अरबी संस्करण के लिए ही प्रत्युत उसके अँग्रेज़ी अनुवाद के लिए भी सहायता प्रदान कर मुझे कृतार्थ किया।

बर्लिन, ४ अगस्त, १८८८.

एडवर्ड सचौ।

अलबेरूनी का भारत।

अर्थात्

हिन्दुओं के सब प्रकार के—क्या उपादेय और क्या
हेय—विचारों का एक सत्य वर्णन।

लेखक

अबुलरैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद

अलबेरूनी।

प्रस्तावना ।

आरम्भ करता हूँ मैं परमात्मा के नाम से जोकि दयालु और कृपालु है । पृष्ठ २

> १ ऐतिह्य, जनश्रुति और प्रत्यक्ष ।
> २. भिन्न भिन्न प्रकार के सम्वाददाता ।
> ३. सत्यवादिता की प्रशंसा ।

कोई भी मनुष्य इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि ऐतिहासिक दृष्टि से जनश्रुति अर्थात् सुनी सुनाई बात प्रत्यक्ष अर्थात् अपनी आँखों देखी बात के समान विश्वसनीय अथवा प्रामाणिक नहीं हो सकती। कारण यह है कि प्रत्यक्ष की दशा में तो देखने वाले की आँख जिस पदार्थ को देखती है उस के तत्त्व को, जिस काल और जिस देश में वह पदार्थ वर्तमान होता है, जाँच लेती है; परन्तु जनश्रुति में विशेष प्रकार की कठिनाइयाँ पड़ जाती हैं। यदि ये दिक़्क़तें न होतीं तो प्रत्यक्ष-दर्शन से जनश्रुति अच्छी थी क्योंकि प्रत्यक्ष दर्शन का विषय तो केवल ऐसा सत्य पदार्थ ही होसकता है जो अल्प काल तक रहता हो, परन्तु जनश्रुति अर्थात् शब्दबोध के लिए भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान तीनों काल एकसे हैं। इस लिए इस का प्रयोग भाव पदार्थों तथा अभाव पदार्थों (जो नष्ट हो चुके हैं या जो अभी प्रकट ही नहीं हुए) दोनों पर हो सकता है। लिपिबद्ध ऐतिह्य एक प्रकार की जनश्रुति ही है जिसे कि हम सब से उत्तम कह सकते हैं; क्योंकि यदि लेखनी के ये चिरस्थायी स्मृतिस्तम्भ—लिपिबद्ध ऐतिह्य—न होते तो जातियों के इतिहास को हम कैसे जान सकते ?

किसी ऐसे ऐतिह्य को, जो स्वयम् किसी युक्ति अथवा भौतिक नियम की दृष्टि से असम्भव प्रतीत न होता हो, सत्य अथवा असत्य ठहराने के लिए उसके संवाददाताओं का ख़याल करना पड़ता है। संवाददाताओं पर भिन्न भिन्न जातियों के पक्षपात, पारस्परिक विरोध

तथा विद्वेष का प्रभाव प्राय: पड़ता है। अत: भिन्न भिन्न प्रकार के संवाददाताओं में भेद रखना हमारे लिये आवश्यक है।

कई संवाददाता किसी कुल या जाति-विशेष के होने के कारण अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उस कुल अथवा जाति की श्लाघा करके या अपने विरोधी कुल या जाति पर आक्षेप करके झूठ बोल देते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा करने से उनका अभीष्ट सिद्ध होसकता है। दोनों दशाओं में लोभ और विद्वेष आदि दुर्गुण ही ऐसा करने को उन्हें प्रेरित करते हैं।

कई अन्य प्रकार के संवाददाता किसी मनुष्य-समाज के विषय में इसलिए भी झूठ बोलते हैं कि या तो वे किसी प्रकार से उन लोगों के अनुगृहीत होने के कारण उन्हें पसन्द करते हैं, और या किसी अप्रीतिकर घटना के कारण उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ये भी बहुत कुछ ऊपर लिखे संवाददाताओं जैसे ही होते हैं क्योंकि इनके प्रेरक भी व्यक्तिगत अनुराग और वैर ही होते हैं।

कोई कोई नीच अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अथवा सत्य को प्रकट करने का साहस न रखने के कारण भी झूठ बोल देता है।

कई संवाद-दाता इसलिए झूठ बोलते हैं कि झूठ बोलना उनकी प्रकृति हो चुकी है; वे इस के विपरीत कर ही नहीं सकते। इसका कारण उनके आचरणों की नीचता और अन्त:करण की मलिनता होती है।

अन्तत: एक मनुष्य कहने वालों की बात पर अन्धाधुन्ध विश्वास करने से अज्ञान के कारण भी झूठ कह सकता है।

यदि इस प्रकार के संवाद-दाताओं की संख्या इतनी बढ़ जाय कि वे एक ऐतिह्य-सूचक समुदाय बन जायँ, या समय पाकर वे जातियों तथा सम्प्रदायों के निरन्तर क्रम का एक ऐसा रूप धारण करलें जिस

में कि भूठ के घड़ने वाले तथा सुनने वाले के बीच पहला संवाददाता और उसके अनुयायी-वर्ग एक प्रकार की शृङ्खला का काम दें, और तब यदि बीच की कड़ियों को अलग करदिया जाय तो हमारा सम्बन्ध केवल कथा के घड़ने वाले के साथ ही रह जायगा जोकि उपरोक्त अनृतवादियों में से ही एक है।

केवल वही मनुष्य सराहनीय है जो असत्य से दूर भागता और सत्य का ही अवलम्बन करता है। दूसरों का तो कहना ही क्या स्वयम् अनृतवादी भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

.क़ुरान में आया है कि "सत्य बोलो, चाहे वह तुम्हारे अपने ही विरुद्ध क्यों न हो". (सूरा ४, १३४) और खीष्ट अपने धर्म्म ग्रंथ में इस प्रकार कहता है कि "सम्राटों के सन्मुख सत्य बोलने में उनके क्रोध से मत डरो। उनका तुम्हारे शरीर पर चाहे अधिकार हो, पर आत्मा का वे कुछ भी नहीं कर सकते।" (मत्ती, १० अध्याय, १८, १९, २९। लूका १२ वाँ अध्याय ४)। इन शब्दों में खीष्ट हमें नैतिक साहस के प्रयोग की आज्ञा देता है। कारण यह कि जिस को साधारण लोग साहस— निर्भयता से रण में घुस जाना या भयानक गहरे गढ़े में कूद पड़ना— कहते हैं वह साहस का केवल एक प्रकार है, परन्तु वास्तविक साहस जो सब प्रकारों से कहीं ऊँचा है कर्म अथवा वाणी द्वारा मृत्यु को तुच्छ समझने का नाम है।

जैसे न्यायशीलता अर्थात् न्यायकारी होना एक ऐसा गुण है जिसे कि लोग उसकी निजी विशेषता के लिए पसन्द करते हैं, उसी प्रकार शायद कुछ एक ऐसे लोगों को छोड़ कर जिन्होंने कि कभी सत्य की मिठास का आस्वादन ही नहीं किया, या जो सत्य को जानते तो हैं परन्तु जानबूझ कर उस विख्यात अनृतवादी की भांति सत्य से दूर भागते हैं जिस से जब पूछा गया कि क्या तुमने कभी सत्य कहा है

तो उसने उत्तर दिया कि 'यदि मुझे सत्य कहने में कोई डर न हो तो मैं कहता हूँ कि नहीं,' सत्यता की भी यही बात है। मिथ्यावादी न्याय के मार्ग को छोड़ देता है और सदैव अत्याचार, मिथ्यासाक्षी, विश्वासघात, दूसरों के धन को छल से छीन लेने, चोरी, तथा नाना प्रकार के अन्य पापाचरणों का—जिन से संसार और मनुष्य-समाज को हानि पहुँचती है—पक्षपाती हो जाता है।

एक बार जब मैं उस्ताद 'अबू सहल अब्दुल मुनइम इब्न अली इब्न नूह अत्तिफ़्लीसी' (परमात्मा उन्हें शक्ति दें!) से मिलने गया तो मैंने देखा कि वे मोतज़िला सम्प्रदाय पर पुस्तक लिखने वाले एक ग्रंथकार को इसलिए बुरा कह रहे थे कि उसने उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को शुद्ध रूप में प्रकट नहीं किया। उन का सिद्धान्त तो यह है कि ईश्वर स्वतः सर्वज्ञ है, पर ग्रंथकार इसी मत को इस प्रकार प्रकट करता है कि ईश्वर को कुछ ज्ञान नहीं (मनुष्य के ज्ञान के सदृश)। इस से उसने अशिक्षित लोगों को भ्रम में डाल दिया है कि मोतज़िला सम्प्रदाय के मतानुसार परमेश्वर अज्ञानी है। भगवान् धन्य है, क्योंकि वह ऐसी सब अनुचित बातों से ऊपर है! तब मैंने गुरु जी से कहा कि जो लोग किसी ऐसे धर्म्म अथवा दार्शनिक पद्धति का वर्णन करते हैं जिसका कि उनके अपने विचारों से किसी अंश में अथवा सर्वांश में भेद हो तो वे भी ठीक ऐसी ही निन्दनीय शैली का अवलम्बन करते हैं। एक ही धर्म्म के अङ्गीभूत मतों के विषय में ऐसा झूठ—उन मतों के एक दूसरे से भली प्रकार मिश्रित होने के कारण—सुगमता से ही मालूम हो सकता है; परन्तु इसके विपरीत, ऐसी विचार-पद्धतियों से सम्बन्ध रखने वाले कथनों में, जो कि मूल

१. धार्म्मिक तथा दार्शनिक सिद्धांतों पर मुसलमानों द्वारा लिखी हुई पुस्तकों के दोष।

२. हिन्दुओं के विषय में उसका उदाहरण। ईरान शहरी की पुस्तक की आलोचना।

३. बेरूनी को इस विषय पर पुस्तक लिखने के लिए कहा गया।

४. यह अपनी शैली बताता है।

सिद्धान्त तथा उसकी व्याख्या दोनों में हम से भिन्न हैं, झूठ का अंश मालूम करना वड़ा कठिन है; क्योंकि ऐसा अनुसन्धान करना कोई सुगम वात नहीं; और साथ ही, इसे समझने के लिए साधन भी बहुत थोड़े होते हैं। धार्म्मिक तथा दार्शनिक सम्प्रदायों पर जितना भी हमारा साहित्य है उस में इसी प्रवृत्ति की अधिकता पाई जाती है। यदि लेखक विशुद्ध वैज्ञानिक शैली की आवश्यकताओं का अनुभव नहीं करता तो वह कुछ एक ऊपर ऊपर की वातें ही इकट्ठी कर लेता है जिस से न तो उस सिद्धान्त के अनुयायी ही सन्तुष्ट होते हैं और न वे लोग जिन्हें कि इनका भली प्रकार ज्ञान है। ऐसी अवस्था में यदि वह एक सत्यशील व्यक्ति है तो न केवल वह अपने शब्दों को ही वापस लेगा प्रत्युत साथ ही लज्जित भी होगा। परन्तु यदि वह ऐसा नीच है कि सत्य का सम्मान नहीं करता तो वह अपनी ही असली वात पर हठ से झगड़ने लग जायगा। इसके विपरीत एक सत्य-मार्गानुगामी लेखक किसी पंथ के सिद्धान्तों को उन लोगों की पुराण-कथाओं में से ढूँढने का भरसक यत्न करता है। सुनने में तो ये कथाएँ वड़ी रोचक प्रतीत होती हैं परन्तु इन्हें सच्ची समझने का विचार उसे स्वप्न में भी नहीं आता।

हमारी वात को स्पष्ट करने के लिए उपस्थित लोगों में से एक ने उदाहरणार्थ हिन्दुओं के मतों और सिद्धान्तों पर वात चलाई। तव मैं ने कहा कि इस विषय पर जो कुछ भी हमारे साहित्य में मिलता है वह सव अन्य-कल्पित वार्ता है जिसे कि एक ने दूसरे से लिया है। यह एक प्रकार की खिचड़ी है। इसके गुणों तथा दोषों को परीक्षा की छलनी में छान कर कभी किसी ने अलग अलग नहीं किया। विषय का ज्यों का त्यों वर्णन करने का विचार रखने वाले लेखकों में से मैं केवल एक को ही जानता हूँ। वह अवुल् अव्वास

पृ० ४

अलेरान शहरी है। अपने समय के प्रचलित पंथों में से वह किसी का भी अनुयायी न था, प्रत्युत उसने अपना ही एक अलग पंथ निकाला था जिसके प्रचार के लिए कि वह भारी यत्न करता था। उसने यहूदियों और ईसाईयों के सिद्धान्तों तथा उनके धर्म्म ग्रंथों—तौरेत और बायबल—में लिखी बातों का भली प्रकार वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उसने मानविया मत तथा अन्य अति प्राचीन समयों के विलुप्तप्राय मतों का भी जिनका कि उन पुस्तकों में उल्लेख है—अत्युत्तम रीति से वर्णन किया है। परन्तु वह भी अपनी पुस्तक में हिन्दुओं और बौद्धों पर लेखनी चलाते समय अपने आदर्श से गिर गया है, और अपनी पुस्तक के उत्तरार्द्ध में जिस ज़रक़ान नामक पुस्तक के विषय उसने मिला लिये हैं उसी ज़रक़ान पर चोट करते हुए वह अपने मार्ग से भटक गया है। जो कुछ उसने ज़रक़ान से नहीं लिया वह हिन्दुओं और बौद्धों के सामान्य लोगों से सुना है।

इसके कुछ समय बाद गुरु अबू सहल ने ऊपर लिखी पुस्तकों को दूसरी बार पढ़ा! जब उन्होंने देखा कि उनकी दशा सचमुच ही वैसी है जैसी कि मैं ने ऊपर बतलाई तो उन्होंने मुझसे प्रेरणा की कि जो कुछ मुझे हिन्दुओं के विषय में ज्ञात है उसे लिख दूँ, ताकि जो लोग उनसे धार्म्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ करना चाहें उन्हें इससे सहायता मिले, और जो उनसे मेल-मिलाप करना चाहें उन्हें यह ज्ञान-भण्डार का काम दे। गुरु जी को प्रसन्न करने के लिए मैं ने हिन्दुओं के सिद्धान्तों पर यह पुस्तक लिखी है। मैं ने उन—हमारे धर्म्म विपक्षियों—के विरुद्ध कोई निर्मूल दोषारोपण नहीं किया है। मुसलमान होने के कारण मैं ने यह अपना धर्म्म समझा है कि जहाँ जहाँ हिन्दुओं के निजी शब्द उनके किसी विषय को अधिक स्पष्ट कर सकते हैं वहाँ मैं उनके वही शब्द ज्यों के त्यों दे दूँ। यदि इन

उदाहरणों का विषय नितान्त मूर्तिपूजकों ऐसा हो, और सत्य के अनुयायियों, अर्थात् मुसलिम लोगों, को वह सदोष प्रतीत हो तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि हिन्दुओं का ऐसा ही विश्वास है, और वे ही अपने पक्ष को भली भांति युक्ति-संगत सिद्ध करने में समर्थ हैं।

यह पुस्तक विवादात्मक नहीं। मैं विपक्षियों की उन युक्तियों को जिन्हें कि मैं अशुद्ध समझता हूँ केवल उनका खण्डन करने के लिए ही यहां नहीं लिखूँगा। मेरी पुस्तक सत्य बातों का एक सरल ऐतिहासिक वृत्तान्त होगी। मैं पाठकों के सामने हिन्दुओं के सिद्धान्त उनके वास्तविक रूप में रख दूँगा, और साथ ही यूनानियों के भी वैसे ही सिद्धान्त देता जाऊँगा ताकि उनका पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट होता जाय। यद्यपि यूनानी तत्त्ववेत्ताओं का लक्ष्य निगूढ़ सत्य है पर वे जन-साधारण-सम्बन्धी किसी भी प्रश्न में अपने धर्म्म तथा लोकाचार के प्रचलित और साधारण सिद्धान्तों तथा कथनों से ऊपर नहीं उठते। यूनानी विचारों के अतिरिक्त हम कभी कभी सूफ़ियों या ईसाइयों के किसी एक पंथ के विचारों का भी उल्लेख करेंगे, क्योंकि पुनर्जन्म और (विश्वदेवता-वाद के अनुसार) ईश्वर तथा सृष्टि की एकता-प्रभृति सिद्धान्तों में इन पंथों की बहुत सी बातें आपस में मिलती हैं।

मैं संस्कृत के दो ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद कर चुका हूँ। उन में से एक तो सृष्टि की सकल वस्तुओं तथा उत्पत्ति के विषय में है। इसे सांख्य कहते हैं। दूसरी का विषय जीवात्मा का शारीरिक बन्धनों से मुक्ति-लाभ करना है। इसका नाम पतञ्जलि (पातञ्जल ?) है। इन दोनों ग्रंथों के अन्दर हिन्दुओं के मुख्य सिद्धान्त तो सब आ जाते हैं परन्तु उनसे निकली हुई शाखाएँ और उपशाखाएँ नहीं

आतीं। मुझे आशा है कि अब इस पुस्तक के बन जाने से पहली दोनों और इसी प्रकार की अन्य पुस्तकों की आवश्यकता न रहेगी। यह पुस्तक विषय को भली भाँति स्पष्ट कर देगी जिस से पाठक उसे अच्छी तरह समझ सकेंगे—परमात्मा करें कि ऐसा ही हो!

विषय-सूची

तेईसवाँ परिच्छेद।

पुराणों और अन्य ग्रंथों के बनाने वालों के विश्वासानुसार मेरु पर्वत का वर्णन।

चौबीसवाँ परिच्छेद।

सात द्वीपों में से प्रत्येक के विषय में पौराणिक ऐतिह्य।

पच्चीसवाँ परिच्छेद।

भारत की नदियों, उनके उद्गम-स्थानों और मार्गों पर।

छब्बीसवाँ परिच्छेद।

हिन्दू ज्योतिषियों के मतानुसार आकाश और पृथ्वी के आकार पर।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद।

पृथिवी की प्रथम दो गतियों (एक तो प्राचीन ज्योतिषियों के मतानुसार पूर्व से पश्चिम को, और दूसरी विषुवों का अयन चलन) पर हिन्दू ज्योतिषियों तथा पुराणकारों दोनों के मतानुसार।

अट्ठाइसवाँ परिच्छेद।

दश दिशाओं के लक्षणों पर।

उन्तीसवाँ परिच्छेद।

हिन्दुओं के मतानुसार पृथिवी कहाँ तक बसी हुई है।

तीसवाँ परिच्छेद।

लङ्का अर्थात् पृथिवी के गुम्बज़ (शिखरतोरण) पर।

इकतीसवाँ परिच्छेद।

भिन्न भिन्न स्थानों के उस प्रभेद पर जिसे हम रेखांश-भेद कहते हैं।

बत्तीसवाँ परिच्छेद।

सामान्यतः काल और अवधि (मुद्दत) सम्बंधी कल्पना पर, और संसार की उत्पत्ति तथा विनाश पर।

तेतीसवाँ परिच्छेद।

भिन्न भिन्न प्रकार के दिन या अहोरात्रि के मान की कल्पनाओं पर, और विशेषतः दिन तथा रात के प्रकारों पर।

चौतीसवाँ परिच्छेद।

समय के छोटे छोटे भागों में अहोरात्रि के विभाग पर।

पैंतीसवाँ परिच्छेद।

भिन्न भिन्न प्रकार के मासों और वर्षों पर।

छत्तीसवाँ परिच्छेद।

काल के चार परिमाणों पर जिन्हें 'मान' कहते हैं।

सैंतीसवाँ परिच्छेद।

मास और वर्ष के विभागों पर।

अड़तीसवाँ परिच्छेद।

दिनों के बने हुए काल के विविध परिमाणों पर, इस में ब्रह्मा की आयु भी है।

उनतालीसवाँ परिच्छेद।

काल के उन परिमाणों पर जो ब्रह्मा की आयु से बड़े हैं।

चालीसवाँ परिच्छेद।

काल की दो अवधियों के मध्यवर्ती अन्तर—सन्धि—पर जो कि उन दोनों में जोड़नेवाली शृङ्खला है।

इकतालीसवाँ परिच्छेद।

"कल्प" तथा "चतुर्युगी" की परिभाषाओं के लक्षण, और एक का दूसरे के द्वारा स्पष्टीकरण।

बयालीसवाँ परिच्छेद।

चतुर्युगी की युगों में बाँट और युगों के विषय में भिन्न भिन्न सम्मतियाँ।

तेंतालीसवाँ परिच्छेद।

चार युगों का और चौथे युग की समाप्ति पर जिन बातों के होने की आशा है उन सब का वर्णन।

चवालीसवाँ परिच्छेद।

मन्वन्तरों पर।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद।

सप्तर्षि नामक तारामण्डल पर।

छयालीसवाँ परिच्छेद।

नारायण, भिन्न भिन्न समयों में उसका प्रादुर्भाव, और उसके नामों पर।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद ।

वासुदेव और महाभारत के युद्ध पर ।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद ।

अक्षौहिणी की व्याख्या ।

उनचासवाँ परिच्छेद ।

संवतों का संक्षिप्त वर्णन ।

पचासवाँ परिच्छेद ।

एक 'कल्प' में और एक 'चतुर्युगी' में तारा-गण कितने चक्कर लगाते हैं ।

इक्यावनवाँ परिच्छेद ।

'अधिमास', 'ऊनरात्रि', और 'अहर्गण' का वर्णन—जोकि दिनों की भिन्न भिन्न संख्याओं को प्रकट करते हैं ।

बावनवाँ परिच्छेद ।

'अहर्गण' की स्थूल रूप से गिनती, अर्थात् वर्षों और मासों के दिन, और दिनों के वर्ष और मास बनाना ।

तिरपनवाँ परिच्छेद ।

अहर्गण, अथवा समय की विशेष विशेष तिथियों या चणों के लिए पंचांगों में नियत किये हुए विशेष नियमों के अनुसार वर्षों के मास बनाने पर ।

चौवनवाँ परिच्छेद ।

नक्षत्रों के मध्यम स्थानों की गिनती पर ।

पचपनवाँ परिच्छेद।

नक्षत्रों के क्रम, उनकी दूरियों, और परिमाण पर।

छप्पनवाँ परिच्छेद।

चन्द्रमा के स्थानों पर।

सत्तावनवाँ परिच्छेद।

नक्षत्रों के सौर रश्मियों के नीचे से प्रकट होने पर, और उन रीतियों और अनुष्ठानों पर जो कि हिन्दू लोग इन अवसरों पर करते हैं।

अट्ठावनवाँ परिच्छेद।

सागर में ज्वार भाटा कैसे आता है।

उनसठवाँ परिच्छेद।

सूर्य्य और चन्द्र के ग्रहणों पर।

साठवाँ परिच्छेद।

पर्वन् पर।

इकसठवाँ परिच्छेद।

धर्म्म तथा नक्षत्रविद्या (नजूम) की दृष्टि से काल के भिन्न भिन्न मानों के अधिष्ठाताओं पर, और तत्सम्बन्धी विषयों पर।

बासठवाँ परिच्छेद।

साठ वर्षों के संवत्सर पर जिसे 'षष्ट्याब्द' भी कहते हैं। ५७८

तिरसठवाँ परिच्छेद।

विशेषत: ब्राह्मणों से सम्बन्ध रखने वाली बातों और जीवन में उनके कर्त्तव्य-कर्म्मों पर।

चौंसठवाँ परिच्छेद।

उन रीति रिवाजों और कर्म्मों पर जो ब्राह्मणों को छोड़ कर अन्य जातियां अपने जीवन-काल में करती हैं।

पैंसठवाँ परिच्छेद।

यज्ञों पर।

छियासठवाँ परिच्छेद।

पवित्र स्थानों के दर्शनों और तीर्थयात्रा पर।

सड़सठवाँ परिच्छेद।

दान पर और इस बात पर कि मनुष्य को अपनी कमाई कैसे व्यय करनी चाहिए।

अड़सठवाँ परिच्छेद।

भक्ष्याभक्ष्य और पेयापेय पदार्थों पर।

उनहत्तरवाँ परिच्छेद।

विवाह, स्त्रियों के मासिक धर्म्म, भ्रूण, और प्रसवावस्था पर।

सत्तरवाँ परिच्छेद।

अभियोगों पर।

इकहत्तरवाँ परिच्छेद।

दण्ड और प्रायश्चित्त पर।

बहत्तरवाँ परिच्छेद।

दाय पर, और इस बात पर कि मृत व्यक्ति के उस पर क्या अधिकार हैं।

तिहत्तरवाँ परिच्छेद ।

निर्जीव तथा सजीव व्यक्तियों के शरीरों के अधिकारों के विषय में (अर्थात् अन्त्येष्टि संस्कार और आत्म-हत्या के विषय में)

चौहत्तरवाँ परिच्छेद ।

उपवास और उनके नाना प्रकारों पर ।

पचहत्तरवाँ परिच्छेद ।

उपवास के लिए दिन निश्चय करना ।

छिहत्तरवाँ परिच्छेद ।

त्योहारों और आनन्द के दिनों पर ।

सतत्तरवाँ परिच्छेद ।

विशेष प्रकार से पवित्र दिनों पर, शुभाशुभ समयों पर, और ऐसे समयों पर जो स्वर्ग में आनन्द लाभ करने के लिए विशेष रूप से अनुकूल हैं ।

अठत्तरवाँ परिच्छेद ।

करणों पर ।

उनासीवाँ परिच्छेद ।

युगों पर ।

अस्सीवाँ परिच्छेद ।

हिन्दुओं की नक्षत्र-विद्या के प्रास्ताविक नियमों पर और ज्योतिष सम्बन्धी गणनाओं के विषय में उनकी रीतियों का संक्षिप्त वर्णन ।

पहला परिच्छेद ।

पृ० ९

हिन्दुओं का स्थूल रूप से वर्णन, जो कि उनके विषय में हमारे कथन के उपोद्‌घात के रूप में है ।

इन बाधाओं का वर्णन जो हिन्दुओं को मुसलमानों से अलग करती हैं, और जिनके कारण मुसलमानों के लिए हिन्दुओं के प्रत्येक विषय का अध्ययन करना बड़ा कठिन हो जाता है।

अपने विवरण को आरम्भ करने से पूर्व हम यह आवश्यक समझते हैं कि प्रत्येक भारतीय विषय को उसके वास्तविक रूप में जानना जिस कारण से हमारे लिए इतना कठिन हो रहा है उसे यथार्थ रीति से स्पष्ट करदें। इन बाधाओं का ज्ञान हो जाने से प्रथम तो हमारा काम सुगमता से चलने लगेगा। यदि ऐसा न भी हुआ तो भी इसमें जो त्रुटियाँ रह जायँगी उनके लिए क्षमा माँगने के लिए हमें पर्य्याप्त कारण मिल जायगा। अतः पाठक को अपने मन में यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि हिन्दू लोगों की प्रत्येक बात हम से भिन्न है। निस्सन्देह कई बातें जो आज बड़ी गहन और अस्पष्ट प्रतीत होती हैं पारस्परिक मेल मिलाप के बढ़ जाने से सर्वथा स्पष्ट हो जायँगी। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो भिन्नता की एक भारी झील देख पड़ती है उसके कई कारण हैं।

पहला कारण भापा भेद, और उनकी भापा का विशेष रूप।

पहला कारण यह है कि जो जो बातें दूसरी जातियों की हम से मिलती हैं उन सब में हिन्दुओं से हमारा भेद है। यद्यपि अन्य जातियों के साथ भी हमारा भापा-भेद है फिर भी हम पहले यहाँ भापा को ही लेते हैं। इस बाधा को दूर

करना (संस्कृत सीखना) कोई सुगम बात नहीं, क्योंकि उनकी भाषा का भण्डार, क्या शब्दों की दृष्टि से और क्या विभक्तियों की दृष्टि से, अरबी की भांति बहुत विस्तृत है। एक ही पदार्थ के अनेक रूढ़ि और यौगिक नाम हैं, और एक ही शब्द अनेक विषयों के लिए प्रयुक्त होता है। इन विषयों को समझने के लिए इनका नाना विशेषणों द्वारा एक दूसरे से भेद करना आवश्यक होता है। कोई भी व्यक्ति यह नहीं जान सकता कि अमुक शब्द का क्या अर्थ है—जब तक कि उसे उसके प्रसंग और वाक्य में पूर्वापर सम्बन्ध का ज्ञान न हो। हिन्दू, दूसरे लोगों की भांति, अपनी भाषा के इस विस्तृत क्षेत्र पर अभिमान करते हैं पर वास्तव में यह एक दोष है।

फिर यह भाषा दो शाखाओं में विभक्त है। एक तो उपेक्षित बोली है जिसे केवल साधारण लोग बोलते हैं, और दूसरी श्रेष्ठ भाषा जो शिक्षित और उच्च श्रेणी के लोगों में प्रचलित है। यह दूसरी भाषा बड़ी उन्नत है। इसमें शब्दों की विभक्ति, व्युत्पत्ति और अलङ्कार तथा व्याकरण का लालित्य आदि सभी बातें पाई जाती हैं।

इसके अतिरिक्त कई वर्ण (व्यञ्जन) जो इस भाषा में प्रयुक्त होते हैं ऐसे हैं जो न तो अरबी और फ़ारसी के वर्णों के सदृश हैं, और न किसी प्रकार उनसे मिलते ही हैं। हमारी जिह्वा और हमारा कण्ठ बड़ी कठिनता से भी उनका शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते। हमारे कान भी उसी प्रकार के अन्य वर्णों से उनका भेद नहीं कर सकते, और न हमीं अपनी वर्णमाला में उन्हें लिख सकते हैं। अतः भारतीय शब्दों को अपनी लिपि में प्रकट करना बड़ा कठिन है क्योंकि उच्चारण को ठीक प्रकटाने के लिए हमें अपने वर्ण-विन्यास-सम्बन्धी चिह्नों और लग मात्रा को बदलना पड़ेगा, और विभक्तियों के अन्तिम भागों को या तो साधारण अरबी नियमों के अनुसार या

इसी के निमित्त बनाये हुए विशेष नियमों के अनुसार उच्चारण करना पड़ेगा ।

इसके साथ ही दूसरी बात यह है कि भारतीय लेखक बड़े असावधान हैं । वे पुस्तक को मूल हस्तलेख के साथ मिला कर शुद्ध करने का कष्ट सहन नहीं करते । इसका यह परिणाम हुआ है कि ग्रंथकार के मानसिक विकास के उत्कृष्ट फल उनकी असावधानता के कारण नष्ट हो रहे हैं । उसकी पुस्तक एक दो प्रतियों में ही दोषों से ऐसी भर जाती है कि पिछली प्रति एक बिल्कुल नवीन पुस्तक प्रतीत होने लगती है, और उसे न कोई विद्वान् और न उस विषय से परिचित कोई और ही व्यक्ति, चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुसलमान, समझ सकता है ।

पाठकों को इस बात का प्रमाण इसी से मिल जायगा कि हमने हिन्दुओं के किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण निर्धारित करने के लिए उसे अनेक बार बड़ी सावधानता से लिखा, परन्तु जब उनके सन्मुख फिर उसे पढ़ा तो वे उसे बड़ी मुश्किल से पहचान सके ।

अन्य विदेशीय भाषाओं की भांति संस्कृत में भी दो तीन व्यञ्जन इकट्ठे आ जाते हैं । ये वह व्यञ्जन हैं जिन्हें फ़ारसी व्याकरण में गुप्त स्वर वाले कहा जाता है । बहुत से संस्कृत शब्द और नाम ऐसे ही स्वर-रहित व्यञ्जनों से आरम्भ होते हैं, इसलिए उनके उच्चारण करने में हमें बड़ी कठिनाई होती है ।

हिन्दुओं की सारी वैज्ञानिक पुस्तकें नाना प्रकार के ललित छन्दों में लिखी हुई हैं । इसका कारण यह है कि वे समझते हैं कि बढ़ा घटा देने से पुस्तकें शीघ्र ही भ्रष्ट हो जाती हैं । उनका विचार है कि छन्दों में होने से उनकी शुद्धता में कोई अन्तर न आयगा, और वे सुगमता से कण्ठस्थ हो सकेंगी क्योंकि उनकी सम्मति में केवल वही बात नियमानुसार है जो कण्ठस्थ हो सकती है, न कि वह

पृ० १०

जो केवल लिपिबद्ध रहती है। अब देखिए, प्रत्येक व्यक्ति यह बात जानता है कि कविता में बहुत से अस्पष्ट और निरर्थक शब्द केवल छन्द की पूर्ति के लिए ही बलात् ठूँसे जाते हैं जिस से विशेषांश में वाक्प्रपंच की आवश्यकता पड़ती है। एक ही शब्द के एक समय कुछ और दूसरे समय कुछ अर्थ देने का एक यह भी कारण है।

इस से यह विदित हो गया कि संस्कृत-साहित्य के अध्ययन को इतना कठिन बना देने वाली बातों में से एक उस के ग्रन्थों का छन्दों में होना भी है।

दूसरा कारण; उनका धार्म्मिक पक्षपात।

दूसरे, उनका धर्म्म हमारे धर्म्म से बिलकुल भिन्न है। जिन बातों पर उनका विश्वास है हम उन में से किसी को भी नहीं मानते। और यही दशा उनकी है। सर्वतो-भावेन धार्म्मिक विषयों पर वे आपस में बहुत कम झगड़ते हैं। अधिक से अधिक उन की लड़ाई शब्दों की होती है। धार्म्मिक शास्त्रार्थ में वे कभी अपने प्राण, शरीर, अथवा सम्पत्ति को जोखों में नहीं डालते। इस के विपरीत, उन का सारा पक्षपात उन लोगों के विरुद्ध कार्य्य करता है जो कि उन में से नहीं—जो विदेशीय हैं। वे उन्हें म्लेच्छ अर्थात् अपवित्र कह कर पुकारते हैं, और उनके साथ खान-पान, उठना-बैठना, रोटी-बेटी इत्यादि किसी प्रकार का भी सम्बंध नहीं रखते, क्योंकि उनका विचार है कि ऐसा करने से हम भ्रष्ट हो जायँगे। जो वस्तु किसी विदेशी के जल या अग्नि से छू जाय उसे भी वे भ्रष्ट समझते हैं। यह दोनों वस्तुएँ ऐसी हैं कि जिन के बिना कोई भी परिवार निर्वाह नहीं कर सकता। इस के अतिरिक्त उन्हें कभी इस बात की इच्छा ही नहीं होती कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गई है उसे शुद्ध कर के पुनः ग्रहण कर लें; जैसा कि सामान्य अवस्था में जब कोई पदार्थ अपवित्र हो जाता है तो वह फिर पवित्र अवस्था को प्राप्त करने की चेष्टा

करता है। जो मनुष्य उन में से नहीं, चाहे वह उनके धर्म्म की ओर कितना ही झुका हुआ क्यों न हो, और उसकी अभिलाषा कितनी ही प्रवल क्यों न हो, उन्हें उसे अपने में मिलाने की आज्ञा नहीं है। इस वात ने भी उनके साथ हमारा मेल-मिलाप असम्भव वना दिया है, और हमारे और उनके वीच सहस्रों कोसों का अन्तर डाल दिया है।

तीसरा कारण। उन के आचार-विचार तथा रीतियों का भेद।

तीसरे, आचार-विचार और रीति-रिवाज में वे हम से इतने भिन्न हैं कि अपने वच्चों को हमारे नाम, हमारे वेष और हमारी चाल ढाल से डराते हैं। हमें राक्षसों की सन्तान और हमारे कर्म्मों को अपवित्र तथा नीच कहते हैं। न्याय को न छोड़ते हुए, यहाँ पर भी स्वीकार करना पड़ता है कि विदेशियों के प्रति इस प्रकार की घृणा हमारे और हिन्दुओं के ही वीच में नहीं प्रत्युत यह सव जातियों में एक दूसरे के प्रति पाई जाती है। मुझे एक हिन्दू की वात स्मरण है जिसने हम से निम्न लिखित कारण से वदला लिया था ; हमारे देश के किसी व्यक्ति ने एक हिन्दू राजा पर चढ़ाई करके उसे नष्ट करदिया था। उस की मृत्यु के पश्चात् उसके यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो सगर के नाम से उसका उत्तराधिकारी वना। युवा होने पर उसने अपनी माता से अपने पिता के विषय में पूछा तो माता ने उसे सारी कहानी कह सुनाई। अव उसकी विरोधाग्नि भड़क उठी। उसने सेना लेकर शत्रु के देश पर धावा वोल दिया और उस से ख़ूव वदला लिया। मनुष्य-हत्या और रक्तपात से जव वह थक गया तो वाक़ी वचे लोगों को उस ने हमारा वेष धारण करने के लिए वाध्य किया। यह उनके लिए एक प्रकार का कलङ्ककारी दण्ड था। जव मैंने यह कथा सुनी तो धन्यवाद किया कि उसने वड़ी कृपा की जो हमें हिन्दुस्तानी वन जाने, और हिन्दू वेष-भूषा तथा आचार-विचार ग्रहण करने के लिए वाध्य नहीं किया।

चौथा कारण; बौद्धों का पाश्चात्य देशों के साथ द्वेष-क्योंकि वहाँ से वे निकाले गये थे। मुसलमानों के भारत में आने के प्रथम मार्ग।

हिन्दुओं और विदेशियों के परस्पर विरोध को अधिक बढ़ाने वाली एक और बात यह है कि कथन मात्र शमनिय्या (बौद्ध) यद्यपि ब्राह्मणों से हार्दिक घृणा रखते हैं फिर भी दूसरों की अपेक्षा उन के अधिक समीप हैं। पूर्व काल में ख़ुरासान, पर्सिस, इराक़, मोसल, और शाम की सीमा तक सारा प्रान्त बौद्ध था, परन्तु जब ज़र्दुश्त ने आज़र बायजान से जाकर बल्ख़ में मग (मजूसी) मत का प्रचार किया तो उसकी शिक्षा सम्राट गुस्तास्प को पसन्द आई, इस लिए उसके पुत्र असफ़न्दयार ने बल और संधियों के द्वारा इस नवीन मत को पूर्व और पश्चिम में फैलादिया। उसने अपने सारे साम्राज्य में, चीन देश की सीमाओं से लेकर यूनानी साम्राज्य की सीमा तक, अग्नि-मन्दिर स्थापित करादिये। उन के उत्तराधिकारियों ने अपने धर्म्म (ज़रदुश्त धर्म्म) को फ़ारस (पेर्सिस) और इराक़ के लिए अनिवार्य्य राज-धर्म्म ठहराया। फलतः बौद्ध वहाँ से निकाल दिये गये और वे बल्ख़ की पूर्व दिशा के देशों में जा बसे। अब तक भी भारत में कतिपय लोग मग मत के मानने वाले हैं, और ये मग या मजूसी कहलाते हैं। उसी समय से ये लोग ख़ुरासान से विरक्त हैं। फिर इसलाम आया; फ़ारस का साम्राज्य नष्ट हो गया, और मुसलमानों के भारत पर आक्रमण करने के कारण, विदेशियों के विरुद्ध हिन्दुओं का विद्वेष दिन प्रति दिन बढ़ता गया। मुहम्मद इब्न अलक़ासिम इब्न अलमुनब्बिह सजिस्तान (सकस्तीन) की ओर से सिन्ध देश में घुसा और उसने बहमन्वा और मूलस्थान (मुलतान) नामक दो नगरों को जीता। इन नगरों को वह अलमनसूरा और अलमामूरा कहता है। वह यथार्थ भारत में प्रविष्ट हुआ और क़न्नौज तक घुसता चला गया। कभी खड्ग की शक्ति से काम निकालता और कभी सन्धियों द्वारा प्रयोजन

पृष्ठ ११

सिद्ध करता । जो लोग अपनी इच्छा से मुसलमान होना चाहते थे उनके सिवाय और किसी को भी अपना प्राचीन धर्म्म छोड़ने पर मजबूर न कर गन्धार देश से कूच करता हुआ वह कश्मीर प्रान्त से लौटा । इन सब घटनाओं ने उनके हृदयों में गहरी घृणा उत्पन्न कर दी है ।

महमूद का उनके देश को विजय करना ।

जिस समय ग़ज़्न (गजनी) में सामानी कुल के नीचे तुर्कों ने बल पकड़ा और सर्वोच्च शक्ति नासिरुद्दौला सबुक्तगीन के हाथ आई, उस से पूर्व किसी भी मुसलमान विजेता ने काबुल और सिन्ध नदी की सीमा का उल्लङ्घन नहीं किया था । सबुक्तगीन ने धर्म्मयुद्ध को अपना व्यवसाय ही बना लिया और इस लिए अपना नाम अलग़ाज़ी (अर्थात् ईश्वर के मार्ग पर युद्ध करने वाला) रक्खा । अपने उत्तराधिकारियों के लाभार्थ भारतीय सीमा को निर्बल बनाने के निमित्त उस ने वे मार्ग तैयार किये जिन से कि उसके बाद उसका पुत्र यमीनद्दौला महमूद तीस से भी अधिक वर्षों तक भारत पर आक्रमण करता रहा । पिता और पुत्र दोनों पर भगवान् दया करें ! महमूद ने भारत के ऐश्वर्य्य को सर्वथा नष्ट कर दिया, और वहाँ ऐसे ऐसे अद्भुत पराक्रम दिखलाये कि हिन्दू मिट्टी के परमाणुओं की भांति चारों ओर बिखर गये, और उनका नाम लोगों के मुख में एक प्राचीन कथा की तरह ही रह गया । स्वभावतः ही अब उनके बिखरे हुए अवशेषों में सब मुसलमानों के प्रति चिरस्थायी घृणा बैठ गई है । यह भी एक कारण है जिस से हिन्दू-विद्याएँ हमारे जीते हुए देशों से भाग कर कश्मीर, बनारस, आदि ऐसे सुदूर स्थानों में चली गई हैं जहाँ कि हमारा हाथ नहीं पहुँच सकता । इन स्थानों में, धार्म्मिक और राजनैतिक दोनों कारणों से, हिन्दुओं और अखिल विदेशियों के बीच विरोधाग्नि अधिक और अधिक भड़क रही है ।

पाँचवाँ कारण; हिन्दुओं का आत्माभिमान, और प्रत्येक विदेशी वस्तु से उनकी घृणा।

पाँचवें स्थान में अन्य कई ऐसे कारण हैं जिनका उल्लेख एक प्रकार की निन्दा प्रतीत होगी—अर्थात् उनके जातीय आचार की विशेषताएँ जो कि यद्यपि उनके अन्दर गहरी घुसी हुई हैं परन्तु प्रत्येक को विदित हैं। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि मूर्खता एक ऐसा रोग है जिसकी कि कोई औषध नहीं; और हिन्दुओं का यह विश्वास है कि उनके अपने देश के समान और कोई देश, उनकी जाति के समान कोई दूसरी जाति, उनके सम्राटों के समान कोई दूसरा सम्राट्, उनके धर्म्म के समान कोई दूसरा धर्म्म, और उनकी विद्या के समान कोई दूसरी विद्या नहीं। वे बड़े अहंकारी, वृथाभिमानी, आत्मदर्पी, और मन्द-बुद्धि हैं। उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि जो कुछ उन्हें आता है वह दूसरों को नहीं बताते; विदेशियों का तो कहना ही क्या, वे अपनी जाति में भी दूसरी उपजाति के लोगों से छिपाये रखते हैं। उनके विश्वासानुसार, उनके अपने देश के अतिरिक्त भूमण्डल का कोई भी और देश, उनकी अपनी जाति के अतिरिक्त कोई भी दूसरी जाति, और उनके अतिरिक्त कोई भी दूसरा प्राणी कुछ ज्ञान या विद्या नहीं रखता। उनका गर्व इतना बढ़ा हुआ है कि यदि आप उनके सामने ख़ुरासान या फ़ारस के किसी विद्वान् या किसी शास्त्र का उल्लेख करें तो वे आप को झूठा और बुद्धि-हीन समझेंगे। यदि वे लोग विदेश यात्रा करें और दूसरी जातियों से मिलें तो उनके विचार शीघ्र ही बदल जायँ, क्योंकि उनके पूर्वज ऐसे सङ्कीर्ण विचारों वाले नहीं थे जैसी कि यह वर्तमान पीढ़ी है। वराहमिहिर नामक एक बड़ा विद्वान् लोगों को ब्राह्मणों का सत्कार करने का उपदेश देता हुआ कहता है:—"यवन (यूनानी) लोग यद्यपि अपवित्र हैं फिर भी उनका सत्कार करना चाहिए क्योंकि उन्होंने सब प्रकार की

विद्याएँ पढ़ी हैं, और उन विद्याओं में वे दूसरों से बहुत आगे बढ़ गये हैं। अब हम उस ब्राह्मण के विषय में क्या कहें जिस में शौच और विद्या दोनों मौजूद हैं।" प्राचीन काल के हिन्दू इस बात को स्वीकार कर लेते थे कि यवनों ने हमारी अपेक्षा विज्ञान में अधिक उन्नति की है। यद्यपि वराहमिहिर प्रकट यह करता है कि मैं दूसरों के साथ न्याय कर रहा हूँ, परन्तु उसके एक इसी वाक्य से आप जान सकते हैं कि वह कैसा आत्म-प्रशंसक है। पहले पहिल तो उन से अपरिचित होने और उनकी विज्ञान-विषयक, विशेष, जातीय और परम्परागत शैली को न जानने के कारण मैं उन के ज्योतिर्विदों के सामने शिष्य की नाईं था; पर जब मैं ने कुछ उन्नति कर ली और उन्हें इस विद्या के बीज मंत्र बताना; और सब प्रकार की गणित विद्या की वैज्ञानिक विधियाँ तथा युक्तिसंगत अनुमान के नियम दर्शाना आरम्भ किया तो विस्मित होकर चारों ओर से उनके समूह के समूह मेरे पास आने लगे और मुझ से विद्या सीखने के लिए उत्कण्ठा प्रकट करने लगे। वे मुझ से पूछते थे कि तुम ने किस हिन्दू गुरु से यह विद्या पढ़ी है। परन्तु वास्तव में मैं ने उन्हें दिखला दिया कि तुम कितने पानी में हो। मैं अपने आप को उन से बहुत उच्च समझता था, और उनके समान कहलाने में अपना अपमान मानता था। वे प्रायः मुझे एक ऐन्द्रजालिक या मदारी समझते थे, और अपने नेताओं के पास अपनी भाषा में मुझे समुद्र या वह जल जो ऐसा खट्टा हो कि उसके सामने सिर्का भी अपेक्षाकृत मीठा प्रतीत हो, कहते थे।

पृष्ठ १८

ग्रन्थकार का व्यक्तिगत सम्बन्ध।

भारतवर्ष में ऐसी अवस्था है। यद्यपि इस विषय से मुझे भारी अनुराग है और इस दृष्टि से मैं अपने समय का एक ही व्यक्ति हूँ; यद्यपि जिन जिन स्थानों से मुझे संस्कृत-पुस्तकों के मिल सकने की सम्भावना होती है वहाँ से उन्हें

इकट्ठा करने, और उन पुस्तकों को समझने और मुझे समझा सकने में समर्थ सुदूर स्थानों में निवास करने वाले हिन्दू विद्वानों की सहायता लेने के लिए धन व्यय करने और कष्ट सहन करने में मैं कोई त्रुटि नहीं करता, तो भी इस विषय को पूर्णतया समझना मुझे बड़ा कठिन प्रतीत होता है। इस विषय का अध्ययन करने के लिए जितना मुझे सुभीता है उतना किसी और विद्वान् को क्या होगा? मुझ से बढ़ कर सुविधा केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त हो सकती है जिसे परमात्मा ने कर्म और आवागमन की स्वतन्त्रता—जो कि मुझे नहीं मिली—प्रदान की हो। विधाता ने कर्म और आवागमन में पूर्ण स्वतन्त्रता तथा स्वेच्छानुसार हेर फेर करने की शक्ति मेरे भाग्य में नहीं लिखी। इस पर भी मुझे जो कुछ मिला है उसे ही अपने लिए पर्याप्त समझ कर भगवान् का धन्यवाद करता हूँ।

ग्रन्थकार बतलाता है कि वह यूनानी सिद्धान्तों के साथ इस लिए तुलना करता है कि वे बहुत मिलते जुलते हैं, और हिन्दू सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक हैं।

साकार वादी यवन लोग (यूनानी) ईसाई मत के प्रादुर्भाव से पूर्व, हिन्दुओं जैसी ही सम्मतियाँ रखते थे। उनकी शिक्षित समाज के विचार भी बहुधा हिन्दुओं ऐसे ही थे। उनकी जनता हिन्दुओं की भाँति ही मूर्तिपूजक बुद्धि रखती थी। एक जाति के सिद्धान्तों की तुलना में दूसरी जाति के सिद्धान्तों के साथ केवल इसी कारण करना चाहता हूँ कि उनका आपस में निकट सम्बन्ध है, न कि उनका संशोधन करने के लिए। इसका कारण यह है कि जो सत्य (अर्थात् सत्य विश्वास या ईश्वर को एक मानना) नहीं है उसका किसी प्रकार भी संशोधन नहीं हो सकता; और सारा साकारवाद, क्या यूनानी और क्या भारतीय, वास्तव में एक ही विश्वास है, क्योंकि वह सत्य से विचलन मात्र है। यूनानियों के अन्दर कई तत्त्ववेत्ता ऐसे हुए हैं जिन्हों ने अपनी जाति के हितार्थ विज्ञान

के बीज मन्त्रों को मालूम किया और उन्हें प्रयोग में लाये। उन्हों ने मूढ़ विश्वासों का प्रचार नहीं किया; क्योंकि उच्च श्रेणी के लोग वैज्ञानिक तत्त्वों के अनुसार आचरण करना चाहते हैं, परन्तु सामान्य लोगों की प्रवृत्ति, जब तक उन्हें दण्ड के भय से न रोका जाय, सदैव वितण्डावाद की ओर रहती है। सुकरात को ही ले लीजिए, जिसने अपनी जाति के मूर्तिपूजन का विरोध और तारागण को देवता कहने से इनकार किया था। झट एथन्स के बारह विचारपतियों में से सात उसे मृत्यु दण्ड देने पर सहमत हो गये, और सुकरात ने सत्य पर प्राण न्योछावर कर दिये।

हिन्दुओं के अन्दर ऐसे लोगों का अभाव था जिन में विद्याओं को श्रेष्ठ पदवी पर पहुँचाने की योग्यता और उसके लिए अनुराग हो। इसी लिए आप देखेंगे कि उनके कहे हुए वैज्ञानिक सिद्धान्तों में बड़ी गड़बड़ मची हुई है। उनमें कोई युक्तिसंगत क्रम नहीं, और वे साधारण लोगों के बुद्धिहीन विचारों के साथ खिचड़ी बने हुए हैं। उदाहरणार्थ उनकी अमित संख्याओं, काल की अत्यन्त लम्बी अवधियों, और सब प्रकार के धार्मिक मतों को ले लीजिए जिन पर कि गँवार लोगों का अन्धाधुन्ध विश्वास है। मैं उनके गणित तथा नक्षत्र-विद्या सम्बन्धी साहित्य को, जहां तक मुझे उसका ज्ञान है, मोतियों और सड़ी हुई खजूरों के मिश्रण, या गोबर में पड़े हुए मोतियों, या कँकरों में मिले हुए बहुमूल्य रत्नों से ही तुलना दे सकता हूँ। दोनों प्रकार के पदार्थ उनकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वे अपने आप को इतना उच्च नहीं उठाते कि वैज्ञानिक अनुमान की शैलियों से काम ले सकें। पृष्ठ ११

ग्रंथकार की शैली। इस पुस्तक में मैं बहुत से स्थलों पर गुण-दोष-विवेचन किये बिना ही, जब तक कि ऐसा करने की कोई विशेष आवश्यकता न हो, केवल वर्णन करता ही चला गया हूँ।

मैंने संस्कृत नामों और वैज्ञानिक परिभाषाओं को, जहाँ जहाँ प्रसंग में आवश्यकता पड़ी है, एक ही बार लिख दिया है। यदि कोई शब्द रूढ़ि है जिसका कि समानार्थ-बोधक शब्द अरबी भाषा में मिल सकता है, तो उसके स्थान में मैंने अरबी शब्द ही रख दिया है। यदि संस्कृत शब्द अधिक व्यावहारिक प्रतीत हुआ है तो हमने उसी को रहने दिया है, और उसके साथ यथा-सम्भव ठीक ठीक शब्दार्थ दे दिया है। यदि शब्द व्युत्पन्न अथवा गौण है परन्तु प्रचलित हो गया है, तो भी, चाहे उसका पर्यायवाची अरबी शब्द भले ही मिल सकता हो, हमने वही रहने दिया है, परन्तु उसे प्रयुक्त करने से पूर्व उसके अर्थों को स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार हमने यत्न किया है कि परिभाषाओं के समझने में सुविधा हो जाय।

अन्ततः हम देखते हैं कि इस पुस्तक में हम रेखागणित की शैली—अर्थात् जो बात पहले कह आये हैं उसी की ओर लक्ष्य करना, जिसका अभी उल्लेख नहीं हुआ उसकी ओर संकेत न करना—का पूरा पूरा अनुसरण नहीं कर सके, क्योंकि हमें कई बार किसी किसी परिच्छेद में ऐसी ऐसी अज्ञात बातें लिखनी पड़ी हैं जिनका सविस्तर वर्णन पुस्तक के अगले भाग में ही दिया जा सकता है। भगवान् हमारी सहायता करें।

दूसरा परिच्छेद ।

हिन्दुओं के ईश्वर में विश्वास पर ।

प्रत्येक जाति के अन्दर शिक्षित और अशिक्षित लोगों के विचारों में सदैव भेद बना रहता है। शिक्षित लोग गूढ़ तत्त्वों को विचारने और व्यापक सिद्धान्तों की व्याख्या करने में तत्पर रहते हैं। पर अशिक्षित जन स्थूल विषयों से आगे नहीं जाते। वे बने बनाये सिद्धान्तों के साथ ही सन्तुष्ट रहते हैं। वे उनकी, और विशेषतया धर्म्म और व्यवस्था-सम्बन्धी प्रश्नों की व्याख्या की, जिनके विषय में कि सम्मतियाँ और अनुराग भिन्न भिन्न होते हैं, परवा नहीं करते।

ईश्वर के गुण

हिन्दू परमात्मा को एक, नित्य, अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, ज्ञानस्वरूप, चेतन, स्वाभाविक क्रियावान्, सृष्टि का कर्त्ता, रक्षक और संहर्त्ता, एक मात्र राजा, सब द्वन्द्वों से परे, और अनुपम मानते हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम उनके ग्रंथों से कुछ उद्धरण उपस्थित करते हैं ताकि पाठक कहीं यह न समझें कि हमारी बातें केवल सुनी सुनाई हैं।

पतञ्जलि की पुस्तक में शिष्य पूछता है—"वह कौन सा उपास्य देव है जिसके पूजन से सुख की प्राप्ति होती है" ?

पतञ्जलि की पुस्तक से अवतरण

गुरु उत्तर देता है—यह वह पुरुष है जो नित्य और अद्वितीय होने के कारण किसी मानुषी कर्म्म की आवश्यकता नहीं रखता।

मनुष्यों को उनके कर्म्मों के अनुसार वह स्वर्ग और नरक देता है। स्वर्ग की सब लोग कामना करते हैं और नरक के भयानक होने के कारण सब लोग उससे भयभीत रहते हैं। बुद्धि उस तक पहुँच नहीं सकती, क्योंकि वह सारे विपरीत और अनुकूल द्वंद्वों से परे है। निज स्वभाव से उसका ज्ञान नित्य है। मनुष्यों की परिभाषा में ज्ञान उसके लिए कहा जाता है जो पहले ज्ञात न हो, परन्तु न जानना किसी समय और किसी अवस्था में भी परमात्मा के साथ नहीं हो सकता"।

फिर शिष्य कहता है—"क्या ऊपर कहे विशेषणों के अतिरिक्त उसके और गुण भी हैं" ?

गुरु उत्तर देता है—"वह सर्वोच्च है, अवकाश की दृष्टि से नहीं बल्कि विचार की दृष्टि से, क्योंकि वह आकाशान्तर्गत सम्पूर्ण सृष्टि से भी महान् है। वह परमानन्द है जिसकी प्राप्ति की लालसा प्रत्येक प्राणी करता है। उसके ज्ञान में कभी भ्रान्ति और विस्मृति नहीं होती" ?

शिष्य पूछता है—"क्या वह बोलता है" ?

गुरु उत्तर देता है—"क्योंकि वह जानता है इसलिए निस्सन्देह वह बोलता भी है"।

शिष्य पूछता है—"यदि वह इसलिए बोलता है क्योंकि वह जानता है तो उसमें और ज्ञानी मुनियों में, जिन्होंने कि अपने ज्ञान की बातें कही हैं, क्या भेद है" ?

गुरु कहता है—"उनमें काल का भेद है। मुनियों ने उस काल पृष्ठ १४ में सीखा है और उस काल में बोला है जिस से पूर्व के वे नहीं जानते थे और नहीं बोले थे। बोल कर उन्होंने अपना ज्ञान दूसरों तक पहुँचाया है। अतः उनके बोलने और ज्ञान प्राप्त करने में समय लगता है। पर ईश्वरीय कामों के साथ काल का कुछ सम्बन्ध

नहीं। इसलिए परमात्मा अनादि काल से जानता और बोलता है। वही ब्रह्मा और आदिसृष्टि के दूसरे लोगों के साथ भिन्न भिन्न रीतियों से बोला था। एक को उसने एक पुस्तक दी। दूसरे के लिए उसने एक द्वार खोल दिया, अर्थात् अपने साथ वार्तालाप करने का मार्ग बता दिया। तीसरे को उसने ऐसा प्रोत्साहित किया कि जो कुछ उसे देना था वह उसे चिन्तन द्वारा ही मिल गया।"

शिष्य पूछता है—"उसने यह ज्ञान कहाँ से लिया?"

गुरु उत्तर देता है—"उसका ज्ञान नित्य है। सदैव से चला आ रहा है। कभी कोई ऐसा समय न था जब कि उसे ज्ञान न हो। इसीलिए उसका ज्ञान स्वत: है। उसने कभी कोई ऐसी बात नहीं जानी जो उसे पहले ज्ञात न हो। वह वेद में, जो कि उसने ब्रह्मा को दिये थे, कहता है:—उसी की स्तुति और गुणगान करो जिसने वेद का ज्ञान दिया और जो वेद के पहले था"

शिष्य पूछता है: —"जो इन्द्रियगोचर नहीं आप उस की आराधना कैसे करते हैं?"

गुरु उत्तर देता है:—"उसका नाम ही उसके अस्तित्व का प्रमाण है, क्योंकि बिना किसी वस्तु के उसका वर्णन और बिना किसी पदार्थ के उसका नाम नहीं हो सकता। इन्द्रियाँ उसे नहीं जान सकतीं। आत्मा ही उसे देख सकता है और विचार ही उसके गुणों को जान सकता है। इस प्रकार उसका चिन्तन करना ही उसकी पूजा है। निरन्तर योगाभ्यास करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है।"

इस प्रकार हिन्दू लोग अपनी परम प्रसिद्ध पुस्तक में उल्लेख करते हैं।

निम्नलिखित वाक्य गीता से लिया गया है। गीता 'भारत' नामक पुस्तक का एक भाग है:—

गीता से अवतरण

"मैं ब्रह्माण्ड हूँ। जन्म से मेरा आरम्भ और मृत्यु से मेरा अन्त नहीं। मैं कोई भी काम फल की इच्छा से नहीं करता। मैं किसी जाति-विशेष का मित्र और किसी दूसरी का शत्रु नहीं। मैंने अपनी सृष्टि में प्रत्येक को उसके निर्वाह के लिए पर्याप्त दे रक्खा है। अतः जो कोई मुझे इस रूप में जानता है और निष्काम कर्म्म करता हुआ मेरे सदृश बनने का यत्न करता है, उस के सब बन्धन खुल जाते हैं, और वह सुगमता से ही आवागमन से छूटकर मुक्त हो जाता है।"

"परमात्मा के सदृश बनने का यथासम्भव प्रयत्न करना ही तत्त्व-ज्ञान है" यह लक्षण उपरोक्त वाक्य से ध्यान में आता है।

उसी पुस्तक में वासुदेव आगे चलकर कहते हैं—"मनोवाञ्छित कामनाओं की पूर्ति के लिए ही बहुधा लोग परमात्मा की शरण में आते हैं। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि उन्हें उसका सत्य ज्ञान कुछ भी नहीं। परमात्मा सब के सामने अभिव्यक्त नहीं जो उसे इन्द्रियों द्वारा देखलें। इसीलिए वे उसे नहीं जानते। उन में से कई तो इन्द्रिय के विषयों से ही परे नहीं जाते। जो उनसे आगे बढ़ते भी हैं वे प्राकृतिक नियमों के ज्ञान पर जा कर ठहर जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि इन नियमों के ऊपर भी एक ऐसी सत्ता है जिसका न तो अपना ही जन्म हुआ है और न कोई अन्य वस्तु ही उससे पैदा हुई है; जिसके वास्तविक स्वरूप को किसी ने नहीं जाना पर जो आप सब पदार्थों को जान रही है।"

कर्म्म और कर्ता की भावना पर

कर्म्म के लक्षणों पर हिन्दुओं का आपस में मतभेद है। जो लोग परमात्मा को कर्म्म का आदि कारण ठहराते हैं वे उसे जगत् का साधारण कारण मानते हैं। कर्म्म करने वालों का जन्मदाता होने से वह उन के कर्म्मों का कारण है, अतः उस का अपना कर्म्म उनके द्वारा प्रकट होता है। कई लोग

परमात्मा के स्थान में कई एक ऐसे अन्य स्रोतों को कर्म्म का मूल मानते हैं जोकि बाह्य दृष्टि से, कर्म्म को उत्पन्न करते हैं । इन्हें वे विशेष कारण समझते हैं ।

सांख्यदर्शन में जिज्ञासु पूछता है—"क्या कर्म्म और कर्त्ता के विषय में भी कभी कोई मत-भेद हुआ है ?"

सांख्य नामक पुस्तक से अवतरण

ऋषि कहते हैं—"कई लोगों का मत है कि जीव और प्रकृति दोनों चेतन नहीं । परिपूर्ण परमात्मा दोनों का संयोग वियोग करता है । इसलिए वास्तव में वही स्वयम् कर्त्ता है । परमात्मा से निकला हुआ कर्म्म जीव और प्रकृति को इस प्रकार हिलाता है जिस प्रकार कि सजीव और बलवान् वस्तु जड़ और निर्बल पदार्थ को हिलाती है ।"

पृष्ठ १५

"कई दूसरों का मत है कि प्रकृति ही कर्म्म और कर्त्ता का संयोग कराती है । प्रत्येक घटने बढ़ने वाली वस्तु में यही सामान्य व्यापार है ।"

"कई कहते हैं कि कर्ता जीवात्मा है, क्योंकि वेद में कहा है—"प्रत्येक प्राणी पुरुष से निकला है ।" "कई कहते हैं कि कर्ता काल है, क्योंकि संसार काल के साथ ऐसा ही बँधा हुआ है जैसे कि भेड़ एक दृढ़ रस्सी से बँधी हो । इस भेड़ की गति रस्सी के खुला, तङ्ग, या ढीला होने पर निर्भर होती है । इन के अतिरिक्त कई एक यह भी कहते हैं कि कर्म्म पूर्व के लिए हुए का फल मात्र है ।'

"ये सब मत अयुक्त हैं । सत्य तो यह है कि कर्म्म का सम्बन्ध प्रकृति से है, क्योंकि प्रकृति जीव को बाँधती, भिन्न भिन्न रूपों में उसे घुमाती, और फिर मुक्त कर देती है । अतः प्रकृति कर्ता है । जो जो पदार्थ प्रकृति से सम्बन्ध रखते हैं वे सब कर्म्म के करने में सहायता देते हैं । जीवात्मा कर्ता नहीं, क्योंकि वह भिन्न भिन्न शक्तियों से रहित है ।"

शिक्षित लोगों का ईश्वर के विषय में ऐसा विश्वास है। वे इसे ईश्वर कहते हैं, अर्थात् जो परिपूर्ण, हितकारी, और बिना कुछ लिये हमें नाना वस्तुएँ प्रदान करने वाला है। वे केवल परमात्मा के एकत्व को ही स्वीकार करते हैं। यदि उसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु में भी एकत्व दीख पड़े तो वस्तुतः वह एक नहीं प्रत्युत अनेकों का समूह है। परमात्मा की सत्ता को ही वे वास्तविक सत्ता मानते हैं, क्योंकि जो कुछ भी विद्यमान है सब उसी के आश्रय है। यह विचार करना तो संभाव्य है कि वर्तमान पदार्थों का अभाव और केवल उसी का भाव है, पर यह कल्पना करना कि ब्रह्म तो है नहीं पर वे सब पदार्थ हैं—सर्वथा असम्भव है।

शिक्षित और अन्य लोगों के परमात्मा के विषय में विचार।

अब यदि हम हिन्दुओं के शिक्षित समाज को छोड़ कर साधारण लोगों के विचारों की ओर आयें तो हमें यह पहले ही कह देना होगा कि उनमें बड़ी विचित्रता है। उनके कई एक विचार तो अति जघन्य हैं। पर ऐसी ऐसी भ्रान्तियाँ अन्य मतों में भी पाई जाती हैं। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, स्वयम् इसलाम के अन्दर भी 'परमात्मा अपनी सृष्टि के सदृश है', जबरिया सम्प्रदाय की शिक्षा (मनुष्य के कर्म्म परमात्मा के हाथ में हैं), धार्म्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ करने की मनाही, और ऐसी ऐसी अन्य बातों को हम नापसन्द करते हैं। सर्वसाधारण के लिए धर्म्म-वाक्य के शब्द बड़ी सावधानी से तोल तोल कर रक्खे जाने चाहिएँ जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से विदित होता है। कई हिन्दू विद्वान् परमात्मा को बिन्दु कहते हैं। इस से उनका तात्पर्य्य यह है कि शरीरों के विशेषण उसमें नहीं घटते। अब एक अशिक्षित व्यक्ति उसे पढ़ता है और कल्पना करता है कि परमात्मा बिन्दु के समान छोटा है। वह यह नहीं सोचता कि इस वाक्य

में विन्दु शब्द किन अर्थों में प्रत्युक्त हुआ है। वह केवल इस अप्रिय तुलना तक ही वस नहीं करता प्रत्युत इससे भी वढ़ कर परमात्मा के विषय में कहता है कि "वह बारह अङ्गुली भर लम्वा और दश अङ्गुली भर चौड़ा है।" परमात्मा धन्य है जो कि माप और गिनती से परे है। अब यदि एक मनुष्य यह सुन पाये कि हम परमात्मा को सर्वदर्शी वतलाते हैं (जिस से कुछ भी छिपा नहीं) तो वह झट यही कल्पना करेगा कि वह केवल चक्षु-दृष्टि द्वारा ही सब कुछ जानता है, क्योंकि वह सोचेगा कि देखा केवल चक्षु द्वारा ही जा सकता है, और दो आंखें एक की अपेक्षा अच्छी हैं। अतः वह परमात्मा की सर्वज्ञता को जतलाने के लिए उसे सहस्रों नेत्रों वाला वर्णन करेगा।

इसी प्रकार की कुत्सित परिकथाएँ हिन्दुओं में कई जगह मिलती हैं, विशेषतः उन जातियों के अन्दर जिनको विद्याध्ययन करने की आज्ञा नहीं। इनके विषय में हम फिर कहेंगे।

तीसरा परिच्छेद ।
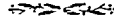
बुद्धि द्वारा तथा इन्द्रियों द्वारा ज्ञातव्य दोनों प्रकार के पदार्थों के विषय में हिन्दुओं के विश्वास पर ।

आदिकारण के विषय में यूनानी तथा हिन्दू तत्ववेत्ताओं के विचार।

जब तक एथन्स के सोलन, प्रीन के बियास, कोरिन्थ के पेरियण्डर, मिलिटस के थेलीस, लेकीडीमन के किलोन, लसबोस के पिटेकुस, और लिण्डस के क्लियोबोलुस, इन सात ज्ञान-स्तम्भ कहलाने वालों तथा उनके उत्तराधिकारियों की अध्यक्षता में तर्क ने यूनानी लोगों के अन्दर उन्नति प्राप्त नहीं की थी तब तक प्राचीन यूनानियों के विचार भी इस विषय में हिन्दू विचारों के ही सदृश थे। बहुतों का विचार है कि सारे पदार्थ पृष्ठ १६ एक ही वस्तु हैं। इस एक को कोई कोई तो गमन-शक्ति और कोई कोई अव्यक्त समझते हैं। किसी किसी की धारणा है कि पत्थर और जड़ जगत् से मनुष्य में यही विशेषता है कि वह उनकी अपेक्षा आदि कारण के एक मात्रा अधिक निकट है। यदि यह बात न होती तो वह किसी प्रकार भी उनसे अच्छा न होता।

बहुतों का ऐसा भी मत है कि केवल आदि कारण का ही वास्तविक अस्तित्व है, क्योंकि वही एक परिपूर्ण है। शेष सब वस्तुओं को उसकी अपेक्षा है। जिस वस्तु को अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरी वस्तु की आवश्यकता है उसका जीवन केवल स्वप्नवत् है, वास्तविक नहीं। वस्तुतः सत्ता उसी एक और आदि पदार्थ (आदिकारण) की है।

सूफ़ियों का भी यही सिद्धान्त है। सूफी का अर्थ ज्ञानी है, क्योंकि यूनानी भाषा में 'सूफ़' प्रज्ञा को कहते हैं। इसी से तत्त्ववेत्ता को 'फैलासोफ़ा' अर्थात् ज्ञान-प्रेमी कहा जाता है। इसलाम में जब लोगों ने तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्तों से मिलती जुलती बहुत सी बातों को ग्रहण किया तो साथ ही उनका नाम भी वही रहने दिया। किन्तु बहुत से लोगों ने इस शब्द का अर्थ न समझने के कारण इसे अरबी शब्द सुफ़ा के साथ मिला दिया, मानो मुहम्मद साहब के साथियों में जो लोग अहलस्सुफ़ा कहलाते थे वही सूफ़ी हैं। पीछे से, अशुद्ध लिखा जाने के कारण यह शब्द बिगड़ गया, यहां तक कि अन्त को यह समझा जाने लगा कि इस की व्युत्पत्ति सूफ़ धातु से हुई है जिसका अर्थ कि बकरियों का ऊन है। अबुल फ़तेह अलबुस्ती ने इस अशुद्धि को दूर करने के लिए बड़ा प्रशंसनीय यत्न किया। वह कहता है कि 'प्राचीन समय से ही सूफ़ी शब्द के अर्थों के विषय में लोगों का मतभेद रहा है। वे समझते रहे हैं कि यह सूफ़ धातु से निकला है जिसका अर्थ ऊन है। मैं स्वयम् इसका अर्थ एक ऐसा युवक समझता रहा हूँ जोकि साफ़ी अर्थात् पवित्र हो। यही साफ़ी बिगड़ कर सूफ़ी हो गया, और अब विचारकों के एक सम्प्रदाय को सूफ़ी कहा जाता है।"

सूफ़ी शब्द की व्याख्या।

इसके अतिरिक्त उन्हीं यूनानी लोगों का विचार है कि वर्तमान जगत् केवल एक ही पदार्थ है, आदि कारण इस के अन्दर विविध रूपों में व्यक्त हो रहा है, और आदिकारण की शक्ति इस जगत् के भागों में भिन्न भिन्न दशाओं में अन्तर्निरूढ़ है। जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों की मौलिक एकता रहते भी उन में विशेष भेद का कारण इन दशाओं की भिन्नता ही है। और कई लोगों का विश्वास था कि जो व्यक्ति अपनी सारी सत्ता के साथ आदिकारण की ओर गमन करता है और जहां तक हो

सके वैसा ही बनने का प्रयत्न करता है वह मध्यवर्ती अवस्थाओं को पार करके सब बन्धनों और बाधाओं से मुक्त हो उसके साथ जा मिलता है। सिद्धान्त-सादृश्य के कारण सूफ़ियों के भी ऐसे ही विचार हैं।

जीवात्माओं और प्रेतों के विषय में यूनानियों का विचार है कि वे शरीर में प्रवेश करने के पूर्व स्वतः विद्यमान होते हैं। उन की विशेष संख्याएं और दल हैं। उन का एक दूसरे से विशेष सम्बंध है; कइयों का तो परस्पर परिचय है और कइयों का बिलकुल नहीं। जब तक वे शरीर में रहते हैं इच्छानुसार कर्म्म करके अपना भाग्य—नाना रीतियों से संसार को शासित करने की शक्ति—तैयार करते हैं। यह भाग्य शरीर से वियोग होने पर उन्हें मिलता है। इसी से वे लोग उन्हें देवता कहते थे। उन के नाम पर मन्दिर बनवाते थे और बलिदान देते थे।

जालीनूस

अपनी पुस्तक शिल्पकला-विज्ञान की भूमिका में जालीनूस कहता है कि सर्वोत्कृष्ट लोगों ने मल्ल-युद्ध और चक्र फेंकने में पराक्रम दिखलाने से नहीं प्रत्युत विद्या की उन्नति करने के कारण ही देवता की पदवी पाई थी। उदाहरणार्थ अस्क्लीपियस और डायोनिसोस चाहे प्राचीन समय में मनुष्य थे और पीछे से जाकर देवता बने, चाहे आदि से ही अलौकिक व्यक्ति थे, मैं उन का सब से अधिक सम्मान करता हूँ, क्योंकि उन में से एक ने मनुष्य को आयुर्वेद की शिक्षा दी, और दूसरे ने अङ्गूरों की खेती करना सिखलाया।'

पृष्ठ १०

जालीनूस इपोक्रटीज़ के सूत्र की व्याख्या करता हुआ कहता है कि 'अस्क्लीपियस के विषय में हम ने कभी नहीं सुना कि किसी ने उसे बकरी भेंट की हो, क्योंकि बकरी के बालों का बुनना सुगम नहीं; और साथ ही बकरी के रसों के बुरे होने के कारण इस का ज़ियादा

मांस अपस्मार (मिर्गी) का रोग उत्पन्न करता है । लोग उसे केवल मुर्गे का चढ़ावा देते हैं जैसा कि स्वयम् इपोक्रटीज़ ने भी दिया था । कारण यह कि इस अलौकिक मनुष्य ने मनुष्य मात्र के लिए आयुर्वेद की विद्या निकाली जोकि डायोनिसोस और डेमीटर के आविष्कार— मदिरा और अनाज जिससे रोटी बनती है—से बहुत बढ़ कर है । अतः अनाज की बालों के साथ डेमीटर का और अङ्गूर के साथ डायोनिसोस का नाम आता है ।"

प्लेटो अपनी टीमियस में कहता है कि 'प्रेतात्माएं–जिन्हें बर्बर लोग उन के न मरने के कारण देवता कहते हैं—विद्या देवियां हैं । वे विशेष देवता को प्रथम देवता कहते हैं" ।

प्लेटो

आगे चल कर वह कहता है—"परमात्मा ने देवताओं से कहा कि तुम भी विनाश से स्वतः मुक्त नहीं हो । बात केवल इतनी है कि तुम्हारा नाश मृत्यु से न होगा । तुम ने अपनी उत्पत्ति के समय मेरी इच्छा से दृढ़तम नियमपत्र प्राप्त किया है ।"

उसी पुस्तक के किसी अन्य स्थल में वह कहता है कि 'परमात्मा की संख्या एक है; परमात्मा की संख्या एक से अधिक नहीं' ।

इन अवतरणों से प्रमाणित होता है कि यवन लोग साधारणतया कीर्तिमान्, तेजोमय, और श्रेष्ठ वस्तु को देव कहते हैं । यही रीति कई दूसरे लोगों में पाई जाती है । वे यहां तक बढ़े हुए हैं कि समुद्र और पर्वत आदि को भी देव कह देते हैं । दूसरे वे विशेष अर्थों में आदि कारण, फ़रिश्तों (देवदूतों), और अपनी आत्माओं को भी देव कहते हैं । तीसरी रीति के अनुसार प्लेटो देवों को सकीनात (Movoai) कहता है । परन्तु इस विषय में भाष्यकारों की परिभाषाएँ स्पष्ट नहीं, इसलिए हम केवल उन के नाम ही जानते हैं—उन के अर्थों का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं । वैयाकरण ओहनीज़ प्रोक्लस के खण्डन में

वैयाकरण जोहनीज़ ।

कहता है कि "कई बर्बर जातियों की भाँति यवन लोग, आकाश में दिखाई देने वाले लोकों को देव कहते थे। तत्पश्चात् जब वे विचार-जगत् की निगूढ़ कल्पनाओं का मनन करने लगे तो उन्होंने इन को ही देव नाम प्रदान किया"।

अतः हम अनुमान करते हैं कि अवश्य ही देव हो जाने से उन का अभिप्राय प्रायः वही है जो कि हम फ़रिश्ता (देवदूत) की अवस्था से लेते हैं। जालीनूस उसी पुस्तक में स्पष्ट शब्दों में कहता है कि यदि यह सत्य है कि प्राचीन समय में अस्क्लि-पियस नामक कोई मनुष्य था, और परमेश्वर ने उसे देव बनाने का अनुग्रह किया था, तो शेष सब बातें वृथा हैं"। उसी पुस्तक में वह अन्यत्र कहता है—"परमात्मा ने लाईकर्गस से कहा 'मुझे सन्देह है कि तुम्हें मनुष्य कहूँ या देव (फ़रिश्ता), पर मेरी प्रवृत्ति तुम्हें देव कहने की ओर ही है।"

जालीनूस

कई ऐसे वाक्य हैं जो एक मत के विचारानुसार तो कटु हैं पर दूसरे के अनुसार उपादेय। एक भाषा में तो अच्छे समझे जाते हैं पर दूसरी में कुत्सित। इस प्रकार का शब्द देवत्व है जोकि मुसलमानों को कर्णकटु प्रतीत होता है। यदि हम देव शब्द के अरबी भाषा में प्रयोग पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि जितने भी नाम सत्य स्वरूप अर्थात् अल्लाह के लिए आते हैं वे सब, किसी न किसी प्रकार, उसके अतिरिक्त और पदार्थों के लिए भी प्रयुक्त हो सकते हैं। केवल अल्लाह ही एक ऐसा शब्द है जो केवल परमेश्वर के लिए आता है। यह उसका सर्वोत्तम नाम है।

इबरानी और सिरियन भाषाओं में परमेश्वर के भिन्न भिन्न नाम।

पृष्ठ १८

यदि हम इबरानी और सिरियन भाषाओं में, जिन में कि क़ुरान के पूर्व ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तकें मिली थीं, इस शब्द पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि थोरा (तौरेत) और उस के पीछे लिखी गई

पैग़म्बरों (भविष्यद्वक्ताओं) की पुस्तकों में, जोकि तौरेत का भाग समझी जाती हैं, शब्द रब्ब ربّ —जब तक कि वह षष्ठी विभक्ति में परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता और जब तक कि आप घर का रब्ब (स्वामी), सामग्री का रब्ब (जोकि अरबी में प्रयुक्त होता है) नहीं कह सकते, तब तक—अरबी शब्द अल्लाह का पर्यायवाची है। दूसरे, हम देखते हैं कि इबरानी भाषा का इलोआह, प्रयोग में, अरबी के रब्ब से मिलता है; अर्थात् इबरानी में इलोआह शब्द परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के लिए भी अरबी शब्द रब्ब ربّ की नाईं प्रयुक्त हो सकता है। निम्नलिखित वाक्य उन पुस्तकों में मिलते हैं:—

जल-प्रलय के पहले "इलोहिम के पुत्र मनुष्य की पुत्रियों के पास आये" (उत्पत्ति पुस्तक ६, ४) और उनके साथ समागम किया।

"शैतान इलोहिम के पुत्रों के साथ उन की सभा में घुस गया"। (अय्यूब १, ६)

मूसा की तौरेत में परमेश्वर उससे कहता है—"मैं ने तुझे फ़रऔन के लिए एक देव बनाया है।" (निर्गमन पुस्तक ७, १)

दाऊद की ज़बूर के ८२ वें स्तोत्र में इस प्रकार है—"परमेश्वर देवों अर्थात् देव-दूतों (फ़रिश्तों) की समाज में उपस्थित होता है।"

तौरेत में प्रतिमाओं का विदेशीय देवों के नाम से उल्लेख हुआ है। यदि तौरेत (थोरा) में परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ के पूजन का निषेध न होता, यदि इस में प्रतिमाओं के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करने, प्रत्युत उन का नाम लेने और उन पर ध्यान देने तक को निषिद्ध न ठहराया होता तो इस वाक्य (विदेशीय देव) से अनुमान हो सकता था कि बायबल की आज्ञा केवल विदेशीय देवताओं को ही, जिन से अभिप्राय वे देवता होता जोकि इबरानी नहीं (मानों इबरानी लोग अपने पड़ोस के देवताओं का विरोध और स्वजातीय देवताओं का पूजन करते थे),

लोप कर देने की है। पैलस्टाइन के आस पास की जातियां साकारवादी यूनानियों की भांति मूर्ति-पूजक थीं, और इसराईल की सन्तान परमेश्वर से मुख मोड़ कर बआल तथा अशतारोथ (रति) की प्रतिमाओं का पूजन करती थी।

इन से स्पष्ट है कि इबरानी लोग देव होने की परिभाषा का प्रयोग, जोकि व्याकरण की दृष्टि से राजा होने की परिभाषा के समान है, फ़रिश्तों (देवदूतों) तथा अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न आत्माओं के लिए करते थे। वे उपमा के लिए इन अलौकिक आत्माओं के शरीरों की प्रतिनिधि रूपा प्रतिमाओं, और दृष्टान्त रूप से राजाओं तथा महा-पुरुषों को भी देव कह देते थे।

परमेश्वर शब्द को छोड़ कर जब हम पिता और पुत्र शब्द पर आते हैं तो कहना पड़ता है कि इसलाम इन शब्दों के प्रयोग में उदार नहीं। अरबी में पुत्र शब्द प्रायः सदैव, स्वाभाविक क्रम में, बालक के अर्थों में ही आता है और व्युत्पत्ति तथा जन्म में जिन भावों का समावेश है उनसे कभी भी कोई ऐसी बात नहीं निकल सकती जिसका अर्थ सृष्टि का नित्य स्वामी हो। दूसरी भाषाएँ इस विषय में बड़ी उदार हैं, यहां तक कि यदि लोग एक पुरुष को पिता कह कर पुकारते हैं तो यह वही बात समझी जाती है जैसा कि उसे आर्य्य शब्द से सम्बोधन किया जाय। हर कोई यह जानता है कि इस प्रकार के वाक्य ईसाइयों में इतने प्रचलित हो गये हैं कि जो कोई दूसरों को सम्बोधन करने में पिता शब्द और पुत्र शब्द का सदैव प्रयोग नहीं करता वह ईसाई ही नहीं समझा जाता। पुत्र से उनका तात्पर्य्य सदैव, विशेष रूप से, यसूह होता है परन्तु उसके अतिरिक्त अन्यों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता है। यसूह ने ही अपने शिष्यों को प्रार्थना में "हे हमारे स्वर्गवासी पिता" ऐसा कहने का आदेश किया है (मत्ती ६, ९)

और उन्हें अपनी मृत्यु का समाचार सुनाते हुए कहा है कि मैं अपने पिता और तुम्हारे पिता के पास जा रहा हूँ। (योहन २०, १७)। अपनी बहुत सी वक्तृताओं में पुत्र शब्द का अर्थ वह अपने आपको बतलाता है अर्थात् कि वह मनुष्य का पुत्र है।

ईसाइयों के अतिरिक्त यहूदी लोग भी इसी प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करते हैं।

पृष्ठ १९।

राजाओं की दूसरी पुस्तक में लिखा है कि परमेश्वर ने दाऊद को उसके पुत्र की मृत्यु पर, जो कि उसके यहाँ उरिया की भार्या से उत्पन्न हुआ था, समाश्वासन दिया, और वर दिया कि उसी स्त्री से एक और पुत्र उत्पन्न होगा जिसे मैं अपना पुत्र ठहराऊँगा (१ तवारीख़ अध्याय २२, वाक्य ९, १०)। यदि इबरानी भाषा का प्रयोग यह स्वीकार करता है कि सलेमान परमेश्वर का ठहराया हुआ पुत्र था तो कह सकते हैं कि जिसने उसे पुत्र ठहराया वह पिता अर्थात् परमेश्वर था।

मनीची लोगों का ईसाइयों से निकट सम्बन्ध है। मआनी अपनी

मनीचियों पर सं-दिग्ध टिप्पणी।

पुस्तक प्राणी-भण्डार (كنز الاحياء) में इसी प्रकार कहता है:—"ज्योतिष्मान् लोकों को हम तरुणी नारियाँ, कुँवारी कन्याएँ, पिता, माता, पुत्र, भ्राता और भगिनियाँ कहेंगे क्योंकि भविष्यद्वक्ताओं की पुस्तकों में ऐसा ही किया गया है। आनन्द-धाम में न कोई स्त्री है न कोई पुरुष, और न सन्तानोत्पत्ति की इन्द्रियाँ ही हैं। सब को सजीव शरीर मिले हुए हैं। उन शरीरों के अलौकिक होने के कारण बल और निर्बलता, लम्बाई और छुटाई, तथा आकृति और सौन्दर्य की दृष्टि से उनमें आपस में कुछ भेद नहीं। वे समान प्रदीपों की नाईं हैं जोकि एक ही प्रदीप से प्रकाशित हुए हैं और जिनमें एक ही सामग्री जल रही है। इस प्रकार नाम रखने की आवश्यकता दो

प्रदेशों के परस्पर मिल जाने की स्पर्धा से उत्पन्न हुई है। जब नीचे का अन्धकारमय प्रदेश भूत-प्रलय की गहरी गुफा से बाहर निकला और ऊपर के ज्योतिष्मान् प्रदेश ने देखा कि उसमें स्त्री और पुरुष के जोड़े हैं तो उसने भी अपनी सन्तान को उसी प्रकार के बाह्य आकार प्रदान किये। तब यह सन्तान नीचे के लोक के साथ युद्ध करने चली। उसने दूसरे लोक के एक प्रकार के व्यक्तियों के साथ लड़ने के लिए उसी प्रकार के लोग खड़े किये, अर्थात् नरों के साथ नर और नारियों के साथ नारियाँ"।

सुशिक्षित हिन्दू इस प्रकार देदीप्यमान व्यक्तियों में नर और नारी का भेद करना बुरा समझते हैं, परन्तु सामान्य जन-समुदाय और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी बहुधा ऐसा करते हैं। वे तो जितना हमने ऊपर कहा उससे भी बहुत बढ़े हुए हैं। यहाँ तक कि वे परमेश्वर की स्त्री, पुत्र, और पुत्री होने; उसके गर्भाधान करने, तथा और भी कई भौतिक क्रियाओं को उसके सम्बन्ध में मानते हैं। उनमें भक्तिभाव इतना न्यून है कि जब वे इन बातों का उल्लेख करने बैठते हैं तो अनुचित और अश्लील शब्दों के प्रयोग में भी सङ्कोच नहीं करते। ये लोग और इनके सिद्धान्त चाहे बहुसंख्यक हैं पर कोई भी इनकी परवा नहीं करता।

सुशिक्षित हिन्दुओं के विचार। सकल सृष्टि एक ही है।

हिन्दू विचार की मुख्य और सब से आवश्यक बात वह है जिसे ब्राह्मण लोग सोचते हैं और जिस पर उनका विश्वास होता है। इसका कारण यह है कि ये लोग धर्म्म की स्थिति और रक्षा के लिए विशेष रूप से तैयार किये जाते हैं। हम इसी का—ब्राह्मणों के विश्वास का—ही वर्णन करेंगे।

सकल सृष्टि के विषय में, जैसा कि कहा जा चुका है, उनका विचार है कि यह सब एक ही पदार्थ है, क्योंकि वासुदेव गीता में

कहता है—"सच पूछो तो सब पदार्थ ब्रह्म रूप हैं, क्योंकि विष्णु ने ही पृथिवी का रूप धारण किया है ताकि प्राणिमात्र उस पर रह सकें। वह आप जल बना, ताकि उनका पोषण हो। उनकी वृद्धि के लिए वही अग्नि और वायु के रूप में प्रकट हुआ है। वही प्रत्येक प्राणि का हृदय है। उसने उन्हें, जैसा कि वेद में कहा है, स्मृति, ज्ञान, और द्वंद्वों से सम्पन्न किया"।

यह कथन अपोलोनियस की पुस्तक, किताब फ़िल अलल كتاب في العلل, के कर्ता के इस वाक्य से ऐसा मिलता है मानों एक ने दूसरे से लिया है—"सब मनुष्यों में एक दैवी शक्ति है जिसके द्वारा सब साकार और निराकार वस्तुयें जानी जाती हैं"। इस प्रकार फ़ारसी में निराकार प्रभु को ख़ुदा कहते हैं, और यौगिक रीति से इसका अर्थ पुरुष अर्थात् मनुष्य-प्रभु का भी निकलता है।

पुरुष ।

१. जो हिन्दू संदिग्ध सङ्केतों के स्थान में स्पष्ट और यथार्थ लक्षणों को पसन्द करते हैं वे आत्मा को पुरुष कहते हैं, जिसका अर्थ है मनुष्य; क्योंकि विद्यमान जगत् में यही एक चेतन-सत्ता है। उनके विचार में वह केवल प्राण-स्वरूप है। उनका मत है कि उसमें कभी अविद्या रहती है और कभी ज्ञान। अविद्या तो उसमें स्वाभाविक है पर ज्ञान वह अपने यत्न द्वारा प्राप्त करता है। पुरुष की अविद्या के कारण ही कर्म्म पृष्ठ २० उत्पन्न होता है। कर्म्मों के बन्धन से मुक्त होने के लिए ज्ञान ही साधन है।

अव्यक्त

२. इसके बाद सामान्य द्रव्य अर्थात् सूक्ष्म पदार्थ आता है जिसे वे अव्यक्त या निराकार पदार्थ कहते हैं। यह जड़ है परन्तु इस में सत्त्व, रजस्, तमस् नामक तीन गुण हैं। ये इसके अपने स्वाभाविक गुण नहीं प्रत्युत उपलब्ध हैं। मैं ने सुना है कि

शुद्धोदन अपने अनुयायी शमनियों से बात करते समय उन्हें बुद्ध, धर्म्म, और संघ कहता है, मानो इनसे उसका अभिप्राय ज्ञान, धर्म्म, और अविद्या है। पहला गुण शान्ति और भलाई का है। यह अस्तित्व और वृद्धि का कारण है। दूसरा गुण उद्यम और क्लान्ति है। इससे दृढ़ता और संस्थिति प्राप्त होती है। तीसरा गुण शिथिलता और अधीरता है। इससे विनाश और विध्वंस होता है। इसलिए पहला गुण देवताओं में, दूसरा मनुष्यों में, और तीसरा पशुओं में प्रधान माना जाता है। आगे, पीछे, और उसी जगह आदि शब्द इनके सम्बन्ध में विशेष अनुक्रम की दृष्टि से और भाषा की असमर्थता के कारण ही बोले जाते हैं न कि किसी प्रकार की काल-सम्बन्धी साधारण भावना प्रकट करने के लिए।

३—संभाव्य अवस्था से निकल कर साकार अवस्था में जाने वाला व्यक्त और प्रकृति। द्रव्य जोकि तीन आदि गुणों के साथ विविध रूपों में प्रकट होता है व्यक्त अर्थात् आकार वाला कहलाता है। सूक्ष्म अव्यक्त और स्थूल व्यक्त की मिलावट का नाम प्रकृति है। परन्तु इस परिभाषा से हमें कुछ काम नहीं। हम सूक्ष्म पदार्थ का वर्णन नहीं करना चाहते। केवल द्रव्य की परिभाषा ही हमारे लिए पर्य्याप्त है, क्योंकि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व असम्भव है।

४. इसके बाद है स्वभाव। इसे वे अहङ्कार कहते हैं। यह शब्द अहङ्कार अति प्रबलता, विकास, और स्थिति के भावों को लिये हुए है। कारण यह कि जब द्रव्य नाना रूपों में प्रकट होता है तो वस्तुएँ विकसित होकर नवीन आकृतियाँ धारण करती हैं। यह विकास बाह्य द्रव्य को बदल कर उसे बढ़ने वाली वस्तु में परिपचित करने से होता है। अतः मानो अहङ्कार ही उन दूसरे अथवा बाह्य द्रव्यों को

इस परिवर्तन-क्रिया द्वारा अपने अधीन करने, और परिवर्तित पदार्थ को वश में रखने की चेष्टा कर रहा है।

महाभूत

५—९. यह स्पष्ट है कि एक मिश्रण के पूर्व उन अनेक अमिश्रित मूल द्रव्यों का होना आवश्यक है जिन से कि वह मिश्रण बना है और जिन में कि वह पुनः लय हो जाता है। सारा विश्व, हिन्दुओं के विचारानुसार, पाँच तत्त्वों या भूतों का बना है। ये तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी हैं। उन्हें महाभूत कहते हैं। अन्य लोगों की भांति उनका ऐसा विचार नहीं कि अग्नि आकाश के अधोभाग के निकट एक उष्ण और शुष्क पदार्थ है। अग्नि से उनका अभिप्राय पृथिवी पर की सामान्य आग से होता है जोकि धूएँ के जलने से उत्पन्न होती है। वायु पुराण कहता है—

वायु पुराण से व्याख्या।

"आदि में पृथिवी, जल, वायु, और आकाश थे। ब्रह्मा ने पृथिवी के नीचे चिङ्गारियाँ देखीं और उनको ऊपर लाकर तीन भागों में विभक्त किया। पहला भाग पार्थिव अर्थात् सामान्य अग्नि है। इसे ईन्धन की आवश्यकता है और यह जल से बुझ जाती है। दूसरा भाग दिव्य अर्थात् सूर्य्य, और तीसरा विद्युत् अर्थात् बिजली है। सूर्य्य जल को आकर्षण करता है और बिजली जल द्वारा चमकती है। पशुओं के भीतर गीली चीज़ों में भी अग्नि है। ये चीज़ें अग्नि को प्रचण्ड करती हैं, बुझाती नहीं।"

पंचमात्र।

१०—१४. ये मूल पदार्थ मिश्रण हैं, इसलिए इनके पूर्व अमिश्रित पदार्थों का होना स्वाभाविक है। इन अमिश्रित पदार्थों को पंचमातर अर्थात् पाँच माताएँ कहते हैं। वे उन्हें इन्द्रियों का व्यापार बतलाते हैं। आकाश का निज गुण है शब्द, अर्थात् जो कुछ सुनाई देता है; वायु का स्पर्श अर्थात् जो कुछ छुआ जाता है; अग्नि का रूप अर्थात् जो कुछ दिखाई

पृष्ठ २१

पड़ता है; जल का रस अर्थात् जो कुछ चखा जाता है; और पृथिवी का गंध अर्थात् जो कुछ सूँघा जाता है। इन महाभूतों (पृथ्वी, जलादि) में से प्रत्येक में एक तो उसका निजी गुण रहता है, और साथ ही जिन तत्त्वों का उस के पूर्व वर्णन हो चुका है उन सब के गुण भी उसमें रहते हैं। इसलिए पृथिवी में, हिन्दुओं के मतानुसार, पांच के पांच पूरे गुण हैं। जल में इन पांच में से गंध नहीं, शेष चार हैं। अग्नि में गंध और रस को छोड़ कर शेष तीन हैं। वायु में गंध, रस और रूप के सिवाय शेष दो हैं। और आकाश में गंध, रस, रूप और स्पर्श को छोड़ कर शेष एक है।

मैं नहीं जानता हिन्दू शब्द का आकाश से क्यों सम्बन्ध बताते हैं। शायद उन का आशय कुछ वैसा ही है जैसा कि प्राचीन यूनानी कवि होमर ने कहा था—"जिन्हें सात स्वर मिले हैं वे बड़ी मधुर तान में परस्पर वार्तालाप और प्रश्नोत्तर करते हैं"। वहाँ उसका अभिप्राय सात ग्रहों से है। एक और कवि का कथन है—"आकाशचारी लोक, जिन्हें भिन्न भिन्न स्वर-संयोग मिले हैं, सात हैं। ये सदैव से घूमते हुए स्रष्टा का गुण-गान कर रहे हैं, क्योंकि वही उन्हें धारण करके, तारिका-शून्य आकाश-मण्डल के दूरतम सिरे तक उनका आलिङ्गन कर रहा है।"

प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ताओं की खगोल-विषयक सम्मतियों के सम्बन्ध में पेरफायरी अपनी पुस्तक में कहता है कि "अन्तरिक्ष में आकृतियाँ तथा आकार बनाते हुए और अद्भुत स्वर निकालते हुए जो नक्षत्र और ग्रह घूम रहे हैं, और जिनके स्वर—जैसा कि पाईथेगोरस और देव जानस का मत है—सदा के लिए स्थिर हैं, वे अपने निराकार और अद्वितीय निर्माता का स्मरण दिलाते हैं। कहते हैं कि देवजानस की श्रवणशक्ति इतनी प्रबल थी कि वह, और केवल वही, आकाशचक्र की गति के नाद को सुन सकता था।"

ये सब वाक्य व्याख्या नहीं, संकेत मात्र हैं। परन्तु वैज्ञानिक आधार पर इनका यथार्थ अर्थ निकाला जा सकता है। इन तत्त्ववेत्ताओं का एक उत्तराधिकारी, जिसने सचाई को भली भांति नहीं समझा, कहता है कि "दृष्टि का सम्बन्ध जल से, श्रवण का वायु से, घ्राण का अग्नि से, चखने का पृथ्वी से, और स्पर्श का उस से है जो कि प्रत्येक पदार्थ को आत्मा के संयोग से प्राप्त होता है।" मेरा अनुमान है कि यह दार्शनिक पण्डित दृष्टि का सम्बन्ध जल से इस लिए बताता है कि इस ने चक्षुओं की गीली वस्तुओं और उनकी भिन्न भिन्न श्रेणियों के विषय में सुन रक्खा था। वह सूँघने का सम्बन्ध अग्नि से धूएं और सुगन्धि के कारण, और चखने का सम्बन्ध पृथ्वी से उस आहार के कारण बताता है जो कि वसुधा उसे प्रदान करती है। इस प्रकार चार तत्त्वों के समाप्त हो जाने से उसे पाँचवीं इन्द्रिय, स्पर्श, के लिए आत्मा की आवश्यकता प्रतीत हुई।

ऊपर कहे सब तत्त्वों का फल, अर्थात् इन सब का मिश्रण, जन्तु है। हिन्दू लोग अफ़लातू की भांति पौधों को भी जन्तु का एक प्रकार मानते हैं। अफ़लातू की राय थी कि पौधे सज्ञान हैं क्योंकि वे अपने इष्ट और अनिष्ट में भेद कर सकते हैं। जन्तु का पाषाण से यही भेद है कि उसमें ज्ञानेन्द्रियां होती हैं।

१५—१९. ज्ञानेन्द्रियां पांच हैं अर्थात् सुनने के लिए कान, देखने के लिए आँख, सूँघने के लिए नाक, चखने के लिए रसना, और स्पर्श के लिए त्वचा। इन्द्रियाणि

२०. इसके बाद इच्छा है। यह इन्द्रियों से उनके विविध व्यापार कराती है। इसका निवास स्थान हृदय है। इसी लिए इसे मनस् कहते हैं। मनस्

२१—२५. पशु-प्रकृति पांच आवश्यक व्यापारों से पूर्ण होती है। इन्हें वे कर्मेन्द्रियाणि अर्थात् काम करने की इन्द्रियाँ कहते हैं। पहली इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान और बोध प्राप्त होता है और दूसरी से कर्म्म और श्रम किया जाता है। हम इन्हें आवश्यक कहेंगे। इनका काम निम्नलिखित है :—

कर्मेन्द्रियाणि।

पृष्ठ २२

(१) मनुष्य की विविध आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को प्रकट करने के लिए शब्द उत्पन्न करना। (२) किसी वस्तु को अपनी ओर खींचने या धकेलने के लिए हाथ से व्यापार कराना। (३) किसी वस्तु को ढूँढने या उससे परे भागने के लिए पाँव के साथ दौड़ना। (४-५) पोषण के फालतू द्रव्यों को इसी प्रयोजन के लिए बने हुए दो छिद्रों के द्वारा बाहर फेंकना।

पच्चीस तत्वों की संक्षिप्त पुनरावृत्ति।

ये सब मूल पदार्थ पच्चीस हैं; अर्थात्—

१. पुरुष।
२. अव्यक्त।
३. व्यक्त।
४. अहङ्कार।
५—९. पंचतन्मात्र।
१०—१४. आदि पंचमहाभूत।
१५—१९. ज्ञानेन्द्रियाँ।
२०. मनस्।
२१—२५. कर्म्मेन्द्रियाँ।

इन सबके समूह को तत्त्व कहते हैं। सारा ज्ञान इन्हीं तक परिमित है। इसी लिए पराशर का पुत्र व्यास कहता है।—"पचीस को लक्षणों, भेदों, और प्रकारों के द्वारा, केवल जिव्हा से ही नहीं

प्रत्युत युक्ति-सिद्ध न्याय वाक्यों की भाँति, निश्चित तथ्य समझ कर सीख लो। फिर चाहे किसी मत के अनुयायी बनो तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जायगी।"

चौथा परिच्छेद ।

कर्म का कारण क्या है और आत्मा का प्रकृति के साथ कैसे संयोग होता है ।

शरीर के साथ संयुक्त होने के लिए उत्सुक आत्मा का मध्यवर्ती प्रेत-आत्माओं के द्वारा संयोग हो जाता है।

जन्तु का शरीर कोई भी स्वाधीन कर्म्म नहीं कर सकता जब तक कि वह सजीव न हो, अथवा उसका किसी स्वतः जीवित पदार्थ अर्थात् आत्मा से निकट सम्बन्ध न हो। हिन्दुओं का विश्वास है कि आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप तथा भौतिक आधार को नहीं जानता और जिस वस्तु को वह नहीं जानता उसे जानने के लिए उसे बड़ी लालसा रहती है। उनका यह भी विश्वास है कि आत्मा प्रकृति (शरीर) के बिना नहीं रह सकता। यह मङ्गल-रूप संस्थिति के लिए लालायित रहता है और उन रहस्यों को जानने का अभिलाषी रहता है जिनका कि उसे ज्ञान नहीं। इसी से प्रकृति के साथ संयुक्त होने की इसे प्रवृत्ति होती है। अत्यन्त स्थूल और अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यों का संयोग उन दोनों से विशेष सम्बन्ध रखने वाले मध्यवर्ती तत्त्वों के द्वारा ही हो सकता है। उदाहरणार्थ जल और अग्नि के बीच, जो कि इन दो गुणों के कारण एक दूसरे के विरुद्ध हैं, वायु माध्यम है, क्योंकि विरलता में यह अग्नि से और सघनता में जल से मिलती है। इन्हीं दो गुणों के कारण यह एक को दूसरे में मिलने के योग्य बना देती है। निराकार और साकार में जितनी प्रतिपक्षता है उस से बढ़कर और किसी में क्या होगी। अतः आत्मा अपने स्वरूप के कारण,

समान माध्यमों के विना अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर सकता। ये समान माध्यम अमूर्त प्रेतात्मायें हैं जो भूर्लोक, भुवर्लोक, और स्वर्लोक में मूल मात्राओं से उत्पन्न होते हैं। सामान्य पाँच तत्त्वों के बने स्थूल शरीरों से इनका भेद करने के लिए हिन्दू इन्हें सूक्ष्म शरीर कहते हैं। पृथ्वी पर सूर्य्य की भाँति, आत्मा इन सूक्ष्म शरीरों पर चढ़ता है। इन माध्यमों से संयुक्त होकर आत्मा इन से रथ का काम लेता है। एवं, यद्यपि सूर्य्य एक है पर उसके सामने रक्खे हुए अनेक दर्पणों और जलपूर्ण घड़ों में उस का प्रतिविम्ब पड़ता है। प्रत्येक घड़े और प्रत्येक दर्पण में सूर्य्य एक समान दीख पड़ता है। उसका ताप और प्रकाश देने वाला प्रभाव भी सब में तुल्य प्रतीत होता है।

विविध शरीर भिन्न भिन्न पदार्थों के संयोग से बने हैं। अतः जब हड्डी, नाड़ी, और वीर्य्य प्रभृति नर-तत्त्व मांस, लहू और केश आदि नारी तत्त्वों से संयुक्त होकर देह बनाते हैं और वे देह जीवन को धारण करने के लिए पूर्णतया तैयार हो जाते हैं तो ये आत्मा इन में प्रवेश करते हैं। ये शरीर इन आत्माओं को वही काम देते हैं जो बड़े बड़े दुर्ग और प्रासाद नरेशों को। अधिक उन्नत हो जाने पर पाँच प्राण शरीर में प्रवेश करते हैं। इन पाँच में से पहले दो के द्वारा प्राणी श्वास को अन्दर लेता और बाहर निकालता है। तीसरा प्राण आमाशय में खाद्य द्रव्यों को मिलाता है। चौथा शरीर को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। और पाँचवाँ ज्ञानेन्द्रियों की चेतना को शरीर के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाता है।

पृष्ठ २१

शारीरिक क्रियाओं को कराने वाले पाँच प्राण।

उक्त आत्मायें, हिन्दुओं के विचारानुसार, अपने शुद्ध स्वरूप

में एक दूसरे से भिन्न नहीं। इन सब का प्रकृत स्वरूप एक सा ही है। पर इनके व्यक्तिगत आचार-व्यवहार में भेद है। इसका कारण एक तो उनके धारण किये हुए शरीरों की भिन्नता, दूसरे उनके अन्दर के तीन गुण जो एक दूसरे से बढ़ने की सदा चेष्टा करते रहते हैं, और तीसरे ईर्ष्या और क्रोध के विकारों से उन तीनों गुणों की साम्यावस्था का बिगड़ जाना है।

आत्माओं का भेद शरीरों और उनकी प्रतिक्रियाओं के भेद के कारण हैं।

आत्मा के कर्म्म में प्रवृत्त होने का प्रधान उच्चतम कारण यही है।

इसके विपरीत, प्रकृति-सम्भूत नीचतम कारण यह है कि प्रकृति पूर्ण बनने की चेष्टा करती रहती है और जो बात कम अच्छी अर्थात् सम्भाव्य अवस्था से निकल कर साकार अवस्था में जाने वाली है उसकी अपेक्षा अधिक अच्छी को पसन्द करती है। मिथ्या-प्रशंसा तथा उच्चपदलालसा के कारण जो कि इसके स्वाभाविक गुण हैं, प्रकृति अपनी सारी शक्ति से नाना रूप धारण कर अपने शिष्य—आत्मा—को दिखाती है, और उसे सब प्रकार की वनस्पतियों और जन्तुओं के शरीरों में घुमाती है। हिन्दू लोग आत्मा को एक ऐसी नर्तकी से उपमा देते हैं जो कि अपनी कला में निपुण है और जानती है कि उसकी प्रत्येक चेष्टा और संकेत क्या परिणाम रखता है। वह एक विषयी पुरुष के सामने खड़ी है जो कि उसकी विद्या का आनन्द लूटने के लिए बड़ा उत्कट है। वह अपनी माया के नाना चमत्कार क्रमशः दिखलाना आरम्भ करती है। इस पर वह विषयी उसकी प्रशंसा करता हुआ नहीं थकता। अन्त को उसके खेल समाप्त होते हैं और साथ ही दर्शक की

प्रकृति की आत्मा के साथ मिलने की अभिलाषा।

इस विशेष प्रकार के मिलाप का दृष्टान्त।

उत्सुकता भी जाती रहती है। इस पर वह सहसा ठहर जाती है, क्योंकि अब उसके पास कोई नया खेल नहीं रहता। और वह पुराना खेल देखना नहीं चाहता, इसलिए उसे वहां से विदा कर देता है। इसके साथ ही कर्म की भी समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार के सम्बन्ध की समाप्ति निम्नलिखित दृष्टान्त से स्पष्ट की जाती है :—

एक वन में पथिकों की एक टोली जा रही थी। डाकुओं के एक समूह ने उन पर आक्रमण किया। एक अंधे और एक लूले के अतिरिक्त, जो भाग कर छिप नहीं सकते थे, शेष सब पथिक इधर उधर भाग गये। तत्पश्चात् जब वे दोनों आपस में मिले और उन्होंने एक दूसरे को पहचान लिया तो लूला बोला—"मैं चल तो नहीं सकता पर मार्ग दिखा सकता हूँ। तुम्हारी दशा इसके विपरीत है। इसलिए मुझे अपने कंधों पर उठा कर ले चलो। मैं तुम्हें मार्ग दिखाता चलूँगा और इस प्रकार हम दोनों आपत्ति से बच जायँगे। अंधे ने ऐसा ही किया। परस्पर सहायता से उन्होंने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया और वन से बाहर निकल कर वे एक दूसरे से जुदा हो गये।"

प्रकृति के कर्म का कारण उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

हिन्दू लोग, जैसा कि हम कह आये हैं, कर्ता का वर्णन कई प्रकार से करते हैं। विष्णुपुराण कहता है—"प्रकृति जगत् का आदिकारण है। स्वभाव सिद्ध प्रवृत्ति से ही यह जगत् में कर्म्म करती है—जैसे कि एक वृक्ष स्वभावतः ही अपने बीज बो देता है, उसकी अपनी इच्छा नहीं होती; या जिस प्रकार पवन जल को ठण्डा कर देता है, यद्यपि उसका विचार केवल चलने का ही होता है। स्वेच्छाधीन कर्म्म केवल विष्णु का ही है।" इस पिछले वाक्य से ग्रन्थकार का अभिप्राय

चेतन सत्ता (परमेश्वर) से है जो कि प्रकृति से ऊपर है। उसी के द्वारा प्रकृति कर्ता बनकर उसके निमित्त इस प्रकार काम करती है जिस प्रकार कि एक मित्र दूसरे मित्र के लिए बिना किसी पुरस्कार की कामना के परिश्रम करता है।

इस वाद पर मानी ने निम्न वाक्य घड़ा है।

"प्रेरितों ने ख्रीष्ट से जड़ जगत् में जीवन के विषय में जिज्ञासा की। उसने उत्तर दिया कि जो जड़ है यदि उसे चेतन से, जो कि उसके साथ संयुक्त है और अपने आप अलग प्रतीत होता है, जुदा कर लें तो वह फिर जड़ का जड़ और जीवन-शून्य रह जाता है। परन्तु चेतन सत्ता, जुदा होने पर भी, वैसी ही विशुद्ध प्राणात्मक बनी रहती है। यह कभी नहीं मरती।" पृष्ठ २१

सांख्यदर्शन कर्म्म की उत्पत्ति प्रकृति से मानता है, क्योंकि प्रकृति के नाना रूपों में जो भेद दीख पड़ता है उसका कारण तीन आदि गुण और उन गुणों में से एक या दो की प्रधानता है। ये गुण मानुषी और पाशविक हैं। तीनों प्रकृति के गुण हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा का काम दर्शक की भाँति प्रकृति के कार्य्यों का ज्ञान प्राप्त करना है, जिस प्रकार कि यात्री किसी ग्राम में विश्राम लेने बैठता है। ग्रामवासी नर-नारी अपने अपने काम में मग्न हैं, पर वह उन्हें देखता है और उनके कामों पर विचार करता है। कई कामों को वह बुरा और कइयों को अच्छा समझता और उनसे शिक्षा ग्रहण करता है। इस प्रकार, यद्यपि उसका उनके कार्य्यों में कोई भाग नहीं फिर भी वह व्यग्र है। साथ ही जो व्यापार हो रहा है उसका वह कारण भी नहीं।

सांख्य-मतानुसार प्रकृति कर्म्म का कारण है।

यद्यपि आत्मा का कर्म्म से कोई वास्ता नहीं तो भी सांख्य-दर्शन उनका इतना सम्बन्ध बताता है जितना कि एक पथिक का उन अप-

रिचित लोगों से है जो कि दैवयोग से मार्ग में उसके साथी हो गये हैं। वे अपरिचित लोग डाकू हैं और किसी गांव को लूट कर आ रहे हैं। वह पथिक उनके साथ अभी थोड़ा ही मार्ग चला है कि इतने में पीछे से गांव वालों ने आकर घेर लिया। सब के सब डाकू पकड़ लिये गये और साथ ही निरपराधी पथिक भी पकड़ा गया। उसके साथ ठीक वैसा ही बर्ताव हुआ जैसा कि डाकुओं के साथ। यद्यपि उसने उनके काम में कोई भाग नहीं लिया था तो भी उसे वही दण्ड मिला।

लोग कहते हैं कि आत्मा आकाश से सदैव एक ही रूप में बरसने वाले वर्षा-जल के सदृश है। जिस प्रकार वर्षा जल को सोना, चांदी, कांच, मिट्टी, चिकनी मिट्टी, या खारी मिट्टी, आदि भिन्न भिन्न द्रव्यों के बने हुए बर्तनों में इकट्ठा करने पर उनके रूप, रस, और गंध में भेद हो जाता है इसी प्रकार आत्मा का प्रकृति पर केवल यही प्रभाव है कि इसके संसर्ग से उसमें जीवन आ जाता है। जब प्रकृति कर्म्म करती है तो तीनों गुणों में से प्रधान गुण के अनुसार, और शेष दो अभिभूत गुणों की उसके साथ पारस्परिक सहायता के अनुसार, परिणामान्तर होता है। वह सहायता कई प्रकार की है। यथा ताज़ा तेल, सूखी बत्ती, और सुलगती हुई अग्नि प्रकाश उत्पन्न करने के लिए परस्पर सहायता देते हैं। प्रकृति में आत्मा रथ में सारथि की नाईं है। इन्द्रियों से सम्पन्न होने के कारण वह रथ को स्वेच्छानुसार चलाता है। आत्मा परमेश्वर की दी हुई बुद्धि के अनुसार कार्य्य करता है। वे लोग बुद्धि उसे समझते हैं जिससे पदार्थों का यथार्थ रूप जाना जाता है, जो ब्रह्म-विद्या का मार्ग बताती है, और जो प्रशंसनीय तथा शुभ कार्य्यों के लिए प्रेरणा करती है।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

जीवात्माओं की अवस्था और पुनर्जन्म के द्वारा उनका देहान्तर-गमन ।

"सिवाय परमेश्वर के और कोई पूज्य देव नहीं और मुहम्मद उसका प्रेरित है" जैसे यह कलमा इसलाम का, त्रिमूर्ति ईसाइयों की और सब्बथ का संस्कार यहूदियों का साम्प्रदायिक शब्द है, वैसे ही पुनर्जन्म हिन्दू-धर्म्म का है। अतः जो इसे नहीं मानता वह हिन्दू नहीं और वे उसे अपने में से नहीं समझते। उन का विश्वास इस प्रकार है :—

पुनर्जन्म का आरम्भ, विकास, और अन्तिम परिणाम।

जीवात्मा को जब तक पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक वह विश्व के सकल पदार्थों को साक्षात् अनुभव नहीं कर सकता, या यों कहिए कि उसे उन का तत्काल ही ज्ञान नहीं हो सकता। अतः आवश्यक है कि जितने भी प्राणी और जितनी भी योनियां हैं यह उन सब की खोज और परीक्षा करे। इन योनियों की संख्या, यद्यपि अनन्त नहीं, फिर भी, बहुत बड़ी है। इस लिए इन नाना प्रकार के पदार्थों और जन्तुओं के निरूपण के लिए आत्मा को बहुत बड़ा समय चाहिए। व्यक्तियों, जातियों, और उन की विशेष क्रियाओं और दशाओं का चिन्तन करने से ही आत्मा को ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह प्रत्येक पदार्थ से अनुभव लाभ करता है; इस से इस की ज्ञान-वृद्धि होती रहती है।

पृष्ठ २५

पृष्ठ २६

अपितु, इन कर्म्मों में इतना ही भेद है जितना कि तीनों आदि-गुणों में। इस के अतिरिक्त जगत् को भी किसी अभिसन्धान के बिना

नहीं रहने दिया गया। जैसे घोड़े को लगाम से चलाते हैं वैसे ही इसे भी एक विशेष लक्ष्य की ओर चलाया जाता है। इस लिए अनश्वर आत्मायें अपने अच्छे और बुरे कर्म्मों के अनुसार नश्वर शरीरों में घूमती फिरती हैं। फल के जगत् (स्वर्ग) में से परिभ्रमण कराने का प्रयोजन आत्मा को पुण्य की ओर प्रेरित करना है ताकि उसे यथा-सम्भव ग्रहण करने की लालसा इस के अन्दर उत्पन्न हो। नरक में से घुमाने का प्रयोजन आत्मा का पाप की ओर ध्यान दिलाना है ताकि यथा-सम्भव यह उस से बचती रहे।

देहान्तरगमन निचली अवस्थाओं से आरम्भ हो कर उच्चतर और उत्तमतर अवस्थाओं की ओर होता है, इसके विपरीत नहीं। यह बात हम ने जान बूझ कर कही है क्योंकि ऊपर के कथन से दोनों बातें सम्भव प्रतीत होती हैं। इन नीच और उच्च अवस्थाओं का भेद कर्म्मों के प्रभेद पर निर्भर है। फिर कर्म्मों का प्रभेद प्रकृतियों के भेद पर है अर्थात् उन के अन्दर तीनों गुणों—सत्व, रजस्, तमस्—में से कौन कौन से प्रधान हैं इस पर। जब तक आत्मा और प्रकृति अपने निर्दिष्ट लक्ष्य पर भली भांति नहीं पहुँच जाते तब तक यह आवागमन का चक्र बराबर चलता रहता है। निकृष्ट लक्ष्य तो यह है कि किसी एक वाञ्छनीय नवीन आकार के सिवाय प्रकृति के शेष सब रूप लोप हो जायँ। और उत्कृष्ट लक्ष्य यह है कि जो पदार्थ आत्मा को पहले अज्ञात थे उन के जानने की अभिलाषा उस में न रहे। उसे अपने शुद्ध स्वरूप और स्वतंत्र सत्ता का ज्ञान हो जाय। प्रकृति के लक्षणों की नीचता और उसके रूपों की अस्थिरता, इन्द्रियों के विषयों तथा उनके नाम मात्र सुखों की यथार्थता को जान लेने के पश्चात् उसे मालूम हो जाय कि मैं प्रकृति के बिना भी निर्वाह कर सकता हूँ। ऐसा होने पर आत्मा प्रकृति से विमुख हो जाता है।

दोनों को जोड़ने वाली शृङ्खलाओं के टूट जाने से संयोग नष्ट हो जाता है। वियोग और पार्थक्य का आविर्भाव होता है। और जैसे तिल का एक दाना बढ़ कर बहुत से दाने और फूल बनता है परन्तु पीछे से अपने तैल से कभी अलग नहीं होता वैसे ही आत्मा ज्ञाना-नन्द को लिये हुए अपने घर को वापिस लौटता है। ज्ञाता, ज्ञान, और ज्ञेय मिल कर कैवल्य भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

अब हमारा कर्तव्य है कि इस विषय में उनके ही साहित्य से स्पष्ट प्रमाण उद्धृत करें और साथ ही दूसरी जातियों के भी वैसे ही सिद्धान्त लिखें।

रणक्षेत्र में दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े हुए वासुदेव अर्जुन गीता के प्रमाण। को युद्ध के लिए उत्तेजित करते हुए कहते हैं—"यदि तुम प्रारब्ध को मानते हो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि न वे और न हम विनाशवान् हैं। हमें मरण के पश्चात् जन्म ग्रहण करना आवश्यक है, क्योंकि आत्माएँ अमर और नित्य हैं। वे देहान्तर-गमन करती हैं, पर मनुष्य बाल्यावस्था से कौमारावस्था, कौमारावस्था से यौवनावस्था, और फिर जरावस्था को प्राप्त होता है। जरावस्था का अन्त शरीर की मृत्यु है। तत्पश्चात् आत्मा वापिस लौटती है।"

वे पुनः कहते हैं:—"जो मनुष्य यह जानता है कि आत्मा नित्य, अजन्मा, अमर, स्थिर और अचल है; और तलवार उसे काट नहीं सकती, अग्नि उसे जला नहीं सकती, पानी उसे बुझा नहीं पृष्ठ २६ सकता, और पवन उसे सुखा नहीं सकती, वह मारे जाने और मृत्यु का विचार भी मन में कैसे ला सकता है? जिस प्रकार शरीर के कपड़े पुराने हो जाने पर उसे और नये वस्त्र मिल जाते हैं उसी तरह शरीर के जरावस्था को प्राप्त हो जाने पर आत्मा उसे

छोड़ कर दूसरी देह को पा लेता है। तो फिर जो आत्मा अविनाशी है उसके लिए तुम शोक कैसा करते हो? यदि यह नाश होने वाली वस्तु होती तो भी तुम्हारा एक अनित्य पदार्थ के लिए, जिसकी कोई सत्ता ही नहीं, और जिसका पुनः प्रादुर्भाव नहीं हो सकता, शोक करना उचित न होता। परन्तु यदि तुम अपने आत्मा की अपेक्षा अपने शरीर पर अधिक ध्यान देते हो और तुम्हें इसके नाश होने की चिन्ता बनी रहती है तो तुम्हें जानना चाहिए कि जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा, और जो मरता है उसका पुनर्जन्म भी ज़रूरी है। परन्तु जन्म और मरण से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। वे परमेश्वर के हाथ में हैं जो कि सब का कर्ता और संहर्ता है।"

आगे चल कर अर्जुन वासुदेव से कहता है:—"इस प्रकार तुमने उस ब्रह्मा के साथ लड़ने का कैसे साहस किया जो कि संसार और मनुष्य दोनों के पहले था, परन्तु आप एक प्राणि की भांति हमारे अन्दर रहते हैं, और आप का जन्म तथा आयु हमें ज्ञात है?"

इस पर वासुदेव ने उत्तर दिया:—"वह और हम दोनों अनादि हैं। हम अनेक बार इकट्ठे रहे हैं। मुझे पिछले जन्म-मरण का ज्ञान है परन्तु तुम्हें उनका कुछ पता नहीं। जब मैं उपकारार्थ प्रकट होना चाहता हूँ तो देह धारण करता हूँ, क्योंकि मनुष्यों के साथ मनुष्य-देह में ही रहना पड़ता है।"

लोग एक राजा की कथा सुनाते हैं। उस राजा का नाम मुझे स्मरण नहीं रहा। उसने आदेश किया था कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे शरीर को ऐसे स्थान में जलाया जाये जहां पहले कभी कोई शव न जलाया गया हो। लोगों ने ऐसे स्थान की बहुतेरी तलाश की

परन्तु कोई भी ऐसा स्थान न मिला। अन्ततः समुद्र से बाहर निकली हुई एक चट्टान को देख कर उन्होंने समझा कि अब वैसा स्थान मिल गया। परन्तु वासुदेव ने उन्हें बतलाया कि 'यही राजा ठीक इसी चट्टान पर पहले भी अनेक बार जलाया जा चुका है। अब जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। राजा तुम्हें एक शिक्षा देना चाहता था, सो उसका उद्देश पूर्ण हो गया।'

वासुदेव कहते हैं:—"जो मनुष्य मोक्ष की आशा करता है और सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए यत्न करता है, परन्तु जिसका मन उसके वश में नहीं, वह अपने कर्म्मों का फल उन लोगों में भोगता है जहाँ उत्तम कर्मों वाले लोग रहते हैं। परन्तु उसे अपनी त्रुटियों के कारण अन्तिम उद्देश की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए वह इसी लोक में फिर लौट आता है और उसे नवीन जन्म ऐसा मिलता है जिसमें भक्ति करने का उसके लिए विशेष सुभीता रहता है। दैव-ज्ञान इस नवीन देह में उसे उस लक्ष्य की ओर क्रमशः चढ़ने में सहायता देता है जिसकी प्राप्ति की उसे पूर्व जन्म में अभिलाषा थी। उसका मन उसकी इच्छा का अनुगामी हो जाता है, भिन्न भिन्न जन्मों में वह अधिक और अधिकतर निर्मल होता जाता है, यहाँ तक कि अन्त में निरन्तर नवीन जन्मों के द्वारा वह मोक्ष लाभ करता है।"

वासुदेव फिर कहते हैं:—"प्रकृति से वियुक्त हुई आत्मा ज्ञानवान होती है। परन्तु जब तक इस पर प्रकृति का आवरण रहता है, प्रकृति के गदला होने के कारण यह भी अज्ञानी रहती है। यह समझती है कि 'मैं कर्त्ता हूँ और सृष्टि के कर्म्म सब मेरे लिए बनाये गये हैं।' अतः यह उन में लिप्त हो जाती है और इस पर इन्द्रियों के संस्कार बैठ जाते हैं। जब आत्मा शरीर को छोड़ती है तो ये

इन्द्रियों के संस्कार उसके साथ बने रहते हैं। इनका पूर्णतया नाश नहीं होता क्योंकि यह पुनः इन्द्रियग्राम के लिए लालायित होती है और इसी में वापस आती है। इन अवस्थाओं में इसके अन्दर परस्पर विरोधी परिवर्तन पैदा होते हैं, अतः इस पर तीन गुणों का प्रभाव पड़ता है। यदि आत्मा को यथेष्ट रीति से शिक्षित न किया जाय और अभ्यासी न बनाया जाय तो पंख कटे होने के कारण आत्मा कर ही क्या सकती है ?"

वासुदेव कहते हैं–"नरोत्तम वही है जो पूर्ण ज्ञानवान् है क्योंकि वह परमात्मा से प्रेम करता है और परमात्मा उस से प्रेम करता है। न जाने कितनी बार वह मरा और कितनी बार फिर उत्पन्न हुआ ! अपने सारे जीवन में वह सिद्धि के लिए यत्न करता है और अन्ततः उस सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।"

पृष्ठ २७

विष्णु धर्म नामक पुस्तक में मार्कण्डेय देवगण के विषय में कहते हैं—"ब्रह्मा, महादेव का पुत्र कार्त्तिकेय, लक्ष्मी जिसने अमृत उत्पन्न किया था, दक्ष जिस को महादेव ने मारा था, महादेव की स्त्री, उमादेवी इन में से प्रत्येक इस कल्प के मध्य में हुए हैं और पहले भी कई बार हो चुके हैं"।

विष्णु धर्म।

वराहमिहिर मनुष्य पर आने वाली विपत्तियों का नक्षत्रों से सम्बंध बताते हुए कहता है कि विपत्तियां मनुष्यों को घर बार से निकाल देती हैं; उन के शरीरों को दुबला करदेती हैं; और वे बच्चों को उङ्गली से पकड़, दुर्घटनाओं पर रुदन करते, सड़क पर धीमे धीमे इस प्रकार परस्पर बातें करते चलते हैं—"हमारे राजाओं के दुष्कर्मों के कारण हमें कष्ट मिल रहा है"। इस पर दूसरा उत्तर देता है, "नहीं, यह बात नहीं। जो कर्म्म हम पिछले जन्मों में कर आये हैं यह उन्हीं का फल है।"

जब मानी को ईरान शहर से निकाल दिया गया तो वह भारतवर्ष

मानी

में गया । वहाँ जाकर उसने हिन्दुओं से पुनर्जन्म का सिद्धान्त सीखा और उसका अपनी पद्धति में समावेश किया । वह अपनी "रहस्यों की पुस्तक" كتاب الاسرار में कहता है— "प्रेरितों को यह ज्ञात था कि आत्माएं नित्य हैं । आवागमन के चक्र में वे प्रत्येक आकार धारण कर लेती हैं । सर्व प्रकार के जन्तुओं के रूप में वे प्रकट होती हैं और प्रत्येक आकृति के ढाँचे में वे समा जाती हैं । इसलिए उन्हों ने ख्रीष्ट से पूछा कि उन आत्माओं की क्या गति होगी जिन्हों ने सत्य को ग्रहण नहीं किया और अपने वास्तविक रूप को नहीं समझा । तब उस ने उत्तर दिया कि जिस निर्बल आत्मा ने सत्य का यथोचित अंश ग्रहण नहीं किया वह शान्ति और आनन्द के अभाव से नष्ट हो जाती है ।" नष्ट होने से मानी का अभिप्राय दण्ड पाने से है, न कि सर्वथा अभाव से; क्योंकि वह अन्यत्र कहता है— "बारडेसनीस के अनुयायी वर्ग का यह विचार है कि शरीर में चेतन आत्मा का उत्थान और शुद्धि होती है । वे यह नहीं जानते कि शरीर आत्मा का शत्रु है, उसके उत्थान को रोकता है । यह एक कारागार है और आत्मा के लिए एक कड़ा दण्ड है । यदि मानव देह की एक सच्ची सत्ता होती तो इस का स्रष्टा कभी भी इसे घिसने या टूटने न देता और उसे वीर्य्य के द्वारा गर्भाशय में बारम्बार जन्म लेते रहने के लिए बाधित न करता ।"

निम्नलिखित वाक्य पतञ्जलि की पुस्तक से लिया गया है—"आत्मा

पतञ्जलि ।

चारों ओर से अविद्या से ग्रस्त है । यही इस के बद्ध होने का कारण है । इस प्रकार आत्मा छिलके के अन्दर चावल की भाँति है । जब तक यह इस दशा में रहती है इस में जन्म लेने और जन्म देने के बीच की अनित्य अवस्थाओं के अन्दर अन्दर बढ़ने

ऋौर परिपक होने की सामर्थ्य रहती है। परन्तु जब चावल पर से छिलका उतर गया तो इसका इस प्रकार बढ़ना बन्द हो जाता है ऋौर यह स्थिर हो जाता है। ऋात्मा के कर्म्मों का फल विविध शरीरों पर जिन में कि यह जाती है, जीवन की लम्बाई छुटाई पर, ऋौर इस के विशेष प्रकार के ऋानन्द पर—चाहे वह ऋानन्द थोड़ा हो चाहे बहुत—निर्भर है।"

शिष्य पूछता है—"जब ऋात्मा फल पाने की ऋधिकारी होकर ऋानन्द भोगने ऋथवा कोई पाप करने के कारण दण्ड पाने के निमित्त एक प्रकार के नवीन जन्म में फँसी हुई हो तो उस समय इस की क्या ऋवस्था होती है ?"

गुरु कहता है—"ऋात्मा ऋपने पूर्व कर्म्मों के ऋनुसार जन्म धारण करती फिरती है। कभी दुःख भोगती है कभी सुख।" पृष्ठ २८

शिष्य पूछता है—"यदि मनुष्य कोई ऐसा कर्म्म करता है जिसका प्रतिफल पाने के लिए उसे उस रूप से भिन्न रूप की ऋावश्यकता है जिस में कि उस ने वह कर्म्म किया था, ऋौर यदि इन दो ऋवस्थाऋों में समय का भारी ऋन्तर हो ऋौर वह उस बात को ही भूल जावे, तो ऐसी ऋवस्था में क्या होता है ?"

गुरु उत्तर देता है—" कर्म्म स्वभावतः ही ऋात्मा के साथ रहता है। क्योंकि कर्म्म उसकी कृति है ऋौर शरीर उसके करने में एक साधन मात्र है। नित्य पदार्थों में विस्मृति नहीं, क्योंकि वे काल के बन्धन से रहित हैं; ऋौर चिर ऋौर ऋचिर का व्यवहार केवल काल के साथ ही है। कर्म्म ऋात्मा के साथ युक्त होकर उसके स्वभाव ऋौर ऋाचार को उसके ऋागामी जन्म की ऋवस्थाऋों के ऋनुकूल बना देता है। ऋात्मा ऋपनी विशुद्ध ऋवस्था में इस बात को जानती है, इसका चिन्तन करती है, ऋौर इस को भूलती नहीं। परन्तु परमात्मा का

प्रकाश, जब तक इसका शरीर से संयोग रहता है, प्रकृति के गदले स्वरूप के कारण ढँका रहता है। उस समय आत्मा उस मनुष्य के सदृश होती है जिसे पूर्वज्ञात वस्तु तो याद है पर जो रोग, या पागलपन, या किसी मादक द्रव्य के सेवन से मन के विकृत हो जाने के कारण पीछे से उसे भूल गया है। क्या तुमने कभी नहीं देखा कि जब बच्चों के लिए दीर्घायु की कामना की जाय तो वे बड़े प्रसन्न होते हैं; परन्तु जब उन्हें शाप दिया जाय—कि तुम शीघ्र ही मर जाओ तो वे बड़े शोकातुर होते हैं? यदि कर्म्मों का फल भोगते समय उन्होंने पूर्व-जन्मों में जीवन के सुखों और मृत्यु के दुःखों का रस न चखा होता तो उन पर इन बातों में से एक का अच्छा और दूसरी का बुरा असर क्यों होता?

प्राचीन यवन लोग भी हिन्दुओं के इस विश्वास से सहमत थे।

प्लेटो और मोक्लस के प्रमाण।

सुकरात अपनी पुस्तक फाएडो में कहता है—"प्राचीन लोगों की कथाओं में हमें याद दिलाया गया है कि आत्माएँ यहाँ (मर्त्यलोक) से हेडीज़ में जाती हैं और फिर हेडीज़ से यहाँ आती हैं; चेतन जड़ से उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण वस्तुएँ अपने से विपरीत वस्तुओं से व्युत्पन्न होती हैं। इस लिए जो मर चुके हैं वे जीवितों में हैं। हेडीज़ में हमारी आत्माओं का अपना अपना अलग जीवन होता है। वहाँ प्रत्येक मनुष्य की आत्मा किसी न किसी बात से प्रसन्न या शोकान्वित रहती है और उसी वस्तु का चिन्तन करती रहती है। संस्कारों को ग्रहण करने वाली प्रकृति ही आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध करती है, उसे शरीर में निबद्ध कर देती है, और देहाकार में प्रकट करती है। अपवित्र आत्मा हेडीज़ में नहीं जा सकती। शरीर छोड़ने पर भी इस में शरीर के विकार बने रहते हैं। वह शीघ्र ही दूसरे शरीर में चली जाती है। उस में जाकर

मानों वह निवद्ध हो जाती है, इसलिए उसे अद्वितीय, पवित्र और दिव्य तत्त्व की संगति में रहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता।"

आगे चलकर वह कहता है—"यदि आत्मा एक स्वतन्त्र सत्ता है तो जिस बात को हमने पूर्वकाल में सीखा था उसे स्मरण रखने के अतिरिक्त हमारा ज्ञान और कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य रूप में प्रकट होने के पूर्व हमारी आत्माएँ किसी एक स्थान में थीं। जब लोग किसी ऐसी वस्तु को देखते हैं जिसके उपयोग का अभ्यास वे बाल्यावस्था में किया करते थे तो उस समय वे भी इसी पूर्व संस्कार से प्रभावित होते हैं। उदाहरणार्थ घण्टी के देखने से उन्हें वह लड़का याद आ जाता है जो उसे बजाया करता था परन्तु जिसे वह भूल गये थे। भूल जाना ज्ञान के लोप हो जाने का नाम है, और जानना आत्मा के उस बात को याद करने का नाम है जिसे उसने शरीर में प्रवेश करने के पूर्व सीखा था।"

प्रोक्लस कहता है।—"याद रखना और भूल जाना युक्ति-सम्पन्न आत्मा का विशेष गुण है। यह स्पष्ट है कि आत्मा नित्य है। फलतः यह सदा से ज्ञानी और अज्ञानी दोनों है। अज्ञानी तो उस समय जब कि यह शरीर से संयुक्त हो और ज्ञानी उस समय जब कि यह शरीर से रहित हो। शरीर से अलग हो जाने पर इसका सम्बन्ध आत्माओं के प्रदेश से हो जाता है, इसी लिए उस अवस्था में यह ज्ञानवान् है। परन्तु शरीर से संयुक्त होने पर यह आत्माओं के प्रदेश से गिर पड़ती है अतः इसके लिए भूल जाना सम्भव है, क्योंकि उस दशा में कई प्रबल प्रभाव इस पर अधिकार जमा लेते हैं।"

पृष्ठ २९

सूफ़ी वाद।

यह सिद्धान्त उन सूफ़ियों का भी है जो यह मानते हैं कि यह लोक आत्मा की स्वप्नावस्था है और परलोक आत्मा की

जाग्रतावस्था। इन लोगों का यह भी मत है कि परमेश्वर किसी विशेष स्थान अर्थात् आकाश में अपने ईश्वरीय सिंहासन (अर्श) और गद्दी (कुरसी) पर बैठा है (जैसा कि क़ुरान में उल्लेख है)। परन्तु इनके अतिरिक्त एक और भी हैं जो यह मानते हैं कि परमात्मा सारे संसार में जन्तुओं, वृक्षों, और जड़ पदार्थों में स्थिर है। इसे वे उसका विश्व-रूप कहते हैं। जिन लोगों का ऐसा मत है उनके लिए पुनर्जन्म के चक्र में आत्मा का विविध शरीरों में प्रवेश करना कोई गौरव की बात नहीं।

छठा परिच्छेद ।

भिन्न भिन्न लोक, और स्वर्ग तथा नरक में फल भोगने के स्थान ।

तीन भाग।

हिन्दू दुनिया को लोक कहते हैं। इनकी प्रारम्भिक बाँट इस प्रकार हैः—ऊपर का लोक, नीचे का लोक, और मध्यवर्ती लोक। ऊपर का लोक स्वर्लोक या स्वर्ग कहलाता है; नीचे का नाग लोक या साँपों का लोक जो कि नरक-लोक भी कहलाता है। इसे कभी कभी पाताल अर्थात् सब से नीची दुनिया भी कह देते हैं। मध्यवर्ती दुनिया जिस में हम रहते हैं मध्य लोक और मनुष्य लोक या मनुष्यों की दुनिया कहलाती है। मनुष्य-लोक में मनुष्य कर्म्म करता है, ऊपर के लोक में उनका फल भोगता है, और नीचे के लोक में दण्ड पाता है। जो मनुष्य स्वर्लोक या नाग लोक में आने का अधिकारी होता है उसे अपने कर्म्मों की न्यूनता और अधिकता के अनुसार विशेष काल के अन्दर अन्दर अपने कर्म्मों का पूरा पूरा फल मिल जाता है। इन दोनों लोकों में आत्मा अकेली—शरीर से रहित—होती है। जिन लोगों के कर्म्म न स्वर्ग तक पहुँचने और न नरक में डूबने के योग्य होते हैं उनके लिए एक और तिर्यक्-लोक है। यह विवेक-शून्य पशुओं और वनस्पतियों का संसार है। यहाँ आत्मा को पुनर्जन्म द्वारा प्रत्येक पशु और वनस्पति के शरीर में घूमना पड़ता है; और अन्त को वह छोटी से छोटी प्रकार की वनस्पति से लेकर उच्च से उच्च श्रेणी के प्राणियों तक क्रमशः उन्नति करते करते

मनुष्य-देह को प्राप्त करती है। इस लोक में आत्मा के ठहरने का कारण निम्नलिखित में से कोई एक होता है:—या तो इसके कर्मों का फल इतना नहीं जो इसे स्वर्ग या नरक में भेजने के लिए पर्य्याप्त हो; या आत्मा नरक से वापस लौट रही है—क्योंकि उनका विश्वास है कि स्वर्ग से मनुष्य-लोक की ओर लौटते समय आत्मा झट पट मनुष्य-जन्म पाती है, पर नरक से वापस आते समय मनुष्य-जन्म पाने के पूर्व उसे वनस्पति और जन्तुओं में से घूम कर आना पड़ता है।

विष्णुपुराण से अवतरण।

हिन्दू अपनी लोक-कथाओं में बहुत से नरक, उनके भिन्न भिन्न नाम और गुण बताते हैं। प्रत्येक प्रकार के पाप के लिए एक विशेष प्रकार का नरक है। विष्णुपुराण नरकों की संख्या ८८००० बताता है। इस विषय में हम उस पुस्तक के प्रमाण देते हैं।

"जो किसी वस्तु को झूठे ही अपनी बताता है, जो झूठी साची देता है, जो इन दोनों कामों में सहायता करता है, और जो लोगों का उपहास करता है वह रौरव नरक में फेंका जाता है।"

"जो निरपराधियों का रक्तपात करता है, जो दूसरों के अधिकार छीनता है तथा उन्हें लूट लेता है, और जो गो-हत्या करता है, वह रोध नामक नरक में जाता है। जो गला घोंट कर लोगों को मारते हैं वे भी इसी नरक में जाते हैं।"

जो ब्राह्मण की हत्या करता है, जो स्वर्ण चुराता है, और जो इन कामों में हत्यारे या चोर का साथ देते हैं; जो राजा अपनी प्रजाओं का पालन नहीं करता, जो मनुष्य गुरु के कुल की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है, या जो अपनी सास के साथ भोग करता है वह तप्तकुम्भ नामक नरक में जाता है।"

पृष्ठ ३०

"जो लोभवश अपनी स्त्री के व्यभिचार पर आंख मीचता है, जो अपनी बहिन या पुत्र-वधू के साथ व्यभिचार करता है, जो अपनी सन्तान को बेचता है, जो धन बचाने के लिए कृपणता से अपने आप को तंग रखता है वह महा ज्वला में जाता है।"

"जो गुरु का अपमान करता है और उससे प्रसन्न नहीं रहता, मनुष्यों से घृणा करता है, पशुओं के साथ व्यभिचार करता है, वेद और पुराण की निन्दा करता है या उन्हें धन कमाने का साधन बनाता है वह शवल में जाता है।

"जो मनुष्य चोरी करता है या धोखा देता है, जो सदाचार का विरोध करता है, जो अपने पिता से घृणा करता है, जो परमेश्वर और मनुष्यों से प्रेम नहीं करता, जो परमात्मा के बनाये उज्ज्वल रत्नों का निरादर करता है—बल्कि उन्हें साधारण पत्थर समझता है—वह कृमीश में जाता है।

"जो कोई माता पिता और पूर्वजों के अधिकारों का आदर नहीं करता; जो देवताओं के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, तीरों और बरछियों के बनाने वाला, ये सब लालाभच में जाते हैं।

"तलवारों और चाकुओं का बनाने वाला विशसन में जाता है।

"जो राजाओं से दान लेने के लालच से अपनी सम्पत्ति को छिपाता है, और जो ब्राह्मण मांस, तैल या घी, अचार या मदिरा बेचता है वह अधोमुख में जाता है।

"जो कुक्कुट और बिल्लियाँ, छोटे जन्तु, सूअर और पक्षी पालता है वह रुधिरान्ध को जाता है।

"तमाशा करने वाले, बाज़ार में गाने वाले, पानी के लिए कूए खोदने वाले, पवित्र दिनों में स्त्री-गमन करने वाले, लोगों के घरों में आग लगाने वाले, मित्रों के साथ उनकी सम्पत्ति के लोभ से—द्रोह करने वाले रुधिर में जाते हैं।

"जो छत्ते में से मधु निकालता है वह वैतरणी में जाता है।

"जो यौवनान्ध होकर दूसरों की सम्पत्ति और स्त्रियाँ छीन लेता है वह कृष्ण में जाता है।

"जो कोई वृक्षों को काटता है वह असिपत्रवन में जाता है।

"व्याध और जाल तथा फन्दे के बनाने वाला वह्निज्वाल में जाता है।

"जो प्रचलित मर्यादा का मान नहीं करता, जो नियमों का उल्लङ्घन करता है वह सब से निकृष्ट हैं और सन्दंशक में जाता है।"

यह गणना हमने इसलिए दी है कि जिससे यह पता लग जाये कि हिन्दू किस प्रकार के कर्मों को पाप समझ कर उनसे घृणा करते हैं।

कई हिन्दुओं का विचार है कि वृक्ष और पशु योनियों में जाना ही नरक है।

कई हिन्दुओं का विश्वास है कि मध्यलोक, जो कि कर्म्म करने का स्थान है, मर्त्यलोक का ही नाम है। मनुष्य इस लोक में इसलिए भटकता फिरता है कि उसके पूर्व कर्म्म न तो इतने उच्च हैं कि उसे स्वर्ग मिल सके और न इतने नीच ही कि उसे नरक में डाल दिया जाये। स्वर्ग को वे एक उच्च अवस्था समझते हैं जहाँ मनुष्य अपने किये हुए कर्मों के अनुसार परिमित काल तक आनन्द में रहता है। इसके विपरीत वनस्पतियों और पशुओं की योनियों में चक्कर काटते फिरने को वे नीचावस्था समझते हैं। यहाँ मनुष्य अपने पूर्व काल के किये हुए पापों के अनुसार विशेष काल तक रह कर दण्ड भोगता है। जो

लोग ऐसा विश्वास रखते हैं वे अन्य किसी प्रकार का नरक नहीं मानते। उनके मत में मनुष्य-जन्म से इस प्रकार पतित हो जाने का नाम ही नरक है।

पुनर्जन्म के नैतिक नियम।

पृष्ठ ३१

कर्मों का फल भोगने के लिए उक्त नाना प्रकार के लोकों की आवश्यकता का कारण यह है कि प्रकृति के बन्धनों से मुक्त होने के लिए जो विशुद्ध ज्ञान की खोज होती है वह किसी सीधे मार्ग पर नहीं होती, वरन् अनुमान से अथवा दूसरों की देखादेखी बहुधा कोई एक मार्ग चुन लिया जाता है। मनुष्य का एक भी कर्म्म निष्फल नहीं जाता। जब उसके पुण्य और पाप को तोला जाता है तो छोटे से छोटा कर्म्म भी लेखे में गिन लिया जाता है। फल कर्म्म के अनुसार नहीं मिलता, बल्कि उस प्रयोजन के अनुसार जिस से मनुष्य ने कर्म्म किया हो। फल या तो जिस योनि में मनुष्य पृथ्वी पर है उसी योनि में मिल जाता है, या मरने के बाद उस योनि में मिलता है जिस में वह जन्म लेगा, या इस देह को छोड़ने और नवीन देह में प्रवेश करने के बीच की किसी एक अवस्था में मिल जाता है।

अब यहाँ पर हिन्दू लोग दार्शनिक कल्पना को छोड़ कर परम्परागत कथाओं की ओर फिर जाते हैं। दण्ड भोगने और फल भोगने के दो स्थानों के विषय में उन का विचार है कि मनुष्य वहाँ अमूर्त प्राणि के रूप में रहता है और निज-कर्म्मों का फल भोग चुकने पर पुनः देह धारण करता है और मनुष्य-जन्म पाता है, ताकि अपने भविष्य भाग्य को भोगने के लिए तैयार हो जाय। इसी लिए सांख्य-दर्शन का कर्त्ता फल से कोई विशेष लाभ नहीं मानता, क्योंकि यह सान्त और अनित्य है। साथ ही उस स्थान का जीवन हमारे इस लोक के जीवन के सदृश है, क्योंकि वहाँ का

सांख्य पुनर्जन्म पर आक्षेप करता है।

जीवन भी स्पर्धा और द्वेष से रहित नहीं। वहाँ भी जीवन की अनेक उच्च और नीच श्रेणियाँ हैं। जहाँ जहाँ साम्यावस्था है उसे छोड़ कर शेष सब कहीं काम और वासना बराबर बने हुए हैं।

सूफ़ी तुल्यता

सूफ़ी लोग भी एक और कारण से स्वर्ग-प्राप्ति का कोई विशेष महत्त्व नहीं समझते क्योंकि वहाँ आत्मा सत्य अर्थात् परमेश्वर को छोड़ अन्य पदार्थों में आनन्द अनुभव करती है, और उस के विचार कल्याण स्वरूप से फिर कर अभद्र पदार्थों की ओर झुक जाते हैं।

आत्मा के शरीर परित्याग के विषय में सर्वसाधारण का मत।

हम पहले कह चुके हैं कि हिन्दुओं के विश्वासानुसार इन दोनों स्थानों में आत्मा शरीर-रहित होती है। परन्तु ऐसा मत उन में से केवल शिक्षित लोगों का ही है, जोकि आत्मा को एक स्वतंत्र सत्ता मानते हैं। छोटी श्रेणी के लोग जो शरीर-रहित आत्मा की कल्पना नहीं कर सकते इस विषय में बहुत भिन्न विचार रखते हैं। उन का एक विचार यह है कि मृत्यु समय जो यंत्रणायें होती हैं उसका कारण यह है कि आत्मा के लिए अभी नवीन देह तैयार नहीं हुई होती और वह उसकी प्रतीक्षा कर रही होती है। जब तक सदृश व्यापारों वाला उसी प्रकार का एक शरीर न तैयार हो जाये तब तक आत्मा देह-परित्याग नहीं करती। प्रकृति या तो ऐसा शरीर माता के गर्भ में भ्रूण रूप में तैयार करती है और या पृथ्वी के भीतर बीज रूप में। तब आत्मा जिस शरीर में ठहरी हुई थी उसे छोड़ देती है।

कई दूसरे इस से अधिक पुरातन विचार को मानते हैं। वे कहते हैं कि आत्मा को प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। दूसरा शरीर तत्त्वों का बन कर पहले तैयार होजाता है तब यह पहले शरीर को, उसकी निर्बलता के कारण, छोड़ती है। तत्त्वों के इस शरीर को अतिवाहिक

अर्थात् शीघ्रता से बढ़ने वाला कहते हैं, क्योंकि इस का आविर्भाव जन्म द्वारा नहीं होता। आत्मा के कर्म्म चाहे स्वर्ग के योग्य हों चाहे नरक के, एक वर्ष तक उसे इस शरीर में रह कर बहुत कष्ट भोगना पड़ता है। यह भी फ़ारस वालों के बर्ज़ख़ की भांति कर्म्म करने, उपार्जन करने, और फल भोगने की अवधियों की मध्यवर्ती अवस्था है। इस लिए मृत मनुष्य के उत्तराधिकारियों को, हिन्दुओं की रीत्यानुसार, मृतक के निमित्त वर्ष के सारे अनुष्ठान और क्रिया-कर्म्म पूरे करना आवश्यक है, क्योंकि एक वर्ष के पश्चात् ही आत्मा उस स्थान को जाती है जोकि उस के लिए तैयार किया गया है।

विष्णुपुराण और सांख्य के प्रमाण।

अब हम उन के ही साहित्य से उन के विचारों को स्पष्ट करने के लिए प्रमाण देते हैं। पहले विष्णुपुराण से लीजिए—

"मैत्रेय ने पराशर से नरक और उस में दण्ड भोगने के विषय में जिज्ञासा की। उन्हों ने उत्तर दिया कि 'इस का अभिप्राय पुण्य का पाप से, तथा ज्ञान का अविद्या से भेद करना, और न्याय का प्रकाश करना है परन्तु सारे ही पापी नरक-गामी नहीं होते। उन में से अनेक पहले ही प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप द्वारा नरक से बच जाते हैं। प्रत्येक कर्म्म में विष्णु भगवान् का निरन्तर ध्यान रखना ही सब से बड़ा प्रायश्चित्त है। दूसरे प्राणी वृक्षों, गन्दे कीड़ों तथा पक्षियों, और जूओं तथा कृमियों जैसी रेंगने वाली जघन्य योनियों में, जितने समय के लिए उनकी कामना हो उतने काल तक, भटकते रहते हैं।"

पृष्ठ १२

सांख्यदर्शन में लिखा है कि जो मनुष्य अभ्युदय और पुरस्कार का अधिकारी होता है वह या तो देवता बन कर देवताओं में जा मिलता है और स्वर्गलोक में सब कहीं बिना रोक टोक के विचरता

हुआ वहाँ के अधिवासियों की संगति करता है, और या देवताओं की आठ श्रेणियों में से किसी एक के सदृश हो जाता है। परन्तु जो अपने पापों और अपराधों के कारण अपमान और अधःपतन का अधिकारी है वह पशु या वृक्ष बन जाता है। और जब तक वह ऐसे फल का भागी नहीं बनता जो उसे दण्ड से बचा सके, अथवा जब तक वह शरीर रूपी रथ को परे फेंक कर अपने आप का होम नहीं कर देता तथा मुक्ति लाभ नहीं कर लेता तब तक वह बराबर इस चक्र में घूमता रहता है।

पुनर्जन्म पर मुसलमान लेखकों की सम्मति।

पुनर्जन्म की ओर प्रवृत्ति रखने वाला एक ब्रह्मज्ञानी कहता है कि 'पुनर्जन्म की चार अवस्थाएँ हैं (१) संक्रमण (स्थल परिवर्तन) अर्थात् उत्पादन-क्रिया जो कि मनुष्य जाति तक ही परिमित है, क्योंकि इस से जीवन एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संक्रमित हो जाता है। इसके विपरीत है—

(२) रूपान्तर होना। इस का विशेषतः मनुष्यों से सम्बन्ध है, क्योंकि उनका रूपान्तर करके उन्हें वानर, वाराह, और हाथी बना दिया जाता है।

(३) स्थावर योनि, जैसी कि वृक्षों की अवस्था है। यह संक्रमण से बुरी है क्योंकि यह जीवन की स्थावर अवस्था है, सर्व कालों में एक सी बनी रहती है और इतनी ही स्थायी है जितने कि पर्वत।

(४.) यह (३) के विपरीत है इस का उपयोग उखाड़े जाने वाले मरण। वृक्षों, और बलिदान के लिए वध किये जाने वाले पशुओं पर होता है, क्योंकि वे अपने पीछे सन्तान छोड़े बिना ही विलुप्त हो जाते हैं।"

सजिस्तान का अबू याक़ूब अपनी "रहस्यप्रकाश" नामक पुस्तक में लिखता है कि जातियाँ स्थिर रहती हैं। देहान्तर-गमन केवल एक

जाति के अपने अन्दर ही होता है—एक जाति का उल्लङ्घन करके दूसरी जाति में कभी नहीं होता।

प्राचीन यूनानियों का भी यही मत था, क्योंकि वैयाकरण जोहनीज़ अफलातू का मत बताता हुआ कहता है कि सज्ञान आत्माओं को पशुओं के शरीर मिलेंगे। इस विषय में उसने पाइथेगोरस की कथाओं का अनुकरण किया है।

वैयाकरण जोहनीज़ और अफलातू के प्रमाण।

सुक़रात फाइडो नामक पुस्तक में कहता है कि शरीर पार्थिव, भारी, और अति गुरु है। आत्मा जो इससे प्रेम करती है इधर उधर घूमती रहती है, और उस स्थान की ओर आकृष्ट हो जाती है जिसकी ओर कि निराकार और हेडीज़ के भय से इस की आँखें लगी रहती हैं। यह हेडीज़ आत्माओं के इकट्ठे होने की जगह है। ये आत्माएँ मैली होकर क़बरों और श्मशान-भूमियों में इकट्ठी रहती हैं और कई बार छायाकार देखी जाती हैं। इस प्रकार का ऐन्द्रजालिक आलोक केवल उन्हीं आत्माओं के साथ पाया जाता है जिनका कि पूर्णतः वियोग नहीं हुआ, जिन में अभी तक भी उस वस्तु का अंश शेष है जिसकी ओर कि दृष्टि लगी होती है।

वह पुनः कहता है—"ऐसा प्रतीत होता है कि केवल अधर्म्मियों की आत्माएँ ही इन वस्तुओं में घूमती हैं ताकि उन के पूर्व जन्म के पापों का प्रायश्चित्त हो जाय। इस प्रकार जब तक उन्हें दुबारा शरीर न मिल जाय वे वहाँ रहती हैं। शरीर पाने की आकांक्षा, जिस के कारण कि उन्हें देह मिलती है, पीछे से ही उनके साथ आती है। उन्हें अपने पूर्व आचार के अनुरूप शरीर मिलते हैं। जैसे, जो लोग केवल खान पान का ही ध्यान रखते हैं वे नाना प्रकार के गधों और बनैले जन्तुओं की योनियों में जाते हैं, और जो अन्याय और अत्याचार से प्रसन्न होते हैं वे विविध प्रकार के भेड़ियों, गिद्धों, और बाज़ों की योनि पाते हैं।"

मृत्यु के पश्चात् आत्माओं के इकट्ठा होने के स्थानों के विषय में वह फिर कहता है—"यदि मैंने यह न सोच लिया होता कि मैं पहले बुद्धिमान्, शक्तिशाली, पुण्यमय देवताओं के पास, फिर उनके बाद मनुष्यों, तथा प्रेतों के पास—जो कि यहाँ वालों की अपेक्षा अच्छे हैं—जा रहा हूँ, तो मृत्यु के लिए शोकातुर न होना मेरी भारी भूल होती।"

पृ ३१

आगे चल कर अफलातू दण्ड और फल के दो स्थानों के विषय में कहता है:—

"जब प्राणी मरता है तो नरक के पहरेदारों में से एक, जिसका नाम डैमुन है, उसे न्याय-सभा में ले जाता है। तब एक और दूत, जिस का विशेष काम ही यह है, उसे बाक़ी सब के साथ जो वहाँ लाकर इकट्ठे किये गये हों, हेडीज़ में ले जाता है। वहाँ वह प्राणी, जितने वर्ष तक आवश्यक हो, रहता है। हेडीज़ के वर्ष बड़े लम्बे लम्बे होते हैं। टेलीफ़ोस कहता है कि हेडीज़ का मार्ग समतल है। पर मैं कहता हूँ कि यदि मार्ग समतल या एक ही होता तो फिर पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता न होती। जो आत्मा शरीर के लिए लालायित है या जिसके कर्म्म बुरे तथा अन्याययुक्त हैं, जो उन आत्माओं के सदृश है जिन्होंने कि हत्या की है, वह वहाँ से उड़ कर प्रत्येक प्रकार की योनियों में प्रवेश करती हुई एक विशेष काल तक वहाँ रहती है। इसलिए अपने अनुरूप स्थान में आना उसके लिए आवश्यक हो जाता है। परन्तु पुण्यात्मा के साथी और प्रदर्शक देवता होते हैं और वह अपने अनुरूप स्थानों में निवास करती है"।

वह फिर कहता है—"मृतों में से जिनका जीवन मध्यम श्रेणी का होता है वे अकेरन पर से एक नौका में बैठ कर जाते हैं। यह नौका विशेष रूप से उनके लिए बनी होती है। दण्ड पा चुकने और

पापों से मुक्त हो जाने पर वे स्नान करते हैं और जितने जितने और जैसे जैसे पुण्यकर्म्म उन्होंने किये हैं उनके अनुसार आदर पाते हैं। पर जिन्होंने महापाप किये हैं—यथा देवताओं के चढ़ावे की चोरी, बड़े बड़े डाके डालना, निरपराध-हत्या, बार बार जान बूझ कर मर्यादा का भंग करना इत्यादि—वे सब टारटारस में फेंके जाते हैं जहां से कि वे कभी भी भाग नहीं सकते।"

वह कहता है—"जिन लोगों ने अपने जीवन काल में ही अपने पापों पर पश्चात्ताप किया है, या जिन के अपराध कुछ हलके हैं—जैसे कि माता-पिता के विरुद्ध कोई अमर्यादित काम करना या भूल से हत्या करना—वे टारटारस में फेंके जाते हैं, और वहां वे पूरे एक वर्ष दण्ड भोगते हैं। तब लहर उन्हें उठा कर किसी ऐसे स्थान पर फेंक देती है जहां से कि वे अपने विरोधियों से आर्त स्वर के साथ प्रार्थना करते हैं कि 'अब अधिक प्रतिहिंसा न कीजिए और हमें दण्ड की यन्त्रणाओं से बचाइए'। अब यदि वे इनकी प्रार्थना को स्वीकार करलें तो ये बच गये, नहीं तो पुनः उसी टारटारस में फेंक दिये जाते हैं। जब तक इनके विरोधी क्षमा दान न दें इन्हें बराबर दण्ड मिलता ही रहता है। जिनका जीवन पुण्यमय होता है वे इन स्थानों से मुक्त होकर पृथ्वी पर आते हैं। उन्हें ऐसा अनुभव होता है मानों कारागार से छूट कर निकले हैं और अब पवित्र धरती पर निवास करेंगे।"

टारटारस एक बहुत गहरी कन्दरा है जिस में कि नदियां बहती हैं। भयानक से भयानक जो वस्तुएँ लोगों को मालूम हैं और जल-प्लावन और बाढ़ें जो भी यूनान आदि पाश्चात्य देशों में आती हैं सब नरक के दण्डों में समझी जाती हैं। परन्तु अफलातू एक ऐसे स्थान के विषय में कहता है जहां कि ज्वाला भड़क रही है। ऐसा जान पड़ता

है कि उसका अभिप्राय समुद्र या समुद्र के किसी भाग से है जहाँ कि एक जलावर्त (दुर्दुर, टारटरस पर श्लेष) है। निस्सन्देह यह वृत्तान्त तत्कालीन लोगों के विश्वासों को दर्शाता है।

सातवाँ परिच्छेद ।

—>←—
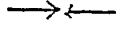
संसार से मुक्त होने की अवस्था और मोक्ष मार्ग ।

प्रथम भाग; मोक्ष ।
पृष्ठ ६४

यदि आत्मा संसार के साथ सम्बद्ध है और इस बन्धन का कोई विशेष कारण है तो जब तक इसके विपरीत कारण न हों आत्मा का बन्धमोचन नहीं हो सकता । हिन्दुओं के विचारानुसार इस बन्धन का कारण, जैसा कि हम कह आये हैं, अविद्या है, इसलिए ज्ञान के विना मुक्ति नहीं हो सकती । ज्ञान का अर्थ है सब पदार्थों के सामान्य और विशेष लक्षणों का मालूम हो जाना और सब प्रकार के अनुमान और सन्देह का दूर हो जाना । लक्षणों द्वारा पदार्थों में भेद करने से आत्मा अपने आप को पहचान लेती है और साथ ही उसको यह मालूम हो जाता है कि मैं अमर हूँ, जो परिवर्तन होता है वह प्रकृति में होता है और वही नाना रूप धारण करती हुई विनाश को प्राप्त होती है । फिर यह प्रकृति का साथ छोड़ देती है और इसे मालूम हो जाता है कि जिसे मैं अच्छी और आनन्द-दायक वस्तु समझती थी वह वस्तुतः बुरी और दुःखदायक है । इस प्रकार इसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है और इसका जन्म लेना बन्द हो जाता है । इससे कर्म्म नष्ट हो जाते हैं और प्रकृति तथा आत्मा दोनों एक दूसरे से अलग होकर स्वतंत्र हो जाते हैं ।

पतञ्जलि की पुस्तक का रचयिता कहता है:—"जिन पदार्थों पर मनुष्य आसक्त है, यदि वह परमेश्वर के एकत्व पर चित्त को एकाग्र करे तो उनके अतिरिक्त कुछ और भी उसे सूझने लगता है। जो मनुष्य परमेश्वर की अभिलाषा रखता है वह सम्पूर्ण सृष्टि के लिए मङ्गल-कामना करता है, परन्तु जो केवल अपने आप में ही मग्न रहता है वह अपने हितार्थ श्वास तक नहीं लेता। जब मनुष्य इस अवस्था को प्राप्त हो जाता है तो उसका आध्यात्मिक बल शारीरिक बल को मात कर देता है और उसे आठ प्रकार की भिन्न भिन्न बातें करने की शक्ति (योग-सिद्धि) प्राप्त हो जाती है जिससे उसे बन्धमोचन का अनुभव होता है; क्योंकि मनुष्य केवल उसी का परित्याग कर सकता है जिसके करने की शक्ति उसमें है, न कि जो उसके सामर्थ्य से ही बाहर है। वे आठ बातें ये हैं:—

पातञ्जलि के मतानुसार मोक्ष।

१. अपने शरीर को इतना सूक्ष्म बना लेना कि नेत्र उसे देख न सकें।

२. शरीर को इतना हलका बना लेना कि कीचड़, रेत, और रेत पर चलना एक सा मालूम हो।

३. शरीर को इतना बड़ा बना लेना कि एक भयानक और अद्भुत रूप दीख पड़े।

४. प्रत्येक प्रकार की इच्छा को पूर्ण करने की शक्ति।

५. चाहे जो कुछ जान लेने की शक्ति।

६. चाहे जिस धार्म्मिक सम्प्रदाय का नेता बन जाने की शक्ति।

७. जिन लोगों पर वह शासन करता है वे आज्ञाकारी और विनीत बने रहें।

८. मनुष्य और किसी सुदूरवर्ती वस्तु के बीच की दूरी जाती रहे।"

सूफ़ियों के अनुसार ज्ञानी मनुष्य और मनुष्य का ज्ञान पद को प्राप्त होना दोनों में कोई विशेष भेद नहीं, क्योंकि उनका विश्वास है कि मनुष्य की दो आत्माएँ होती हैं। एक तो नित्य आत्मा जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन और हेर फेर नहीं होता, इसी के द्वारा यह गुप्त बातें, अर्थात् ज्ञानातीत जगत्, को जानता है और चमत्कार दिखलाता है। दूसरी मानुषी-आत्मा जो जन्म लेती है और जिसमें परिवर्तन होते रहते हैं। इन और ऐसे ही अन्य विचारों से ईसाई सिद्धान्तों का बहुत कम भेद है।

सूफ़ी विचारों की समानता।

हिन्दू कहते हैं कि 'यदि मनुष्य में इन बातों को करने की शक्ति हो तो वह इन्हें छोड़ सकता है, और अनेक अवस्थाओं में से होता हुआ क्रमशः लक्ष्य तक पहुँच जाता है:—

पतञ्जलि के मतानुसार ज्ञानी की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ।

१. पदार्थों के नामों, गुणों, और भेदों का ज्ञान। इसमें अभी उनके लक्षणों का ज्ञान नहीं होता।

२. पदार्थों का ऐसा ज्ञान जो कि उन लक्षणों तक जाता है जिनसे कि विशेष विशेष को सार्वत्रिकों की श्रेणी में रक्खा जाता है, परन्तु जिनके विषय में मनुष्य को अभी विवेक करना सीखना आवश्यक है।

"३. यह भेद (विवेक) मिट जाता है और मनुष्य सब पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से झट जान लेता है, परन्तु फिर भी समय लगता है।

"४. इस प्रकार का ज्ञान *काल* से ऊपर है। जिसको यह ज्ञान

प्राप्त हो जाय वह सब प्रकार के नामों और संज्ञाओं का, जो कि मनुष्य की अपूर्णता का साधन मात्र हैं, परित्याग कर सकता है। इस अवस्था में ज्ञान और ज्ञेय ज्ञानी के साथ इस प्रकार संयुक्त हो जाते हैं कि उन सब की एक ही सत्ता बन जाती है।"

आत्मा को मुक्ति दिलाने वाले ज्ञान के विषय में पतञ्जलि का मत बताया जा चुका। आत्मा का बन्धनों से छूटना संस्कृत में मोक्ष अर्थात् अन्त कहलाता है। ग्रहण में भी जो लोक तमसावृत होता है और जिस के कारण ग्रहण लगता है उन दोनों लोकों के अन्तिम मिलाप या वियोग को, क्या चन्द्र-ग्रहण में और क्या सूर्य्य-ग्रहण में, इसी परिभाषा से पुकारते हैं, क्योंकि यह ग्रहण का अन्त या वह समय होता है जब कि दोनों ज्योतियों का, जो कि पहले एक दूसरे से मिली हुई थीं, परस्पर वियोग होता है।

पृष्ठ ३५

हिन्दुओं का मत है कि इन्द्रियाँ ज्ञान की प्राप्ति के लिए बनी हैं। उनसे जो आनन्द प्राप्त होता है वह इसलिए है कि लोगों को अनुसंधान और जिज्ञासा के लिए उत्तेजना मिले। यथा खानपान में जो आनन्द और स्वाद आता है उसका कारण यह है कि आहार और पोषण के द्वारा मनुष्य जीवित रह सके। ऐसे ही भोग विलास का आनन्द भी इसीलिए है कि नई सन्तान के उत्पन्न होते रहने से जातियों की रक्षा हो। यदि इन दो व्यापारों में विशेष आनन्द न होता तो मनुष्य और पशु इन दो उद्देश्यों के लिए कभी ये कर्म्म न करते।

ज्ञान के विषय में गीता का मत।

गीता में लिखा है—"मनुष्य का जन्म ज्ञान-प्राप्ति के लिए हुआ है। ज्ञान सदा एक ही रहता है, इसलिए मनुष्य को वही इन्द्रियाँ मिलती हैं। यदि मनुष्य कर्म्म करने के लिए उत्पन्न हुआ होता तो उसकी इन्द्रियाँ भी भिन्न भिन्न होतीं, क्योंकि तीन आदि गुणों की भिन्नता के कारण कर्म्म भिन्न भिन्न हैं। परन्तु मनुष्य-

प्रकृति ज्ञान की सारतः विरोधिनी होने के कारण कर्म्म की ओर झुकी हुई है। इस के अतिरिक्त वह कर्म्म के साथ उस सुख का संयोग करना चाहती है जोकि वास्तव में दुःख है। परन्तु ज्ञान इस मनुष्य-प्रकृति को एक शत्रु की नाईं भूतलशायी छोड़ कर, जैसे सूर्य्य पर से ग्रहण अथवा मेघ दूर हो जाते हैं वैसे ही आत्मा पर से सारे अन्धकार को दूर कर देता है।"

प्लेटो की फाइडो से प्रमाण।

उपरोक्त वाक्य सुकरात की सम्मति से मिलता है। उस की राय है कि आत्मा शरीर से संयुक्त होने और किसी वस्तु-विशेष के विषय में अन्वेषण की अभिलाषा रखने के कारण शरीर के फन्दे में फँस जाती है। परन्तु चिन्ता से इस की कुछेक आकांक्षाएं इसे स्पष्ट हो जाती हैं। इस लिए यह चिन्तन उसी समय होता है जबकि आत्मा देखने, सुनने, अथवा दुःख-सुख से क्षुब्ध न हो, जबकि यह अपने आप अकेली हो और शारीरिक संसर्ग को यथासम्भव छोड़ बैठी हो। विशेषतया, तत्त्वदर्शी की आत्मा शरीर से ग्लानि करती है और उस से अलग होना चाहती है।"

"यदि हम जीवन में शरीर से कुछ काम न लें, और सिवाय अनिवार्य्य दशाओं के न इस के साथ कोई बात साझी रक्खें, यदि इस का स्वभावरूपी विष हम में प्रवेश न करे वल्कि हम उस से सर्वथा बचे रहें, तो हम शरीर की अविद्या से छुट्टी पाकर ज्ञान के निकट आजायँगे और अपने आप को जान कर, जहाँ तक परमेश्वर की आज्ञा होगी वहाँ तक पवित्र हो जायँगे। इसी बात को सत्य स्वीकार करना उचित और यथार्थ है।"

अब हम फिर लौट कर गीता नामक पुस्तक से उद्धरण देते हैं।

"एवं दूसरी ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान-प्राप्ति में सहायता देती हैं। ज्ञानी

मनुष्य उन्हें ज्ञान-क्षेत्र में आगे पीछे फेर कर बड़ा आनन्द लाभ करता है, अतः वे उसे गुप्तचर का काम देती हैं। इन्द्रियों द्वारा लाभ किया हुआ ज्ञान समयानुसार भिन्न भिन्न होता है। जो इन्द्रियां हृदय के अधीन हैं वे प्रत्यक्ष विषय का ही अनुभव करती हैं। हृदय वर्तमान विषय का चिन्तन करता और भूत को स्मरण रखता है। प्रकृति वर्तमान को थामे रहती, भूत में इस पर अपना प्रभुत्व जतलाती, और भविष्य में उसके साथ मल्ल-युद्ध करने के लिए तैयार रहती है। तर्क वस्तु के वास्तविक गुणों को समझता है। इस पर काल या तिथि का कोई प्रभाव नहीं, क्योंकि भूत और भविष्य दोनों ही इसके लिए समान हैं। इसके निकटतम सहायक प्रकृति तथा ध्यान और दूरतम सहायक पांच इन्द्रियां हैं। जब इन्द्रियां ज्ञान के किसी विशेष विषय को ध्यान के सम्मुख लाती हैं तो ध्यान उसे इन्द्रियों के व्यापार की अशुद्धियों से साफ़ करके तर्क के सिपुर्द करदेता है। तब जो विषय पहले विशेष था तर्क उसे सार्वदेशिक बना कर आत्मा के पास भेजदेता है। इस प्रकार आत्मा को उस का ज्ञान होता है।"

गीता और दूसरे पुस्तकों के अनुसार ज्ञान की रीति।

हिन्दू मानते हैं कि निम्नलिखित तीन उपायों में से किसी एक के द्वारा मनुष्य ज्ञानवान् बन सकता है:—

१—सहसा दैवज्ञान पाने से। यह दैवज्ञान किसी विशेष कालक्रम से प्राप्त नहीं होता बल्कि जन्म के समय माता की गोद में ही मिल जाता है, जैसे कि कपिल मुनि को मिला था; क्योंकि वे जन्म से ही ज्ञानी और बुद्धिमान उत्पन्न हुए थे।

२—विशेष काल पश्चात् दैव-ज्ञान की प्राप्ति से। जैसा कि ब्रह्मा के पुत्रों को विशेष आयु को पहुँचने पर ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ था।

३—विद्याभ्यास से, विशेष अवधि के पीछे जैसे कि सब मनुष्यों के साथ होता है जोकि मन के परिपक्व हो जाने पर विद्या सीखते हैं।

मोक्ष के मार्ग में क्रोध और अविद्या मुख्य बाधाएं हैं।

पाप से बचे रहने से ही ज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। पाप की शाखाएं तो अनेक हैं पर हम उन्हें लोभ, क्रोध, और अविद्या में ही विभक्त पृष्ठ ११ करते हैं। यदि मूल काट दिया जाय तो शाखाएं मुरझा जाती हैं। यहां हमें पहले लोभ और क्रोध रूपी दो शक्तियों के नियम पर विचार करना है जोकि मनुष्य के सब से बड़े और अत्यन्त हानिकारक शत्रु हैं। खाने में जो प्रसन्नता और बदला लेने में जो आनन्द प्राप्त होता है उसी से ये मनुष्य को धोखा देते हैं। वास्तव में वे उसे दुःख और पाप की ओर अधिक ले जाते हैं। वे मनुष्य को बनैले और गृह-पशुओं के समान—नहीं नहीं राक्षस और पिशाचों के समान बना देते हैं।

आगे हमें यह विचार करना है कि मनुष्य को उचित है कि मन की विवेक-शक्ति को, जिस के प्रताप से वह देवताओं के सदृश बन जाता है, लोभ और क्रोध से अच्छा समझे और सांसारिक कर्म्मों से विमुख हो जाय। परन्तु इन कर्म्मों को वह छोड़ नहीं सकता जब तक कि उनके कारणों अर्थात् अपनी कामुकता और उच्चाकांक्षा को दूर न करले। इस से तीन गुणों में से दूसरा गुण कट कर अलग हो जाता है। अपितु कर्म्म से दो भिन्न उपायों द्वारा बच सकते हैं:—

१—तीसरे गुण के अनुसार आलस्य, दीर्घसूत्रता, और अविद्या के द्वारा। यह उपाय अच्छा नहीं क्योंकि इस का परिणाम निन्दनीय है।

२—विवेचनापूर्वक उस मार्ग को चुनने से जो सराहनीय परिणाम की ओर ले जाता है; और उत्तम को उत्तमतर से श्रेष्ठ समझने से।

कर्म्म से पूर्णतया बच सकने का उपाय यह है कि मनुष्य उस वस्तु का ही परित्याग कर दे जिसमें कि वह लीन रहता है, और अपने आपको उससे छिपा ले। इससे वह अपनी इन्द्रियों को बाह्य पदार्थों से ऐसा रोके रखने में समर्थ होगा कि उसे यह भी ज्ञान न रहेगा कि वहाँ उसके अतिरिक्त और भी कोई है, और वह सब प्रकार की गतियों यहाँ तक कि श्वास को भी रोक सकेगा। यह स्पष्ट है कि लोभी मनुष्य अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परिश्रम करता है; जो परिश्रम करता है वह थक जाता है, और थका हुआ मनुष्य हाँपने लगता है, अतः हाँपना लोभ का परिणाम है। यदि यह लोलुपता दूर करदी जाय तो श्वास ऐसे चलने लगता है जैसे समुद्र-तल पर रहने वाले किसी जन्तु का—जिसे कि श्वास की आवश्यकता ही नहीं। इस समय हृदय शान्तिपूर्वक एक वस्तु—अर्थात् मोक्ष और परम एकता पर पहुँचने के लिए खोज—पर ठहर जाता है।

गीता कहती है—"वह मनुष्य मोक्ष को कैसे पा सकता है जिसका मन इधर उधर भटकता है, जो परमात्मा में अपने मन को लीन नहीं करता, और जो सब बातों को छोड़ कर अपने कर्म्मों को केवल परमात्मा के ही अर्पण नहीं कर देता? यदि मनुष्य इधर उधर की सब चिन्ताओं को त्याग कर केवल एक (ब्रह्म) का ही ध्यान करे तो उसके हृदय का प्रकाश उस प्रदीप की ज्योति की नाईं स्थिर हो जाता है जो कि निर्मल तेल से भरा हुआ एक ऐसे कोने में पड़ा है जहाँ कि पवन के झोंके उसे डगमगा नहीं सकते; और वह ऐसा मग्न हो जाता है कि सर्दी गरमी आदि दुःखदायक चीज़ों का उसे अनुभव ही नहीं होता, क्योंकि वह समझ जाता है कि एक—अर्थात् सत्य के अतिरिक्त शेष सब मिथ्याभास है"।

उसी पुस्तक में लिखा है—"प्रकृत संसार पर सुख और दुःख

का कुछ प्रभाव नहीं—जैसे निरन्तर वहने वाली नदी का जल सागर के जल को न्यूनाधिक नहीं करता । जिसने कामना और क्रोध को दमन करके जड़ नहीं बना दिया उसके अतिरिक्त और कौन इस घाटी पर चढ़ सकता है ?"

उपरोक्त वर्णन के लिए यह आवश्यक है कि चिन्तन निरन्तर हो। किसी प्रकार से भी यह अङ्कों की गिनती में न हो क्योंकि संख्या सदैव समयों की पुनरावृत्ति को प्रकट करती है, और समयों की पुनरुक्ति का मतलब यह है कि दो क्रमागत समयों के बीच चिन्तन की डोरी टूट गई है। इससे निरन्तरता में बाधा पड़ती है और चिन्तन अपने विषय के साथ युक्त होने से रुक जाता है। पर यह अभीष्ट नहीं, वल्कि इसके विपरीत निरन्तर चिन्तन ही उद्देश्य है।

इस चरमोद्देश्य की प्राप्ति या तो एक ही योनि अर्थात् आवागमन की एक ही दशा में हो जाती है या अनेक जन्मों में। इस प्रकार मनुष्य सदैव सात्विक आचार का अभ्यास करते करते मन को उसका अभ्यासी बना लेता है, और यह सात्विक आचार उसकी प्रकृति बन कर एक अनिवार्य्य गुण हो जाता है।

सात्विक आचार वह है जिसका उल्लेख कि धर्म्मशास्त्र में है।

हिन्दू धर्म्म की नौ धाराएं ।

इसके मुख्य धर्म्म, जिनसे वे लोग अन्य कई गौण धर्म्म निकालते हैं, संक्षेपतः निम्न-लिखित नौ नियमों में कहे जा सकते हैं :—

१ मनुष्य किसी का वध न करे।

२ झूठ न बोले।

३ चोरी न करे।

४ व्यभिचार न करे।

५ धन के ढेर न इकट्ठे करे।

६ सदैव आत्मा तथा शरीर को पवित्र और शुद्ध रक्खे।

७ नियत लंघनों का पालन करे, उन्हें कभी भंग न होने दे, और बहुत थोड़े वस्त्र पहरे।

८ परमात्मा की स्तुति और धन्यवाद करके सदैव उसका पूजन करता रहे।

९ विना उच्चारण किये ही सृष्टि के शब्द 'ॐ' को मन में रक्खे।

पशुओं का वध न करने का जो (सं० १) आदेश है वह सार्वदेशिक अहिंसा-धर्म्म का ही एक विशेष रूप है। दूसरों की सम्पत्ति का चुराना (सं० ३) और झूठ बोलना (सं० २) भी, यदि इन कर्म्मों की नीचता और मालिन्य का न भी विचार किया जाय, इसी के अन्तर्गत हैं।

धन के ढेर इकट्ठे करने का निषेध इसलिए है कि मनुष्य श्रम और आयास को छोड़ दे। जो मनुष्य भगवान् से दान चाहता है उसे विश्वास होता है कि उसे अवश्य मिलेगा; और दैहिक जीवन के नीच दास्य से आरम्भ करके, चिन्तन की सम्भ्रान्त स्वतन्त्रता के द्वारा, हम नित्यानन्द को प्राप्त कर सकते हैं।

पवित्र रहने (सं० ६) का अभ्यास करने से यह अभिप्राय है कि मनुष्य शरीर के मैल को जानता है इसलिए वह उससे घृणा और आत्मा की शुद्धता से प्रेम करने लगता है। थोड़े कपड़े पहन कर अपने आपको कष्ट देने (सं० ७) का आशय यह है कि मनुष्य अपने शरीर को घटाये, इसकी अस्थिर आकांक्षाओं का दमन करे, और इसकी इन्द्रियों को तीक्ष्ण करे। पाइथेगोरस ने एक वार एक मनुष्य से, जो अपने शरीर को खूब मोटा ताज़ा बनाये रखता था और उसकी प्रत्येक आकांक्षा को पूर्ण करता था, कहा था—"तू अपने

बन्दीगृह को बनाने, और अपनी बेड़ियों को यथासम्भव दृढ़ करने में तनिक भी आलस्य नहीं करता" ।

परमात्मा और दिव्य आत्माओं का निरन्तर ध्यान करते रहने का यह आशय है कि उनके साथ मेल-मिलाप और सम्पर्क हो जावे । सांख्य कहता है कि "जिस वस्तु का मनुष्य अनुगामी होता है वह उस से परे नहीं जा सकता, क्योंकि उसका लक्ष्य ही वही है । इस प्रकार उसके विचार जकड़ जाने से वह परमात्मा का ध्यान करने से रुक जाता है ।" गीता कहती है—"जिस बात का मनुष्य निरन्तर ध्यान करता है-और जो बात सदैव उसके मन में रहती है वह उस पर अङ्कित हो जाती है, यहां तक कि वह बिना सोचे समझे ही उसका अनुगामी हो जाता है । जैसे उजड़ते समय वे वस्तुएँ याद आया करती हैं जिनसे मनुष्य का प्रेम होता है वैसे ही शरीर-परित्याग के पश्चात् आत्मा उन वस्तु से जा मिलती है जिससे हमारा प्रेम था, और उसी में परिवर्तित हो जाती है ।"

गीता से उदाहरण ।

पाठक, कहीं यह न समझ लीजिएगा कि आत्मा का किसी मरने और जन्म लेने वाली देह में चले जाना ही पूर्ण मोक्ष है, क्योंकि वही गीता कहती है—"जो कोई मृत्यु समय यह जानता है कि परमात्मा ही सब कुछ है, और उसीसे सब कुछ निकलता है, वह मुक्त हो जाता है, चाहे उसकी पदवी ऋषियों से कम ही क्यों न हो ।"

वही पुस्तक कहती है—"संसार के मिथ्याचारों से सब सम्बन्ध तोड़ कर सब कर्म्म और यज्ञ बिना फल की इच्छा के शुद्ध भाव से करते हुए, मनुष्यों से अलग रह कर इस संसार के बन्धनों से मुक्ति लाभ करो ।" इसका प्रकृत तात्पर्य्य यह है कि तुम एक व्यक्ति को दूसरे से केवल इसी लिए अच्छा न समझो कि पहला तुम्हारा मित्र

और दूसरा तुम्हारा वैरी है; और जब दूसरे लोग जाग रहे हों उस समय सोने और जब दूसरे सो रहे हों उस समय जागने में कभी न चूको, क्योंकि यह भी एक प्रकार का उनसे अलग ही रहना है—यद्यपि बाहर से तुम उनके बीच ही हो। इसके अतिरिक्त, मुक्ति के लिए आत्मा को दूसरी आत्मा से बचाओ, क्योंकि जिस आत्मा में लम्पटता आ गई है वह वैरी है परन्तु पवित्र आत्मा से बढ़ कर कोई अच्छा मित्र नहीं।"

यूनानियों और सूफ़ियों के सदृश विचार।

सुकरात ने सिरहाने खड़ी मृत्यु का भय न करके अपने स्वामी (परमात्मा) के निकट जाने की आशा से ही हर्षित होकर कहा था कि 'मेरी पदवी हंस की पदवी से कम न समझी जाय।' हंस के विषय में लोग कहते हैं कि यह अपोलो अर्थात् सूर्य्य का पक्षी है, इस लिए यह गुप्त बातों को जानता है। अर्थात् जब वह देखता है कि मैं शीघ्र ही मरने वाला हूँ तो अपने स्वामी के समीप पहुँचने की आशा से ही हर्षित होकर बढ़ बढ़ कर रागिनियाँ अलापता है। "अपने इष्टदेव के पास पहुँचने से जो हर्ष मुझे प्राप्त होगा वह कम से कम इस पक्षी के हर्ष से तो कम न होना चाहिए।"

ऐसे ही कारणों से सूफ़ी लोग प्रेम का लक्षण सब वस्तुओं को छोड़ कर परमात्मा में लीन हो जाना बतलाते हैं।

पतंजलि मुनि की पुस्तक में लिखा है—"हम मोक्ष मार्ग को तीन भागों में विभक्त करते हैं:—

द्वितीय भाग; मोक्ष का क्रियात्मक मार्ग—गीता, विष्णु-धर्म, और पतञ्जलि के मतानुसार।

१. "क्रियात्मक मार्ग (क्रिया योग)—इस साधन के द्वारा इन्द्रियों को शनैः शनैः वश में करके बाह्य जगत से उनका सम्बन्ध तोड़ कर अन्तर्जगत् पर ध्यान जमाना

पड़ता है, यहाँ तक कि वे सर्वथा ही ब्रह्म में लीन रहें। साधारणतया यह उन लोगों का मार्ग है जो अपनी आजीविका के अति-रिक्त अन्य पदार्थ की आकांक्षा नहीं करते।" विष्णु धर्म में पृष्ठ १८ लिखा है—"भृगु वंश के राजा परीक्ष ने उपस्थित ऋषि-मण्डली के प्रधान शतानीक ऋषि से परमात्म-विषयक किसी एक कल्पना की व्याख्या के लिए प्रार्थना की। ऋषि ने उत्तर में–जो कुछ उन्होंने शौनक से, शौनक ने उशासन से, और उशासन ने ब्रह्मा से सुना था–कह सुनाया। उन्होंने कहा—"परमात्मा अनादि और अनन्त है। वह अजन्मा है और उससे कभी कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न नहीं हुई जिसके विषय में यह कहना कि यह परमात्मा है या यह परमात्मा नहीं है दोनों बातें एकसी असम्भव नहीं। जब तक मैं उसका निरन्तर ध्यान न करूँ और सामान्य संसार से विमुख होकर केवल उसी में ही लीन न हो जाऊँ, मैं विशुद्ध कल्याण को (जो कि उसकी उदार-शीलता का प्रवाह है) और पूर्ण पाप को (जो कि उसके क्रोध का परिणाम है) कैसे सोच सकता हूँ?

"उनके सम्मुख शंका उपस्थित की कि मनुष्य निर्बल है और उसका जीवन तुच्छ है। जीवन की आवश्यकताओं से मुख मोड़ लेना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। इसी से वह मोक्ष-मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकता। यदि हम मनुष्यों के प्रथम युग में होते, जबकि लोग हज़ार हज़ार वर्ष पर्यन्त जीते थे, और जबकि पापाभाव से संसार कल्याणमय था तो हमें आशा हो सकती थी कि इस मार्ग के लिए जो जो आवश्यकताएँ हैं उन्हें हम पूरा कर सकेंगे। परन्तु हम तो अन्तिम युग में रहते हैं इसलिए आपकी सम्मति में वह कौन सी बात है जो सागर के जलप्लावनों से मनुष्य की रक्षा कर सकती है और उसे डूबने से बचा सकती है"?

तब ब्रह्मा जी बोले—"मनुष्य को आहार, वस्त्र, और रक्षा की आवश्यकता है, इसलिए उन से इसे कोई हानि नहीं। परन्तु आनन्द केवल तभी प्राप्त होता है जब इनके सिवाय अन्य सब बातों अर्थात् फालतू और थका देने वाले कर्म्मों का परित्याग कर दिया जाय। परमात्मा—और केवल परमात्मा—का ही पूजन और अर्चन करो। पूजा-भवन में पुष्प और सुगन्धि-प्रभृति वस्तुओं की भेट लेकर उसके समीप जाओ। उसकी स्तुति करो और अपने मन को उसके साथ ऐसा संयुक्त करो कि फिर कभी अलग न हो। ब्राह्मणों तथा अन्यों को दान दो, और मांस-भक्षण-त्याग जैसे विशेष, तथा निराहार रहने जैसे सामान्य व्रत करो। उसके सामने प्रतिज्ञा करो कि हम पशुओं को अपने से भिन्न न समझेंगे ताकि उन्हें मारना कहीं तुम अपना अधिकार ही न समझने लग जाओ। जानो कि वही सब कुछ है। इसलिए जो कुछ भी तुम करो सब उसी के निमित्त करो। यदि संसार के मिथ्या-डम्बरों में आनन्द आने लगे तो अपने संकल्पों में उसे न भूल जाओ। यदि तुम्हारा लक्ष्य परमात्मा का भय और उसका पूजन है तो तुम्हें इसी से मुक्ति प्राप्त हो जायगी, किसी अन्य वस्तु से नहीं।"

गीता कहती है:—"जो मनुष्य अपनी लालसा को दमन कर लेता है वह अनिवार्य्य आवश्यकता से बढ़ कर कोई काम नहीं करता; और जो उतनी ही वस्तु के साथ सन्तुष्ट है जितनी कि उसे जीवित रखने के लिए पर्य्याप्त है वह न लज्जित होता है और न घृणित ही समझा जाता है।"

वही पुस्तक कहती है:—"मनुष्य-प्रकृति जिन वस्तुओं को चाहती है यदि मनुष्य उन कामनाओं से मुक्त नहीं हुआ, यदि उसे क्लान्ति और क्षुधा की अग्नि को शान्त करने के लिए आहार की, थकाने

वाली दौड़-धूप के हानिकारक प्रभावों का सामना करने के लिए निद्रा की, और विश्राम के लिए पलङ्ग की ज़रूरत है, तो क्यों न पलङ्ग साफ़ सुथरा, भूमि से एक समान ऊँचा, और लेटने के लिए यथेष्ट चौड़ा हो? उसे ऐसे स्थान में रहना चाहिए जहाँ का जल-वायु मन्दोष्ण हो अर्थात् जहाँ दारुण शीत और भीषण ताप पीड़ित न करें और जहाँ रेंगने वाले कीड़े उस तक न पहुँच सकें। ये सब बातें उसके हृदय की क्रियाओं को तीक्ष्ण करने में सहायता देती हैं ताकि वह सुगमता से अद्वैत पर ध्यान जमा सके। आहार और वस्त्रादि जीवन की आवश्यकताओं को छोड़ कर शेष सब बातें ऐसे सुख हैं जो वास्तव में भेष बदले हुए दुःख हैं। इसलिए उनसे प्रसन्न होना असम्भव है, और उनका अन्तिम परिणाम भारी दुःख है। केवल उसी को आनन्द प्राप्त होता है जो काम और क्रोध रूपी दो असह्य शत्रुओं को अपने जीवन-काल में ही, न कि अपने मरने पीछे, मार डालता है; जो बाहर को छोड़ कर अन्दर से आनन्द लेता है; और जो, अन्तिम फल में, अपनी इन्द्रियों को भी छोड़ सकता है।" पृष्ठ १९

वासुदेव अर्जुन से बोले:—"यदि तुम विशुद्ध कल्याण के अभिलाषी हो तो अपने शरीर के नौ दरवाज़ों का ध्यान रक्खो, और देखते रहो कि उनमें से क्या कुछ अन्दर जाता है और क्या कुछ बाहर निकलता है। अपने मन को विचार बखेरने से रोको, और बालक के मस्तिष्क के ऊपर की झिल्ली का ख़याल करके आत्मा को शान्त करो, क्योंकि यह झिल्ली पहले कोमल होती है और फिर बन्द होकर दृढ़ हो जाती है, यहाँ तक कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इसकी कोई आवश्यकता ही न थी। इन्द्रियों के अनुभव को उनके गोलकों की आभ्यन्तरीण प्रकृति के अतिरिक्त और कुछ न समझो, अतः उसका अनुकरण करने से बचे रहो।"

गीता के अनुसार त्याग-मार्ग मोक्ष-मार्ग का दूसरा भाग है।

२. मोक्ष मार्ग का द्वितिय भाग त्याग है। यह तभी हो सकता है जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाय कि सृष्टि की अस्थिरता और परिवर्तनशीलता में क्या क्या ख़राबियाँ हैं। इनका ज्ञान हो जाने पर मनुष्य संसार से घृणा करने लगता है। सांसारिक वस्तुओं के लिए पहले जो लालसा उसे रहती थी वह भी जाती रहती है। मनुष्य उन तीन आदि गुणों से ऊपर उठ जाता है जो कि कर्मों और उनकी विभिन्नता का कारण हैं। जो मनुष्य संसार के व्यवहारों को भली प्रकार समझ लेता है, जो जान लेता है कि इनमें जो अच्छे हैं वे वस्तुतः बुरे हैं, और इनसे जो आनन्द प्राप्त होता है वह फल मिलने के समय दुःख का रूप धारण कर लेता है वह उन सब बातों से बचता है जो उसे संसार में अधिक फँसाने वाली और मर्त्य-लोक में ठहरने की उसकी अवधि को अधिक बढ़ाने वाली हैं।

गीता कहती है:—"जिन बातों की आज्ञा है और जिनका निषेध है उन्हीं में मनुष्य भूल कर देते हैं। वे अच्छे और बुरे कर्म्मों में भेद नहीं कर सकते, इसलिए कर्म्म का सर्वथा त्याग कर देना और उससे अलग रहना ही विशेष कर्म्म है।"

वही पुस्तक कहती है:—"ज्ञान की शुद्धि शेष सब वस्तुओं की शुद्धि से उच्च है, क्योंकि ज्ञान से अविद्या का मूलोच्छेद हो जाता है, और संशय का स्थान निश्चय ले लेता है। संशय दुःख देने का एक साधन है क्योंकि जो मनुष्य संशयात्मक है उसे चैन कहाँ?"

इससे स्पष्ट है कि मुक्ति मार्ग का प्रथम भाग दूसरे भाग का साधनीभूत है।

३. मोक्ष-मार्ग का तृतीय भाग जिसे पहले दो भागों का साधनीभूत समझना चाहिए पूजा है, ताकि मोक्ष-प्राप्ति में परमात्मा मनुष्य की सहायता करें और कृपा करके उसे ऐसी योनि में भेजने के योग्य समझें जिसमें कि वह परमानन्द की प्राप्ति के लिए यत्न कर सके।

गीता के अनुसार मोक्ष-मार्ग का तीसरा भाग पूजा है।

गीताकार पूजा के धर्म्मों को शरीर वाणी, और हृदय में इस प्रकार बाँटता है:—

उपवास करना, प्रार्थना करना, नियम का पालन करना, ब्राह्मणों, ऋषियों और देवों की सेवा करना, शरीर को पवित्र रखना, किसी अवस्था में भी वध न करना, और कभी पर-स्त्री और पर-संपत्ति को न ताकना—ये शरीर के धर्म्म हैं।

पवित्र मंत्रों का उच्चारण करना, परमात्मा की स्तुति करना, सदा सत्य बोलना, नम्रता से बात करना, लोगों को मार्ग बताना, और उन्हें पुण्य करने का आदेश करना—ये वाणी के धर्म्म हैं।

सरल और निष्कपट सङ्कल्प रखना, गर्व न करना, सदा शान्त रहना, इन्द्रियों को अधीन रखना, और सदा प्रसन्न-चित्त रहना—ये हृदय के कर्तव्य हैं।

ग्रंथकार (पतञ्जलि) मोक्ष-मार्ग के तीन भागों में चौथा एक और मायामय मार्ग मिलाता है। इसका नाम रसायन है। इसमें जड़ी-बूटियों द्वारा रसविद्या-सम्बन्धी छलों से उन बातों का अनुभव कराया जाता है जिनका स्वभावतः होना असम्भव है। हम इनका आगे जाकर (देखो अध्याय १७) वर्णन करेंगे। सिवाय इस बात के, कि रसायन के छलों में भी प्रत्येक बात संकल्प, अर्थात् उन्हें पूरा करने के लिए भली भाँति समझे हुए निश्चय पर निर्भर है मोक्ष-सिद्धान्त से इनका और कोई सम्बन्ध

रसायन, मोक्ष का मार्ग।

नहीं। यह निश्चय तब हो सकता है जब उनमें दृढ़ विश्वास हो, ताकि उनकी सिद्धि के लिए प्रयत्न किया जाय।

हिन्दुओं के विचार में परमात्मा के साथ मिलाप का नाम ही मोक्ष है, क्योंकि वे परमात्मा को एक ऐसी सत्ता बताते हैं जो न फल की आशा रखती है और न विरोध से भयभीत होती है; विचार उस तक पहुँच नहीं सकता क्योंकि वह सारे घृणित असादृश्यों और सब समानुभावी सादृश्यों से ऊपर है; परमात्मा अपने आप को, किसी ऐसी वस्तु के विषय में जो प्रत्येक अवस्था में उसे पहले ज्ञात न हो, अकस्मात् प्राप्त हुए ज्ञान के द्वारा नहीं जानता। मुक्त आत्मा की हिन्दू यही अवस्था बताते हैं, क्योंकि इन सब बातों में वह परमात्मा के समान हो जाता है। भेद केवल इतना है कि आत्मा अनादि नहीं, और मुक्ति से पूर्व वह बद्धावस्था में होता है। उस समय उसे विषयों का ज्ञान केवल एक प्रकार के ऐन्द्रजालिक आलोक के समान ही होता है, और वह भी उद्यम करने से। इस पर भी ज्ञातव्य विषय ऐसा ढँपा रहता है मानों उस पर आवरण पड़ा है। इसके विपरीत मुक्तावस्था में सब आवरण उठ जाते हैं, सब ढकने हट जाते हैं, और समस्त बाधाएँ दूर हो जाती हैं। इस अवस्था में आत्मा को पूर्ण ज्ञान होता है और किसी अज्ञात विषय के जानने की इच्छा नहीं रहती, इन्द्रियों के सर्व दूषित अनुभवों से अलग होकर वह नित्य विचारों से युक्त होता है। इसलिए पतञ्जलि की पुस्तक के अन्त में, जब शिष्य मुक्ति की अवस्था पूछता है तो गुरु उत्तर देता है:—"यदि तुम पूछना ही चाहते हो, तो मुक्ति तीन गुणों की क्रियाओं के बन्द हो जाने, और उनके किसी आदि स्थान पर लौट आने का नाम है—जहाँ से कि वे आये थे। अथवा, दूसरे शब्दों में, आत्मा

मोक्ष का स्वरूप।

पृष्ठ ४०

पतञ्जलि से प्रमाण।

के ज्ञानवान होकर अपनी ही प्रकृति में लौट आने का नाम मुक्ति है।"

मुक्तावस्था को प्राप्त हुई आत्मा के विषय में, दो मनुष्यों—गुरु और शिष्य—में मतभेद है। सांख्य में यति जिज्ञासा करता है—"जब कर्म्म बन्द हो जाता है तो मृत्यु क्यों नहीं होजाती ?" ऋषि उत्तर देते हैं—"क्योंकि वियोग का कारण आत्मा की एक विशेष दशा है जबकि आत्मा शरीर में ही होती है। आत्मा और शरीर का वियोग एक नैसर्गिक दशा से उत्पन्न होता है जोकि उन के संयोग को भंग कर देती है। प्रायः जब किसी कर्म्म का कारण बन्द हो जावे अथवा लुप्त हो जावे तो कर्म्म स्वयम् कुछ काल तक जारी रहता है, फिर ढीला पड़ जाता है, और क्रमशः घटते घटते अन्त को सर्वथा बन्द हो जाता है। जैसे रेशम कातने वाला जुलाहा चरखे की छोटी सी हथड़ी को पकड़ कर घुमाता है यहाँ तक कि चरखा जल्दी जल्दी घूमने लगता है। तब वह हथड़ी को छोड़ देता है पर फिर भी वह चरखा ठहर नहीं जाता। चरखे की गति शनैः शनैः कम होकर अन्त को बिल्कुल बन्द हो जाती है। यही दशा शरीर की है। शरीर के कर्म्मों के बन्द हो जाने के बाद भी उन का प्रभाव बना रहता है। यहाँ तक कि गति और विश्राम की विविध अवस्थाओं में से हो कर यह उस दशा को प्राप्त हो जाता है जबकि भौतिक शक्ति और पहले के कारणों से उत्पन्न हुए कर्म्म बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर के पूर्णतया भूमिगत होने के साथ मुक्ति पूर्ण हो जाती है"।

सांख्य से।

पतञ्जलि की पुस्तक में भी एक वाक्य है जो ऐसे ही विचारों को प्रकट करता है। उस मनुष्य का वर्णन करते हुए जो अपनी इन्द्रियों को ऐसे सुकेड़ लेता है जैसे कि कछुआ भयभीत होकर अपने अवयवों को अन्दर खेंच लेता है, कहा गया है कि "वह

पतञ्जलि से

बद्ध नहीं, क्योंकि उस के बंधन खुल गये हैं। वह मुक्त नहीं, क्योंकि उसका शरीर अभी उसके साथ है"।

उसी पुस्तक में और एक वाक्य है जो मोक्ष-सिद्धान्त के इस वर्णन से नहीं मिलता। वह कहता है कि 'शरीर फल भोगने के निमित्त आत्मा के लिए एक जाल है। जो मनुष्य मुक्तावस्था तक पहुँच गया है वह पहले ही, इसी वर्तमान योनि में, अपने पिछले कर्म्मों का फल भोग चुका है। तब वह भविष्य में कर्म्म-फल पाने का अधिकारी बनने से बचने के लिए परिश्रम करना छोड़ देता है। वह फन्दे से अपने आप को मुक्तकर लेता है। वह अपने विशेष देह को छोड़ सकता है, और इस में बिना फँसे ही स्वतंत्रतापूर्वक विचरता है। वह जहाँ जी चाहे वहाँ जाने को भी समर्थ होता है। यदि वह चाहे तो मृत्यु के अधिकार से भी ऊपर हो सकता है, क्योंकि सघन और स्थूल पदार्थ उसे इस रूप में रोक नहीं सकते—जैसे कि पर्वत उसे बीच में से गुज़रने से रोक नहीं सकता। ऐसी अवस्था में उसका शरीर उसकी आत्मा के आगे भला क्या रुकावट उपस्थित कर सकता है?"

सूफ़ियों के वैसे ही विचार।

ऐसे ही विचार सूफ़ियों में भी पाये जाते हैं। एक सूफ़ी यह कथा सुनाता है:—

सूफ़ियों की एक मण्डली हमारे पास आई और आकर हम से कुछ दूरी पर बैठ गई। तब उन में से एक ने उठ कर नमाज़ पढ़ी। नमाज़ पढ़ चुकने पर वह मेरी ओर मुँह कर के बोला—'प्रभो! क्या आप यहाँ कोई ऐसा स्थान जानते हैं जो हमारे मरने के लिए अच्छा हो'। मैंने समझा कि उस का अभिप्राय सोने से है अतः मैं ने उसे एक स्थान दिखा दिया। वह मनुष्य वहाँ गया और पीठ के बल चित लेट कर नितान्त निचेष्ट पड़ा रहा। अब मैं उठा और उसके पास जाकर उसे हिलाने लगा पर क्या देखता हूँ कि वह ठण्डा हो चुका है।"

सूफ़ी लोग कुरान की इस आयत (श्लोक) का कि "हमने उस के लिए पृथ्वी पर स्थान ख़ाली किया है*" इस प्रकार अर्थ करते हैं कि 'यदि वह चाहता है तो पृथ्वी उस के लिए अपने आप को लपेट लेती है; यदि वह चाहे तो जल पर और पवन में चल सकता है क्योंकि ये इतने दृढ़ हो जाते हैं कि उसे उठाये रखते हैं। पर्वत भी, जब वह उन के आर पार जाना चाहे तो, उस के लिए कोई रुकावट उपस्थित नहीं करते।"

पृष्ठ ४१

जो मोक्ष को प्राप्त नहीं होते उनके विषय में सांख्य का मत।

अब हम उन लोगों का वर्णन करते हैं जो बहुत परिश्रम करने पर भी मुक्तावस्था को प्राप्त नहीं होते। इनकी कई श्रेणियाँ हैं। सांख्य कहता है—"जो मनुष्य पुण्याचार लेकर संसार में आता है, जो अपनी सांसारिक सम्पत्ति को उदारभाव से देता है उसे संसार में इस प्रकार फल मिलता है कि उसकी सब मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; वह संसार में आनन्द-पूर्वक विचरता है और उसका शरीर तथा आत्मा, जीवन की सब दशाओं में प्रसन्न रहते हैं। कारण यह कि वस्तुतः उत्तम भाग्य पूर्व कर्म्मों का ही फल है, चाहे ये कर्म्म उसी योनि में किये हों चाहे पहले किसी योनि में। जो मनुष्य इस संसार में धर्म्मानुकूल जीवन व्यतीत करता है, पर जो ज्ञानशून्य है, वह उन्नत किया जायगा और उसे फल मिलेगा—परन्तु उसे मुक्ति प्राप्त नहीं होगी क्योंकि मुक्ति के साधनों का उसके पास अभाव है। जो कोई ऊपर दी हुई आठ आज्ञाओं के अनुकूल कर्म्म करने का सामर्थ्य रख कर ही सन्तुष्ट और शान्त है, जो उन पर गर्व करता है, उनके द्वारा सफलीभूत होता है और विश्वास रखता है कि वे मोक्ष हैं वह उसी अवस्था में रहता है"।

---

* (सूरा, १८, ८३)

नीचे लिखा दृष्टान्त उन लोगों के विषय में है जो ज्ञान की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में से उन्नति करते हुए एक दूसरे का मुक़ाबला कर रहे हैं:—

मनुष्यों को ज्ञान की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में दर्शाने वाला दृष्टान्त।

'एक मनुष्य अपने शिष्यों सहित किसी काम पर जा रहा है। इस समय रात का अन्तिम पहर है। उन्हें दूर से सड़क पर कोई वस्तु खड़ी दिखाई देती है, परन्तु रात्रि के अन्धकार के कारण उसको भली भाँति पहचानना उनके लिए असम्भव है। वह मनुष्य प्रत्येक शिष्य से बारी बारी से पूछता है कि वह क्या वस्तु है? पहला उत्तर देता है—"मैं नहीं जानता वह क्या है।" दूसरा कहता है—"मैं नहीं जानता वह क्या है। मेरे पास जानने का कोई साधन नहीं।" तीसरा कहता है—"यह जानने का यत्न करना कि वह क्या वस्तु है सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि दिन चढ़ते ही अपने आप पता लग जायगा। यदि यह कोई भयानक वस्तु है तो दिन निकलने पर वह स्वयम् छिप जायगी। यदि यह कुछ और है तो भी हमें इस की प्रकृत अवस्था का पता लग जायगा।" इन में से किसी एक को भी ज्ञान प्राप्त न हुआ था। पहले को तो इसलिए नहीं हुआ कि वह मूर्ख था। दूसरे को इस कारण कि उसके पास न तो जानने की शक्ति थी और न साधन ही। तीसरे को इसलिए कि वह निरुत्साह और अपनी अविद्या में ही प्रसन्न था।

अपितु चौथे शिष्य ने कुछ उत्तर न दिया। वह पहले चुपचाप खड़ा रहा और फिर उस वस्तु की ओर बढ़ा। निकट पहुँच कर उसने देखा कि कद्दू के ऊपर किसी वस्तु का उलझा हुआ ढेर पड़ा है। वह जानता था कि कोई भी स्वतंत्र इच्छा रखने वाला प्राणधारी मनुष्य, जब तक कि वह उलझी हुई वस्तु उसके शिर पर ही न उगी हुई होती, कभी भी अपने स्थान पर निचला खड़ा नहीं रहता; इसलिए उसने

झट पहचान लिया कि यह कोई जड़ वस्तु सीधी खड़ी है । इस से अधिक वह इस बात का निश्चय न कर सका कि कहीं यह लीद और गोबर के ढेर के निमित्त कोई गुप्त स्थान तो नहीं । अतः वह उसके बहुत ही निकट चला गया और पांव से उसे ठोकर दी, यहां तक कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ी । इस प्रकार उस के सब संदेह दूर हो गये और उसने अपने गुरु के पास जाकर ठीक ठीक बात कह सुनाई । इस रीति से गुरु ने शिष्य के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया ।

प्राचीन यूनानियों के इसी प्रकार के विचारों के विषय में हम अमोनियस का प्रमाण दे सकते हैं जो कि निम्न-लिखित वाक्य को पायथेगोरस का बताता है—

अमोनियस, अफलातू और मोक्रस आदि यूनानी लेखकों की पुस्तकों में ऐसे ही दृष्टान्त ।

"इस संसार में तुम्हारी कामना और आयास आदिकारण के साथ मिलने की ओर लगने चाहिएँ, क्योंकि वही तुम्हारे जीवन का कारण है और उसी से तुम सदैव स्थिर रह सकोगे । तुम नष्ट होने और मिट जाने से बचे रहोगे । तुम सच्चे अर्थ, सच्चे आनन्द, और सच्ची कीर्ति के लोक में सदैव बने रहने वाले आनन्दों और उल्लासों का उपभोग करोगे" ।

पाइथेगोरस और कहता है:—"जब तक तुम शरीर-रूपी वस्त्र धारण किये हो तब तक तुम्हें मुक्त होने की आशा कैसे होसकती है ? जब तक कि तुम शरीररूपी कारा गार में बन्द हो तुम्हें मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है ?"

अमोनियस कहता है—" एम्पीडोक्लीस और उसके हरेक्लीस तक उत्तराधिकारियों का यह मत है कि मलिन आत्मा जब तक विश्वात्मा से सहायता न माँगे तब तक सदैव संसार के साथ संयुक्त रहती है । विश्वात्मा बुद्धि के पास इसकी सिफ़ारिश करती है और बुद्धि आगे विधाता के पास । विधाता अपना थोड़ा

पृष्ठ ४२

सा प्रकाश बुद्धि को देता है। बुद्धि उसका थोड़ा सा अंश विश्वात्मा को देती है जो कि इस संसार में स्थिर है। अब आत्मा बुद्धि से प्रकाशित होना चाहती है—यहाँ तक कि अन्त को व्यक्तिक आत्मा विश्वात्मा को पहचान कर उसके साथ संयुक्त हो जाती है और उसी के जगत् के साथ जुड़ जाती है। परन्तु यह एक ऐसी क्रिया है जिसमें अनेकानेक युग लग जाते हैं। तब आत्मा एक ऐसे प्रदेश में आती है जहाँ कि देश और काल नहीं और जहाँ क्षणिक दुःख-सुखादि सांसारिक चीज़ों का भी अभाव है"।

सुकरात कहता है:—"पुण्य स्वरूप के साथ सम्बन्ध होने के कारण आकाश को त्याग कर आत्मा उसके पास जाता है। यह पुण्यस्वरूप सदैव जीवित और नित्य है। संस्थिति में आत्मा पुण्यस्वरूप के सदृश हो जाता है क्योंकि विशेष प्रकार के संसर्ग के द्वारा उसके संस्कार इस पर पड़ते रहते हैं। संस्कारों को ग्रहण करने की इस क्षमता को बुद्धि कहते हैं"।

सुकरात और कहता है:—"आत्मा दिव्य सत्ता से बहुत मिलती है। वह सत्ता न कभी मरती है और न कभी विलीन होती है। वही एक चेतन सत्ता है जो कि नित्य रहती है, पर शरीर की दशा इसके विपरीत है। जब शरीर और आत्मा का संयोग होता है तो प्रकृति शरीर को दास और आत्मा को प्रभु रहने का आदेश करती है, परन्तु जब उनका वियोग होता है तो आत्मा और शरीर अलग अलग स्थानों को जाते हैं। वहाँ अनुकूल पदार्थों के साथ आत्मा प्रसन्न रहती है। आकाश के अन्दर घिरा न होने से वहाँ इसे आराम मिलता है। वहाँ मूर्खता, अधीरता, स्नेह, और भय आदि मानुषी दुर्विकार इसे पीड़ित नहीं करते। परन्तु यह अवस्था तभी प्राप्त होती है जब आत्मा सदैव शुद्ध रहती हुई शरीर से घृणा करती रही हो।

यदि आत्मा ने शरीर की ओर से असावधान होकर उससे ऐसा प्रेम और उसकी ऐसी सेवा की है कि वह उसकी विषय-वासनाओं के अधीन हो गया है और इससे आत्मा स्वयम् मैली हो गई है तो आत्मा को नाना प्रकार के देहधारी प्राणियों और उनके संसर्ग से बढ़ कर और किसी सत्य पदार्थ का अनुभव नहीं होता।"

प्रोक्लस कहता है:—"जिस शरीर में बुद्धिमान् आत्मा निवास करती है उसकी, आकाश और उसके अन्तर्गत व्यक्तिगत भूतों की भाँति, गोल आकृति होती है। जिस शरीर में बुद्धिमान और अज्ञानी दोनों आत्माएँ रहती हैं उसकी मनुष्य के समान सीधी आकृति होती है। जिस शरीर में केवल अज्ञानी आत्मा ही निवास करती है, ज्ञानशून्य पशुओं की भाँति उसका आकार खड़ा और साथ ही झुका हुआ होता है। जिस शरीर में किसी प्रकार की भी आत्मा नहीं रहती, जिसमें आहार खा कर बढ़ने फूलने की शक्ति के सिवा और कुछ नहीं, उसका आकार सीधा परन्तु साथ ही मुड़ा हुआ और इस प्रकार उलटा होता है कि शिर भूमि में रहता है, जैसे कि पौधों का। यह अन्तिम अवस्था मनुष्य की अवस्था के विपरीत है क्योंकि मनुष्य तो एक आकाश-तरु है जिसकी जड़ें इसके घर अर्थात् आकाश की ओर गई हैं, पर वनस्पतियों की जड़ें उनके घर अर्थात् पृथिवी की ओर जाती हैं।"

हिन्दू भी प्रकृति के विषय में इसी प्रकार के विचार रखते हैं।

पातञ्जलि के मतानुसार ब्रह्म की अश्वत्थ-वृक्ष से तुलना।

अर्जुन पूछता है:—"संसार में ब्रह्म की उपमा किस से दी जा सकती है?"

तब वासुदेव उत्तर देते हैं, "उसे अश्वत्थ वृक्ष की भाँति समझो।" यह वृक्ष उन लोगों में बड़ा प्रसिद्ध है। यह एक भारी और बहुमूल्य वृक्ष है जो कि मूल ऊपर की ओर और शाखाएँ नीचे की

ओर करके उलटा खड़ा रहता है। यदि इसे पर्य्याप्त आहार दिया जाय तो इसका आकार बहुत बड़ा हो जाता है; इसकी शाखाएँ दूर दूर तक फैल जाती हैं और भूमि से चिमिट कर इसके अन्दर रीङ्गने लगती हैं। ऊपर और नीचे की जड़ें और शाखाएँ एक दूसरे से इतनी मिलती हैं कि एक को दूसरे से पहचानना बहुत कठिन हो जाता है।

"इस वृक्ष की ऊपर की जड़ें ब्राह्मण हैं। वेद इसका तना हैं। इसकी शाखाएँ भिन्न भिन्न सिद्धान्त और दर्शन हैं। इसके पत्ते अर्थ लगाने की भिन्न भिन्न शैलियाँ हैं। इसका आहार तीन गुण हैं। इन्द्रियों के द्वारा यह वृक्ष सुदृढ़ और मोटा होता है। ज्ञानी पुरुष की यही आकांक्षा रहती है कि इस वृक्ष को उखाड़ दे, अर्थात् संसार और उसके मिथ्या आडम्बरों से बचा रहे। जब वह इसे उखाड़ डालता है तो फिर जिस स्थान में उगा हुआ था, जिस स्थान में कि आगामी पुनर्जन्म से लौट कर नहीं आना, उस स्थान में आप निवास करने लगता है। ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाने पर वह गरमी सरदी के दुःखों को अपने पीछे छोड़ जाता है और सूर्य्य, चन्द्र तथा साधारण अग्नियों के प्रकाश को छोड़कर दिव्य ज्योतियों को प्राप्त करता है।"

पृष्ठ ४१

सत्य के ध्यान में मग्न रहने के विषय में पतञ्जलि का सिद्धान्त सूफ़ियों के सिद्धान्त से मिलता है, क्योंकि वे कहते हैं कि "जब तक कोई वस्तु तुम्हारा लक्ष्य बनी हुई है तुम अद्वैतवादी नहीं, परन्तु जब सत्य तुम्हारी लक्षित वस्तु का स्थान ले ले और उस वस्तु को नष्ट कर दे तब न कोई लक्ष्य बनाने वाला रह जाता है और न कोई लक्ष्य ही।"

सूफ़ियों के वैसे ही विचार।

उनके धर्म्म में कई ऐसे वाक्य पाये जाते हैं जिन से मालूम होता

है कि वे अद्वैतवादिक एकता को मानते हैं। उदाहरणार्थ जब उनमें से एक से पूछा गया कि सत्य (ईश्वर) क्या है, तो उसने निम्न उत्तर दिया:—"मैं उस सत्ता को कैसे न जानूँ जो सारतः "मैं" है, और आकाश की दृष्टि से "मैं नहीं" है? यदि मैं एक बार फिर जन्म ग्रहण करता हूँ तो मेरा उससे वियोग हो जाता है; और यदि मुझे त्याग दिया जाता है (अर्थात् मैं फिर जन्म नहीं पाता और संसार में भेजा नहीं जाता) तो मैं हलका हो जाता हूँ, संयोग का अभ्यासी बन जाता हूँ।"

अबू बकर अश्शिबली कहता है:—"अपना सर्वस्व फेंक दो, और तुम हमें पूर्णतया प्राप्त कर लोगे। तब तुम जीवित रहोगे। परन्तु जब तक तुम्हारे कर्म्म हमारे ऐसे हैं तुम हमारे विषय में दूसरों को कुछ नहीं बताओगे।"

अब यज़ीद से एक बार किसी ने पूछा कि आप ने सूफ़ी मत में इतनी उच्च पदवी कैसे पाई तो उसने उत्तर दिया:—"मैंने अपने आप को ऐसे ही परे फेंक दिया जैसे कि सर्प अपनी केंचली को फेंक देता है। तब मैंने अपने आप पर विचार किया और मुझे मालूम हो गया कि "मैं" 'वह' अर्थात् ईश्वर हूँ।"

सूफ़ी क़ुरान के इस वाक्य* "तब हम बोले, इस मनुष्य को उस स्त्री के टुकड़े के साथ मारो"—का इस प्रकार अर्थ करते हैं कि "मृत चीज़ को मारने की आज्ञा—ताकि वह जी उठे—यह प्रकट करती है कि जब तक शरीर को तपस्वी साधनों द्वारा इतना न मार दिया जावे कि उसकी वास्तविक सत्ता नष्ट हो जावे और वह आकार मात्र ही रह जाय, जब तक तुम्हारा हृदय एक ऐसी सत्य वस्तु न हो जाय जिस पर

* (सूरत २, ६८)

कि वाह्य जगत् के किसी भी विषय का प्रभाव न पड़े, तब तक तुम्हारा हृदय ज्ञान के प्रकाश से जीवित नहीं हो सकता।"

वे और कहते हैं:—"मनुष्य और ईश्वर के बीच प्रकाश और अन्धकारकी सहस्रों सीढ़ियाँ हैं। मनुष्य यत्नपूर्वक अन्धकार से प्रकाश मेंजाना चाहते हैं। जब एक बार वे प्रकाश के प्रदेशों में पहुँच जाते हैं तो फिर उन्हें लौटना नहीं पड़ता।"

आठवाँ परिच्छेद ।

सृष्टि की भिन्न भिन्न जातियों तथा उनके नामों का वर्णन ।

सांख्य के मतानुसार सृष्टि की विविध जातियां ।

इस परिच्छेद के विषय का अध्ययन करना और उसे ठीक ठीक समझना बड़ा कठिन है, क्योंकि हम मुसलमान लोग इसे बाहर से ही देखते हैं, और स्वयम् हिन्दुओं ने भी इसे शास्त्रीय पूर्णता तक नहीं पहुँचाया। इस ग्रन्थ की दूरतर प्रगति के लिए हमें इस विषय की आवश्यकता है इसलिए इस ग्रन्थ के रचना-काल तक-इसके विषय में जो कुछ भी हमने सुना है वह सारा का सारा यहां लिखेंगे। पहले सांख्य नामक पुस्तक का सार देते हैं :—

जिज्ञासु बोला—"प्राणियों की कितनी जातियाँ हैं ?"

ऋषि ने उत्तर दिया—"उनकी तीन श्रेणियाँ हैं, अर्थात् आध्यात्मिक लोग ऊपर, मनुष्य मध्य में, और पशु नीचे। उनकी चौदह जातियां हैं, जिन में से आठ— ब्रह्मा, इन्द्र, प्रजापति, सौम्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और पिशाच—आध्यात्मिक हैं। पांच पशु जातियां हैं अर्थात् गृह–पशु, वन-पशु, पक्षी, रेंगने वाले, और उगने वाले (यथा वृक्ष)। एक जाति मनुष्य है।"

उसी पुस्तक के लेखक ने अन्यत्र भिन्न नामों वाली यह सूची दी है :—ब्रह्मा, इन्द्र, प्रजापति, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच।

हिन्दू लोग वस्तुओं के एक ही क्रम को बहुत कम स्थिर रखते हैं। उनकी वस्तुओं की गिनती में बहुत कुछ स्वच्छन्दता रहती है। वे नाना नाम घड़ लेते हैं और उनका उपयोग करते हैं। उन्हें कौन रोके या वश में रक्खे ?

गीता नामक पुस्तक में वासुदेव कहते हैं—"जब तीन गुणों में से प्रथम प्रधान होता है तो इससे विशेषतया बुद्धि बढ़ती है, ज्ञानेन्द्रियां पवित्र होती हैं; और देवताओं के लिए (यजन) कर्म्म किये जाते हैं। आनन्दमयी शान्ति इस गुण का एक परिणाम है और मुक्ति इस का फल है।

पृ० ४४.

"जब द्वितीय गुण प्रधान हो तो इस से विशेषतया धन-लालसा और विषयानुराग बढ़ता है। यह क्लान्तिकर और यक्ष तथा राक्षसों के लिए (पूजन) कर्म्म कराने वाला है। इस अवस्था में फल कर्म्म के अनुसार होता है।

"यदि तृतीय गुण प्रधान हो तो इससे विशेषतः अविद्या बढ़ती है, और लोग बड़ी आसानी से अपनी ही वासनाओं से धोखा खा जाते हैं। अन्त में यह उन्निद्रता, असावधानता, आलस्य, कर्त्तव्य-पालन में दीर्घ-सूत्रता, और चिरकाल तक सोते रहना प्रभृति दोष उत्पन्न कर देता है। यदि मनुष्य कोई (उपासना) कर्म्म करता है तो भूतों, पिशाचों, असुरों, और प्रेतों के लिए करता है जो कि जीवात्माओं को, न नरक में और न स्वर्ग में ही बल्कि, वायु में उठा ले जाते हैं। इस गुण का परिणाम दण्ड भोगना है; मनुष्य मनुष्य-जन्म से पतित होकर पशु और वृक्ष बन जाता है।"

किसी दूसरे स्थल में वही ग्रन्थकार कहता है—"आध्यात्मिक प्राणियों में से केवल देवों में ही विश्वास और धर्म्म पाये जाते हैं। इस लिए जो मनुष्य उनके सदृश है वह परमात्मा में विश्वास रखता है,

उसी का आश्रय लेता है, और उसी की लालसा करता है। अविश्वास और अधर्म्म निशाचरों में पाये जाते हैं जिन्हें कि असुर और राक्षस भी कहते हैं। जो मनुष्य उनके सदृश है वह परमात्मा में विश्वास नहीं रखता और न उसकी आज्ञाओं का पालन करता है। वह संसार को नास्तिक बनाना चाहता है और सदैव ऐसे कर्म्म करता है जो इस लोक तथा परलोक दोनों में हानिकारक और निष्फल हैं।"

ग्रन्थकार आठ आध्यात्मिक जातियों का वर्णन करता है।

अब यदि हम इन दोनों वर्णनों को एक दूसरे से मिलादें तो यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि उन के क्रम और नामों में बहुत कुछ गड़बड़ है। अधिकांश हिन्दुओं के सब से अधिक लोकप्रिय मत के अनुसार आध्यात्मिक प्राणियों की निम्नलिखित आठ श्रेणियाँ हैं:—

१—देव—जिनके अधिकार में उत्तर है। इन का हिन्दुओं से विशेष सम्बंध है। लोग कहते हैं ज़ुर्दुश्त ने पापात्माओं (देवों) का नाम पुण्यात्मा रख कर, जिन्हें शमनिया अर्थात् बौद्ध लोग सब से उच्च अर्थात् देव समझते हैं उन लोगों को रुष्ट कर दिया। यही उपयोग मग लोगों के समय से हमारी आधुनिक फ़ारसी तक चला आया है।

२—दैत्य दानव—अर्थात् पापात्माएं जो दक्षिण में रहती हैं। हिन्दू-धर्म्म के विरोधी और गो-हत्या करने वाले सब इन्हीं में गिने जाते हैं। यद्यपि इन में और देवों में बड़ा समीप का सम्बंध है, फिर भी जैसा कि हिन्दुओं का विचार है, इन में परस्पर लड़ाई रहती है।

३—गन्धर्व—अर्थात् गायक और वादक जो देवों के सामने संगीत करते हैं। इन की वाराङ्गनाएं अप्सरा कहलाती हैं।

४—यक्ष अर्थात् देवों के कोषाध्यक्ष या रक्षक।

५—राक्षस अर्थात् कुरूप और भद्दी आकृति वाली पापात्माएं।

६—किन्नर—जिन की आकृति तो मनुष्य जैसी है पर शिर घोड़े का सा है। इन के विपरीत यूनानियों के एक कल्पित पशु हैं जिन का शिर मनुष्य जैसा और निचला भाग घोड़े जैसा है। यूनानियों की यह आकृति राशि-चक्र के धनिष्ठा नक्षत्र का चिह्न है।

७—नाग—साँप की आकृति के प्राणी।

८—विद्याधर—अर्थात् निशाचर मायाकार जोकि विशेप प्रकार की माया के जाल फैलाते हैं परन्तु इस माया का परिणाम चिरस्थायी नहीं होता।

इस सूची की समालोचना।

यदि हम प्राणियों के इस अनुक्रम पर विचार करें तो मालूम होता है कि पुण्य-शक्ति तो ऊपर के सिरे पर है और पाप-शक्ति निचले पर, और इन दोनों के बीच में बहुत कुछ पारस्परिक मिलावट है। इन प्राणियों के गुण भिन्न भिन्न हैं यहाँ तक कि आवागमन की सीढ़ी पर वे कर्म्मों द्वारा इस अवस्था को पहुँचे हैं। उन के कर्म्मों में भेद का कारण तीन गुण हैं। वे चिरकाल तक जीते हैं, क्योंकि वे शरीरों से सर्वथा रहित हैं। न उन्हें किसी प्रकार का आयास करना पड़ता है, वे ऐसी ऐसी बातें कर सकते हैं जिनका करना मनुष्यों के लिए सर्वथा असम्भव है। वे मनुष्य की उस की इच्छानुसार सेवा करते हैं और आवश्यकता होने पर उसके पास रहते हैं।

पृष्ठ ४१

तथापि हमें सांख्य के अवतरण से मालूम हो सकता है कि यह मत ठीक नहीं, क्योंकि 'ब्रह्मा', 'इन्द्र', और 'प्रजापति' जातियों के नाम नहीं बल्कि व्यक्तियों के हैं। ब्रह्मा और प्रजापति का अर्थ प्राय: एक ही है; उनके भिन्न भिन्न नाम किसी एक गुण के कारण हैं। इन्द्र लोकों का राजा है। इस के अतिरिक्त वासुदेव यक्ष और राक्षस दोनों को

पापात्माओं की जाति में गिनते हैं, परन्तु पुराण यक्षों को संरक्षक-पुण्यात्मा और संरक्षक पुण्यात्माओं के दास बताते हैं।

चाहे कुछ ही हो, हम कहते हैं कि जिन आध्यात्मिक प्राणियों का हमने उल्लेख किया है वे एक पद हैं। उन्होंने ये पद (योनि) उन कर्म्मों के अनुसार पाये हैं जो कि उन्होंने मनुष्य-जन्म में किये थे। वे शरीरों को पीछे छोड़ गये हैं, क्योंकि शरीर ऐसा बोझ है जो शक्ति को मन्द करता और जीवन-काल को घटाता है। उनके गुणों और अवस्थाओं में उतना उतना ही अन्तर है जितना कि तीन गुणों में से एक या दूसरे का उनमें प्रधानत्व है। पहला गुण देवों या पुण्यात्माओं में विशेष रूप से पाया जाता है, और ये बड़ी शान्ति और आनन्द से रहते हैं। उनके मन की प्रधान शक्ति यह है कि किसी विषय को प्रकृति से अलग समझलें, जैसे कि मनुष्य के मन की प्रधान शक्ति विषय को प्रकृति के साथ जानना है। तीसरा गुण पिशाच और भूतों में प्रधानतया पाया जाता है, और दूसरा गुण स्वयं उनकी जातियों में।

देवों का वर्णन।

हिन्दू कहते हैं कि देवों की संख्या तेतीस कोटि या करोड़ है जिनमें से ग्यारह महादेव की हैं। अतः यह संख्या उसके उपनामों में से एक है, और स्वयम् उसका नाम (महादेव) इसी बात को प्रकट करता है। पुण्यात्माओं का कुल टोटल ३३०,०००,००० होता है।

इसके अतिरिक्त वे कहते हैं, कि देवता खाते पीते, भोग-विलास करते, जीते और मरते हैं क्योंकि वे प्रकृति के अन्दर हैं—चाहे वह प्रकृति अति सूक्ष्म और अति सरल ही है। साथ ही उन्होंने यह जन्म कर्म्मों द्वारा पाया है न कि ज्ञान द्वारा। पतञ्जलि की पुस्तक कहती है कि नन्दिकेश्वर ने महादेव के नाम पर बहुत से यज्ञ किये जिनके कारण वह मनुष्य-देह के साथ ही स्वर्ग में भेज दिया गया। राजा इन्द्र का

नहुष ब्राह्मण की स्त्री के साथ अनुचित सम्बन्ध था इसलिए उसे यह दण्ड मिला कि वह सर्प बना दिया गया ।

पितर और ऋषियों का वर्णन ।

देवों के पश्चात् पितरों अर्थात् मृत पूर्वजों की श्रेणी है और उनके पश्चात् भूत अर्थात् वे मनुष्य जिन्होंने अपना सम्बन्ध आध्यात्मिक प्राणियों (देवों) से जोड़ा है और जो मनुष्य-जाति तथा देव-जाति के मध्य में हैं। जो मनुष्य इस पदवी पर पहुँच गया है पर अभी शरीर के बन्धनों से मुक्त नहीं हुआ वह ऋषि, या सिद्ध, या मुनि कहलाता है। इन लोगों में अपने अपने गुणों के अनुसार परस्पर भेद है। सिद्ध वह है जिसने अपने कर्म्मों द्वारा ऐसा सामर्थ्य प्राप्त कर लिया है कि वह संसार में जो चाहे सो कर सकता है। वह इससे आगे नहीं बढ़ना चाहता और मोक्ष-प्राप्ति के लिए यत्न नहीं करता। यदि वह चाहे तो ऋषि पदवी को प्राप्त कर सकता है। यदि ब्राह्मण यह पद प्राप्त करे तो वह ब्रह्मर्षि कहलाता है। यदि क्षत्रिय करे तो वह राजर्षि कहलाता है। नीच जातियों के लिए यह पद पाना असम्भव है। ऋषि वे ज्ञानी हैं जो यद्यपि मनुष्य-देहधारी हैं पर तो भी अपने ज्ञान के कारण देवताओं से भी उच्च हैं। इसीलिए देवता उनसे शिक्षा लेते हैं। उनके ऊपर सिवाय ब्रह्म के और कोई नहीं।

ब्रह्मर्षि और राजर्षि के पश्चात् प्राकृतजन की वह श्रेणियाँ हैं जो कि हम लोगों के अन्दर भी पाई जाती हैं। इन जातियों पर हम एक अलग परिच्छेद लिखेंगे।

रुद्र, नारायण, और ब्रह्मा की विष्णुरूप में एकता ।

जिन प्राणियों का अभी ऊपर वर्णन हुआ है उन सब की पदवी प्रकृति से नीचे है, और जो चीज़ प्रकृति से ऊपर है उसकी कल्पना के विषय में हम कहते हैं कि महत्तत्त्व प्रकृति और आध्यात्मिक दिव्य विचारों का, जो कि प्रकृति से ऊपर

हैं, मध्य है और कि तीन गुण महत्तत्व में गति रूप से रहते हैं। इसलिए महत्तत्त्व और वह सब जिसका इसमें समावेश है मिल कर ऊपर से नीचे तक एक पुल बनाते हैं।

आदि कारण मात्र के प्रभाव से जिस जीवन का महत्तत्व में सञ्चार होता है वह ब्रह्मा, प्रजापति, और अन्य कई ऐसे नामों से पुकारा जाता है जो उनकी धर्म्म-स्मृतियों और पुराणों में मिलते हैं। प्रकृति की भांति यह भी कर्म्मों-युक्त है क्योंकि सृष्टि का उत्पन्न करना और जगत् का निर्माण करना सब इसी का काम बतलाया जाता है।

पृष्ठ ४६।

जो जीवन द्वितीय गुण के प्रभाव से महत्तत्व में सञ्चरित होता है वह हिन्दुओं के पुराणों में नारायण कहलाता है। नारायण का अर्थ यह है कि प्रकृति अपने कर्म्म के अन्त तक पहुँच चुकी है, और जो कुछ उत्पन्न कर चुकी है अब उसे स्थिर रखने के लिए यत्न कर रही है। अतः नारायण संसार का प्रबन्ध इस प्रकार करने का यत्न करता है कि जिससे यह स्थिर रहे।

जिस जीवन का सञ्चार महत्तत्व में तृतीय गुण के प्रभाव से होता है वह महादेव या शङ्कर कहलाता है; पर इसका प्रसिद्ध नाम रुद्र है। उत्साह की अन्तिम अवस्थाओं में प्रकृति की भांति, जब कि इसकी शक्तियां शिथिल हो जाती हैं, इसका काम विनाश और प्रलय करना है।

इन तीन सत्ताओं के नाम, जैसे जैसे वे ऊपर और नीचे की ओर विविध दशाओं में से घूमती हैं, भिन्न भिन्न होते हैं। इसी के अनुसार उनके कर्मों में भी भेद होता है।

परन्तु इन सब सत्ताओं से ऊपर एक स्रोत है जिससे कि प्रत्येक वस्तु निकलती है। इस एकत्व में वे इन तीनों चीज़ों को लीन समझते हैं।

इस एकत्व को वे विष्णु कहते हैं। यह नाम विशेषतः मध्यवर्ती गुण को प्रकट करता है। परन्तु कई वार वें मध्यवर्ती गुण और आदिकारण में कुछ भेद नहीं समझते (अर्थात् नारायण को ही आदि कारण बना देते हैं)।

यहाँ हिन्दुओं और ईसाइयों में सादृश्य है, क्योंकि ईसाई तीन व्यक्तियों में भेद करके उनके अलग अलग नाम—पिता, पुत्र, और पवित्रात्मा—रखते हैं, पर उनको एक ही मूर्त्ति में इकट्ठा कर देते हैं।

हिन्दू-सिद्धान्तों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यही बातें मालूम होती हैं। उनके पुराणों का, जिनमें कि मूर्खता की बातें भरी पड़ी हैं, हम पीछे प्रसंग-क्रम से वर्णन करेंगे। जिन देवों का अर्थ हमने पुण्यात्मा (फ़रिश्ते) लिखा है, उनकी कथाएँ कहते हुए हिन्दू लोग उनके विषय में सब प्रकार की बातें कह डालते हैं। इनमें से कई एक तो स्वयमेव अयुक्त होती हैं, और कई एक शायद ऐसी नहीं भी हैं जिन पर दोषारोपण किया जा सके, पर कुछ एक अवश्यमेव सदोष होती हैं। इन दोनों प्रकार की बातों को मुसलमान ब्रह्मज्ञानी लोग पुण्यात्माओं के माहात्म्य और स्वभाव के लिए असंगत बतायेंगे। पर इन बातों को सुन कर हमें विस्मित नहीं होना चाहिए।

यूनानियों के वैसे ही विचार। ज़ीउस के विषय में कथाएँ।

यदि आप इन पुराणों का मिलान यूनानियों की धर्म्म-सम्बन्धी लोककथा के साथ करें तो फिर आप को हिन्दू विचार विचित्र प्रतीत न होंगे। हम पहले ही कह आये हैं कि वे पुण्यात्माओं को देव कहते हैं। अब तनिक ज़ीउस (इन्द्र) के विषय में यूनानियों की कथाओं पर विचार कीजिए, आप को हमारे कथन की सत्यता ज्ञात हो जायगी। जिस प्रकार की आकृति,

रूप और स्वभाव वे उसके बताते हैं उनका इस लोककथा से आपको पता चल जायगा:—

"जब उसका जन्म हुआ उसका पिता उसे खा जाना चाहता था, परन्तु उसकी माता ने एक पत्थर पर कपड़े के चिथड़े लपेट कर उसे खाने को दे दिया। तब वह चला गया।" इसी बात का गैलीनस (जालीनूस) ने अपनी "वक्तृताओं की पुस्तक" में उल्लेख किया है। वहाँ वह कहता है कि फाइलो ने गूढ़ रीति से अपनी एक कविता में निम्नलिखित शब्दों में माजून फ़लोनिया (معجون فلونيا) के बनाने की विधि लिखी है:—

"लाल बाल लो जिनमें से कि मीठी मीठी सुगन्धि की लपटें आ रही हों, जो सुगंध कि देवताओं की भेंट है।

और मनुष्य की मानसिक शक्तियों की संख्या के भार से मनुष्य के रक्त को तोलो।"

कवि का अभिप्राय पांच सेर केसर से है क्योंकि इन्द्रियाँ भी पांच हैं। माजून (अवलेह) के अन्य उपादानों की मात्रा को भी वह उसी प्रकार पहेली के रूप में वर्णन करता है और गैलीनस उसकी व्याख्या देता है। उसी कविता में यह-छन्द आता है:—

"और उस मिथ्यानाम वाली जड़ का जो कि उस प्रान्त में उगी है जहाँ कि ज़ीउस उत्पन्न हुआ था"।

इसके साथ गैलीनस यह अपनी ओर से मिलाता है:—"सुम्बल का ही नाम मिथ्या है, क्योंकि इसे अनाज की बाल कहते हैं, यद्यपि यह बाल नहीं बल्कि जड़ है। कवि निर्देश करता है कि वह प्रान्त क्रेटन चाहिए क्योंकि पुराण-शास्त्रज्ञ कहते हैं कि ज़ीउस क्रेटा में दीकृतावन पर्वत पर उत्पन्न हुआ था जहाँ कि उसकी माता ने उसे उसके पिता क्रोनस से छिपा कर रक्खा था ताकि वह—जैसे दूसरों को खा गया था वैसे ही—उसे भी न खा जाय।"

पृष्ठ ४०

इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध कथा-पुस्तकें कहती हैं कि उसने विशेष स्त्रियों से एक दूसरी के बाद विवाह किया, और कई अन्यों से भोग किया और उन के साथ विवाह न करके अत्याचार किया। उनमें से एक फीनिक्स की पुत्री इयोरपा भी थी जिसे क्रीट के राजा अस्टरियस ने उससे ले लिया था। तत्पश्चात् उससे उसके यहाँ मीनास और रहडमन्थस नामक दो बालक पैदा हुए। जब इसराईल की सन्तान ने वन को छोड़ कर पैलस्टाइन में प्रवेश किया यह घटना उससे भी बहुत पूर्व की है।

एक और लोक-कथा है कि वह क्रीट में मर गया और ७८० वर्ष की आयु में वहाँ ही सम्सन इसराईली के समय में दबाया गया। बूढ़े होने पर उस का नाम ज़ीउस पड़ा, पहले उसे डीउस कहते थे। जिसने पहले पहल उसका यह नाम रक्खा वह एथन्स का प्रथम राजा ककोप्स था। उन सब की यह बात थी कि वे बिना रोक टोक के विषय-भोग में लिप्त रहते थे और भड़वे और कुटनेपन के काम को बढ़ाते थे। जहाँ तक उनकी आकांक्षा राज्य तथा शासन को दृढ़ करने की थी वे ज़रदुश्त और गुस्तास्प से भिन्न नहीं थे।

इतिहास-लेखकों का मत है कि एथन्स के अधिवासियों में सब प्रकार के पापों का मूल ककोप्स और उसके उत्तराधिकारी थे। पापों से उनका अभिप्राय ऐसी बातों से है जैसी की अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) की कथा में मिलती हैं। उदाहरणार्थ मिश्रदेश का राजा नकटीनाबुस (Nectanebus) ड्याम अर्टक्सर्क्सस (Artaxerxes) के सामने से भाग कर राजधानी मकदूनिया में जा छिपा और वहाँ फलितज्योतिष तथा भविष्यकथन में लगा रहा; और उसने राजा फिलिप की स्त्री ओलिम्पियास के साथ उसके पति की अनुपस्थिति में छल किया। उसने कपट से अपने आप को अम्मोन देवता, अर्थात् मेंढ़ों के सिरों जैसे

दो शिरों वाले सर्प, के रूप में उसके सामने प्रकट करके उसके साथ भोग किया। इससे उसके गर्भ में अलचेन्द्र (सिकन्दर) रह गया। लौटने पर पहले तो फिलिप पिता होने से इनकार करने लगा। पर फिर उसे स्वप्न हुआ कि यह अम्मोन देवता का बालक है। तब उसने उसे अपना बालक स्वीकार कर लिया और यों कहा—"मनुष्य देवताओं का विरोध नहीं कर सकता।" नक्षत्रों के संयोग ने नकटानीबुस को विदित कर दिया था कि वह अपने पुत्र के हाथों मरेगा। इसलिए जब वह अलचेन्द्र के हाथों गर्दन में घाव खा कर मरने लगा तो उसने पहचान लिया कि मैं इसका पिता हूँ।"

यूनानियों के पुराण इसी प्रकार की बातों से भरे पड़े हैं। हिन्दुओं के विवाह का वर्णन करते समय हम इसी प्रकार की बातें लिखेंगे।

अब हम अपने विषय की ओर आते हैं। ज़ौउस (इन्द्र) की प्रकृति के उस अंश के विषय में जिसका कि मानव जाति से कोई सम्बन्ध नहीं, यूनानी कहते हैं कि वह सैटर्न (शनि) का पुत्र जूपीटर (बृहस्पति) है, क्योंकि विद्वत्परिषद् के तत्त्ववेत्ताओं के अनुसार (जैसा कि गैलीनस अपनी "अनुमान की पुस्तक" में कहता है) केवल शनि ही अजन्मा होने के कारण अनादि है। यह बात अराटस की व्यक्त पदार्थों पर पुस्तक से भली भाँति प्रमाणित होती है, क्योंकि इस पुस्तक का मङ्गलाचरण ही उसने ज़ौउस की स्तुति के साथ किया है:—

अराटस के अवतरण।

"हमारी मानवजाति उसे नहीं छोड़ती और न उसके बिना हमारा निर्वाह हो सकता है। उससे सड़कें और मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान भरे पड़े हैं। वह उनके साथ दयापूर्वक व्यवहार करता है और उन्हें काम करने के लिए प्रोत्साहित करता है। उन्हें जीवन की आवश्यकताओं

का स्मरण कराता है। वह उन्हें बताता है कि उत्तम उत्पत्ति के लिए हल चलाने और भूमि खोदने का अनुकूल समय कौनसा है। उसी ने आकाश में तारे और राशियाँ बनाई हैं। इसलिए आदि अन्त में हम उसी की चरण-वन्दना करते हैं।"

और इस के पश्चात् वह आध्यात्मिक प्राणियों (विद्यादेवियों) की स्तुति करता है। यदि आप यवन धर्म्म की हिन्दू धर्म्म से तुलना करेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि वहाँ ब्रह्मा का वर्णन भी उसी प्रकार किया गया है जैसे कि अराटस ज़ीउस का करता है।

अराटस की "व्यक्त पदार्थ" नामक पुस्तक का टीकाकार कहता है कि 'देवताओं की स्तुति के साथ पुस्तक का मङ्गलाचरण करने की शैली अराटस ने चलाई थी, तत्कालीन अन्य कविगण ऐसा नहीं करते थे; वह दिव्य मण्डल का वर्णन करने का विचार रखता था।' टीकाकार गैलीनस की भाँति अस्क्लीपियस की व्युत्पत्ति पर भी विचार-दृष्टि डालता हुआ कहता है—"हम यह जानना चाहते हैं कि अराटस का अभिप्राय किस ज़ीउस से था—तांत्रिक से या भौतिक से। कारण यह कि क्रेटीज़ कवि ने दिव्य मण्डल को ही ज़ीउस कहा है, और होमर भी ऐसा ही कहता है :—

पृष्ठ ४८

"मानों हिम के टुकड़े ज़ीउस से काट कर अलग किये गये हैं।"
इस वाक्य में अराटस आकाश और वायु को ज़ीउस (इन्द्र) कहता है:—"सड़कें और सभामण्डप उस से भरे पड़े हैं और हम सब को उसी का श्वास लेना पड़ता है।"

इसी लिए स्टोआ के तत्त्वज्ञानियों का मत है कि ज़ीउस एक आत्मा है जोकि महत्तत्त्व में फैली हुई है और हमारी आत्माओं के सदृश है—अर्थात् वह प्रकृति जो प्रत्येक नैसर्गिक शरीर पर शासन कर रही है।

ग्रंथकार यह कल्पना कर लेता है कि वह दयालु है, क्योंकि वह पुण्य का कारण है। इसलिए उस का यह विचार सर्वथा सत्य है कि उस ने न केवल मनुष्य ही बनाये हैं बल्कि देवताओं को भी उसी ने रचा है।

नवाँ परिच्छेद ।

जातियाँ, जो रङ्ग (वर्ण) कहलाती हैं, और उनसे नीचे की श्रेणियों का वर्णन ।

जो स्वभावतः शासन करने की प्रवल इच्छा रखता है, जो श्रेणी श्रीर निगमन। अपने आचार और योग्यता के कारण वस्तुतः शासक बनने का अधिकारी है, जिस के विश्वास दृढ़ और सङ्कल्प स्थिर हैं, कार्य-विपत्ति के अवसरों पर जिसकी भाग्य सहायता करता है—यहां तक कि उस के पूर्व गुणों का विचार करके लोग उस के पक्षपाती हो जाते हैं—यदि ऐसा मनुष्य सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में एक नवीन अनुक्रम उत्पन्न करदे तो जिन लोगों के लिए यह अनुक्रम बनाया जाता है उन के अन्दर इसके स्थिर होने और पर्वत की भांति अचल बना रहने की बड़ी सम्भावना है। उन लोगों में यह एक सर्वमान्य नियम के रूप में युग-युगान्तर और अनेक पीढ़ियों पर्य्यन्त चला जायगा। समाज या राज्य के इस नवीन प्रकार का आधार यदि किसी अंश तक धर्म्म हो तो इन दोनों यमजों—राज्य और धर्म्म—में पूर्ण एकता हो जाती है, और वह एकता-मनुष्य समाज की उच्चतम उन्नति को प्रकट करती है। सम्भवतः मनुष्य इसी वात की अधिक से अधिक आकांक्षा कर सकते हैं।

अति प्राचीन समय के राजा लोग, जो बड़े ही कर्त्तव्य-परायण थे, प्रजाओं को भिन्न भिन्न श्रेणियों और कक्षाओं में विभक्त करने में बहुत योग देते थे। साथ ही उन्हें आपस में मिश्रित और गड़ बड़

होने से बचाये रखने का भी यत्न करते थे। इसलिए उन्होंने भिन्न भिन्न श्रेणियों के लोगों को एक दूसरे के साथ मिलने जुलने से रोक दिया और प्रत्येक श्रेणी को एक विशेष प्रकार का काम या शिल्प कर्म्म सिपुर्द किया। वे किसी को अपनी श्रेणि की सीमा का उल्लङ्घन करने की आज्ञा नहीं देते थे, बल्कि जो लोग अपनी श्रेणी के साथ सन्तुष्ट न थे उन्हें दण्ड दिया जाता था।

ये सब बातें प्राचीन चुसरोओं (ख़ुसरौ) के इतिहास से भली भाँति स्पष्ट हो जाती हैं क्योंकि उन्हों ने इसी प्रकार की एक विशेष संस्था प्रतिष्ठित की थी जोकि न किसी व्यक्ति की विशेष योग्यता से और न घूस देने से ही टूट सकती थी। जब अर्दशीर बिन बाबक ने फ़ारस को पुनः उठाया तो साथ ही उसने जन-साधारण की जातियों या वर्णों को भी इस प्रकार फिर ठीक करदिया :—

प्राचीन फ़ारसियों की जातियाँ।

पहले वर्ण में सम्भ्रान्त लोग और राजपुत्र थे।

दूसरे वर्ण में संन्यासी, अग्नि-पुरोहित, और धर्म्मशास्त्रवेत्ता लोग।

तीसरे वर्ण में चिकित्सक, ज्योतिषी, और अन्य विज्ञानी लोग।

चौथे में कृषक और शिल्पी लोग।

इन वर्णों या जातियों के अन्दर फिर अलग अलग उपजातियाँ थीं, जैसे कि जाति के अन्दर गोत्र होते हैं। जब तक इनका मूल याद रहता है तब तक इस प्रकार की सब संस्थाएँ एक प्रकार की वंशावलि रहती हैं, पर जब एक बार इनके उत्पत्ति-स्थान की विस्मृति हो गई तो फिर वे एक प्रकार से सारी जाति का स्थिर गुण हो जाती हैं। तब कोई भी अपनी व्युत्पत्ति के विषय में जिज्ञासा नहीं करता। और कई शताब्दियों और पीढ़ियों के पश्चात् इसका भूल जाना अवश्यम्भावी है।

हिन्दुओं के अन्दर इस प्रकार की संस्थाएँ असंख्य हैं। हम मुसलमान लोग इस प्रश्न के सर्वथा दूसरी ओर हैं क्योंकि हम समझते हैं कि ईश्वर-भक्ति को छोड़ कर शेष सब प्रकार से सब लोग बराबर हैं। यही सब से बड़ी रुकावट है जो हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक मेल जोल को रोकती है।

चार वर्ण।

हिन्दू अपनी जातियों को वर्ण अर्थात् रङ्ग कहते हैं, और वंश-विवरण की दृष्टि से उनका नाम जातक अर्थात् जन्म रखते हैं। ये वर्ण प्रारम्भ से ही केवल चार हैं।

पृष्ठ ४९

१. सबसे उच्च वर्ण ब्राह्मण हैं। इनके विषय में हिन्दू पुस्तकें कहती हैं कि वे ब्रह्मा के शिर से उत्पन्न हुए हैं। जिस शक्ति को माया कहते हैं उसका दूसरा नाम ब्रह्मा भी है, और शिर शरीर का सबसे उच्च अङ्ग है इस लिए ब्राह्मण सारी जाति में श्रेष्ठ हैं। इसी कारण हिन्दू उन्हें मानव जाति में सर्वोत्कृष्ट समझते हैं।

२. दूसरा वर्ण क्षत्रिय हैं, जो कि—जैसा कि वे कहते हैं—ब्रह्मा के कन्धों और हाथों से उत्पन्न हुए थे। उनकी पदवी भी ब्राह्मणों से बहुत कम नहीं।

३. उनके पश्चात् वैश्य हैं, जो कि ब्रह्मा की जाँघों से उत्पन्न हुए थे।

४. शूद्र, जो कि उसके पाँव से उत्पन्न हुए थे।

पिछले दो वर्णों में कोई बड़ा भेद नहीं। यद्यपि ये वर्ण एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं पर एक ही नगर और एक ही ग्राम में वे उन्हीं महल्लों और उन्हीं घरों में इकट्ठे रहते हैं।

शूद्रों के पश्चात् अन्त्यज लोग हैं जो कि नाना प्रकार की सेवा करते हैं। इनकी गिनती किसी वर्ण में नहीं होती, परन्तु इन्हें विशेष व्यवसायी या शिल्पी समझा जाता है। इनकी आठ जातियाँ हैं। धुनिए, मोची, और जुलाहे को छोड़ कर इन में से शेष सब आपस में खुल्लम खुल्ला रोटी बेटी का व्यवहार करती हैं क्योंकि दूसरे लोग इनके साथ व्यवहार करना स्वीकार नहीं करते। इनकी आठ जातियाँ ये हैं—धुनिए, मोची, मदारी, टोकरी और ढाल बनाने वाले, मांझी (नाविक), मछली पकड़ने वाले, वन-पशुओं और पक्षियों का आखेट करने वाले (अहेरिये), और जुलाहे। उपरोक्त चार वर्ण इन के साथ एक स्थान में नहीं रहते। ये लोग चार वर्णों के गाँवों और नगरों के पास, परन्तु उनके बाहर, रहते हैं।

नीच जाति के लोग।

जो लोग हाड़ी, चण्डाल, और बधतौ कहलाते हैं उनकी किसी वर्ण या जाति में गणना नहीं होती। उनका व्यवसाय गाँव की सफ़ाई-प्रभृति मैले कर्म्म करना है। वे एक पूर्ण जाति समझे जाते हैं और केवल अपने व्यवसाय से ही पहचाने जाते हैं। वस्तुतः उन्हें विजात सन्तान की भाँति समझा जाता है, क्योंकि लोकमत उन्हें शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता के व्यभिचार से उत्पन्न हुई सन्तति बतलाता है। इसीलिए वे पतित और निष्कासित हैं।

हिन्दू प्रत्येक वर्ण के प्रत्येक मनुष्य को, उसके व्यवसाय और कर्म्म के अनुसार, विशेष नाम देते हैं। उदाहरणार्थ जब तक ब्राह्मण घर पर रह कर अपना काम करता है तब तक इसी नाम से पुकारा जाता है। जब वह एक अग्नि की सेवा करता है तो इष्टिं कहलाता है। जब वह तीन अग्नियों की सेवा करता है तो अग्नि-होत्रिन् कहलाता है। यदि वह इसके अतिरिक्त

वर्णों और श्रेणियों के भिन्न भिन्न व्यवसाय।

आग में नैवेद्य भी देता है तो उसका नाम दीक्षित होता है। जैसे ब्राह्मणों की बात है वैसे ही दूसरे वर्णों की भी है। वर्णों से नीची जातियों में से हाड़ियों को अच्छा समझा जाता है क्योंकि ये लोग कोई मैला कर्म्म नहीं करते। इनके पीछे डोम हैं जो बाँसुरी बजाते और गाते हैं। इन से भी नीची जातियों का व्यवसाय मारना और राजदण्ड देना है। सब से बुरे बधतौ हैं जो न केवल मृत पशुओं का मांस ही खा लेते हैं बल्कि कुत्ते आदि को भी नहीं छोड़ते

ब्राह्मणों की रीतियां।

चार वर्णों में से प्रत्येक के लिए आवश्यक है कि सहभोज के समय अपनी अपनी मण्डली बना कर बैठें; और एक मण्डली में दो मनुष्य भिन्न भिन्न वर्णों के न हों। इसके अतिरिक्त यदि ब्राह्मण-मण्डली में दो ऐसे मनुष्य हैं जिनका आपस में वैर है, और उन दोनों के मण्डली में बैठने के स्थान एक दूसरे के पास पास हैं, तो वे उन दोनों स्थानों के बीच एक तख्ता रख कर या कपड़ा बिछा कर या किसी अन्य प्रकार से एक आड़ खड़ी कर लेते हैं। यदि उनके बीच में एक लकीर ही खेंच दी जाए तब भी वे अपने आपको एक दूसरे से अलग समझते हैं। उनमें दूसरों का झूंठा खाना मना है इसलिए प्रत्येक अपना अपना भोजन अलग रखता है। भोजन करने वालों में से यदि कोई एक थाली में से कुछ भोजन खाले तो उसके खा चुकने पर जो कुछ थाली में शेष बचे वह उसके बाद के दूसरे खाने वालों के लिए झूंठा हो जाता है; उसका खाना मना है।

पृष्ठ ५०।

चार वर्णों की ऐसी अवस्था है। अर्जुन ने चारों वर्णों के स्वभाव, कर्म्म, और लक्षण पूछे जिस पर वासुदेव ने उत्तर दिया :—

"ब्राह्मण में प्रचुर बुद्धि, शान्त हृदय, सत्यभाषण, और यथेष्ट धैर्य्य

होना चाहिए। वह इन्द्रियों का स्वामी, न्याय-प्रेमी, स्पष्ट शुद्ध, सदा ईश्वर भक्ति में निमग्न, और पूर्ण धार्म्मिक होना चाहिए।

"क्षत्रिय ऐसा हो जिससे लोगों के हृदय भयभीत रहें, बड़ा शूरवीर और उदार-चरित हो, प्रत्युत्पन्न वक्ता और उदार दानी हो; और निर्भयता-पूर्वक सदैव अपने कर्तव्य का भली भाँति पालन करने पर तुला रहे।

"वैश्य का कर्म्म खेती वाड़ी करना, पशुओं का प्राप्त करना, और व्यापार करना है।

"शूद्र का कर्तव्य अपने से उच्च वर्णों की सेवा करना है जिससे वे उसे पसन्द करें।

"इनमें से प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति अपने अपने कर्तव्यों और रीतियों का पालन करता हुआ इच्छित आनन्द-लाभ कर सकता है, पर साथ ही यह आवश्यक है कि वह भगवद्भक्ति में किसी प्रकार का आलस्य न करे, और बड़े से बड़े कार्य्य में भी परमेश्वर को न भूले। अपने वर्ण के कर्त्तव्यों और कर्म्मों को छोड़ कर दूसरे वर्ण के कर्त्तव्य ग्रहण करना (चाहे ऐसा करने से किसी की यश-वृद्धि ही होती हो) पाप है, क्योंकि इससे मर्यादा का उल्लङ्घन होता है"।

फिर वासुदेव उसे शत्रु के साथ युद्ध के लिए प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं :—

"हे महाबाहो! क्या तू नहीं जानता कि तू क्षत्रिय है; तेरी जाति शूरता से आक्रमण करने के लिए वीर बनी है। तुझे काल के परिवर्तनों पर कुछ ध्यान न देना चाहिए और भावी विपत्ति को देख कर डर न जाना चाहिए क्योंकि उसी से फल मिलेगा। यदि क्षत्रिय जीत जाये तो उसे राज्य और सम्पत्ति मिलती है। यदि वह मर जाये तो उसे स्वर्ग और परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसके विरुद्ध तू

शत्रु के सन्मुख अपनी निर्बलता प्रकट कर रहा है और इस दल को मारने के विचार से ही उदास दीख पड़ता है; परन्तु यदि तेरा नाम डरपोक, भीरु, और कायर प्रसिद्ध हो गया तो बहुत बुरी बात होगी। वीरों और युद्धविशारदों में तेरा यश सब नष्ट हो जायगा और उन लोगों में तेरी कभी चर्चा न होगी। ऐसी दुर्दशा से बढ़ कर और दण्ड क्या हो सकता है ? ऐसा कलङ्क लेने से तो मर जाना अच्छा है। इसलिए यदि परमात्मा ने तुझे लड़ने की आज्ञा दी है, और यदि उसने तेरे वर्ण के सिपुर्द लड़ने का काम किया है और तुझे इसी काम के लिए उत्पन्न किया है, तो निष्काम भाव और दृढ़ सङ्कल्प से उसकी आज्ञा और इच्छा का पालन कर, ताकि तेरे सभी काम उसी के अर्पण हों"।

मोक्ष और भिन्न भिन्न वर्ण।

इन वर्णों में से किसको मोक्ष मिलेगी इस विषय में हिन्दुओं का परस्पर मतभेद है। कई एक तो कहते हैं कि मुक्ति केवल ब्राह्मणों और क्षत्रियों को ही मिल सकती है, क्योंकि दूसरे लोग वेद नहीं पढ़ सकते; परन्तु हिन्दू तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि सब वर्ण और सारी मानव जाति मुक्ति प्राप्त कर सकती है—यदि उनमें मोक्ष-प्राप्ति की पूर्ण इच्छा हो। इस विचार का आधार व्यास का निम्न-लिखित वाक्य है:—

"पच्चीस पदार्थों को पूर्णतया जानना सीखो। फिर तुम चाहे किसी मत के अनुयायी हो तुम्हें निस्संदेह मोक्ष प्राप्त होगी"। वासुदेव का शूद्र के कुल में उत्पन्न होना, और अर्जुन को कही हुई उसकी यह बात भी इस सिद्धान्त की पुष्टि करती है—"परमात्मा अन्याय और पक्षपात से रहित होकर फल देता है। वह पुण्य को भी पाप समझता है—यदि पुण्य करते समय मनुष्य उसे भूल जाए। वह पाप को पुण्य समझता है—यदि पाप करते समय लोग उसे नहीं

भूलते; चाहे वे लोग वैश्य हों, शूद्र हों, या स्त्री हों। यदि वे लोग ब्राह्मण या क्षत्रिय हुए तो यह बात औरभी अधिक होगी। पृष्ठ ५१

दसवाँ परिच्छेद ।

उन के धार्म्मिक तथा नागरिक नियमों का मूल ; भविष्यद्वक्ता; और साधारण धार्म्मिक नियमों का लोप होसकता है या नहीं ।

यूनानी ऋषियों द्वारा स्थापित नियम तथा धर्म्म ।

प्राचीन यूनानी लोग अपने लिए धार्म्मिक तथा नागरिक नियम अपने ऋषियों से बनवाया करते थे । उन का विश्वास था कि सोलन, ड्रैको, पाईथेगोरस, मीनस इत्यादि ऋषियों को ईश्वरीय सहायता मिलती थी । उन के राजा भी उनके लिए नियम बनाया करते थे । मूसा के कोई दो सौ वर्ष पश्चात् जब मियानस सागर के द्वीपों और क्रेटन पर राज्य करता था तो वह भी नियम बनाया करता था, परन्तु प्रकट यह करता था कि मेरे पास ये नियम ज़ीउस (इन्द्र) ने बना कर भेजे हैं । उन्हीं दिनों मीनस भी अपने नियम बना कर दिया करता था ।

कायरस के उत्तराधिकारी प्रथम डेरियस के समय में रोमन लोगों ने एथन्स वालों के पास दूत भेज कर बारह पुस्तकों में नियम मँगाये थे और पम्पिलियस (नूमा) के शासन-काल तक वे उन्हीं नियमों का अनुसरण करते रहे । पम्पिलियस ने नये नियम बनाये । इसी ने वर्ष के बारह मास बनाये, इससे पूर्व दस मास का वर्ष होता था । ऐसा प्रतीत होता कि उसने अपनी नवीन बातें रोम वालों की इच्छा के विरुद्ध ही चलाईं क्योंकि उसने लेह देन में चाँदी के सिक्कों के स्थान में चाम और मिट्टी

के बर्तनों के टुकड़े चलाने की आज्ञा दी। इस से विद्रोही प्रजा के विरुद्ध उसका कोप टपकता है।

प्लेटो के नियमों से अवतरण ।

प्लेटो की "नियमों की पुस्तक" के प्रथम अध्याय में एथन्स का परदेशी कहता है।–"तुम्हारे विचार में किस मनुष्य ने तुम्हें पहले नियम दिये ? वह देवता था या मनुष्य ?" कनोसस के मनुष्य ने कहा :—"वह देवता था। वस्तुतः हम तो यह समझते हैं कि नियम बनाने वाला ज़ीउस (इन्द्र) था, पर लाकाडीमोनिया वालों का विश्वास है कि अपोलो (सूर्य्य) व्यवस्थापक था।"

इस के अतिरिक्त वह उसी अध्याय में कहता है :—"व्यवस्थापक का, यदि वह परमात्मा की ओर से आया है, यह धर्म्म है कि बड़े से बड़े पुण्य और उच्च से उच्च न्याय की प्राप्ति को अपने व्यवस्थापन का उद्देश्य बनावे" ।

क्रेटन लोगों के नियमों के विषय में वह कहता है कि वे ऐसे उत्तम हैं कि जो लोग उन का सदुपयोग करते हैं उन को पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है क्योंकि उनके द्वारा वे सारा मानव–मङ्गल प्राप्त करलेते हैं जिस का आधार कि ईश्वरीय मङ्गल है।

एथन्स-निवासी उसी पुस्तक के द्वितीय अध्याय में कहता है:— "देवताओं ने मनुष्य पर दया दिखा कर, क्योंकि मनुष्य दुःखों के लिए ही उत्पन्न हुए हैं, उनके लिए देवों, विद्यादेवियों, विद्यादेवियों के राजा अपोलो (सूर्य्य), और डायोन्यसस के उत्सव बनाये। डायोन्यसस ने बुढ़ापे की कटुता को दूर करने के लिए मनुष्य को मदिरारूपी औषध दी ताकि वृद्ध लोग खिन्नता को भूल कर और आत्मा को दुःखितावस्था से स्वस्थावस्था में लाकर पुनः यौवन का आनन्द लूटें।"

इसके अतिरिक्त वह कहता है:—"मनुष्यों की क्लान्ति और परिश्रम

के बदले में उन्होंने उनको नाचने की विधि और शुद्ध ताल स्वर दैव-ज्ञान द्वारा सिखलाये हैं ताकि वे सम्भोजों और उत्सवों में उनके साथ इकट्ठा रहने के अभ्यासी हो जायें। इसीलिए वे अपने एक प्रकार के सङ्गीत को स्तुति कहते हैं जिसमें परोक्ष रीति से देवताओं की प्रार्थनाओं की ओर संकेत है।"

यूनानियों की अवस्था आप सुन चुके; यही हाल हिन्दुओं का समझिए। उनका विश्वास है कि धर्म्मशास्त्र और उसकी साधारण आज्ञाएँ ऋपियों अर्थात् पुण्यात्माओं द्वारा बनी हैं। ये ऋपि उनके धर्म्म के स्तम्भ हैं। वे भविष्यद्वक्ता अर्थात् नारा-यण को जो इस संसार में आते समय मनुष्य-देह धारण करता है—इनका स्रोत नहीं मानते। जिस पाप से संसार को हानि पहुँचने का भय हो उसकी जड़ को काटने या संसार में फैली हुई ख़राबी को दूर करने के लिए ही नारायण इस लोक में आता है। नियमों का आपस में इससे बढ़ कर अदल बदल नहीं हो सकता, क्योंकि इन लोगों को जिस रूप में नियम मिलते हैं उसी रूप में उन्हें वर्तने लग जाते हैं। अतः नियम और पूजन के सम्बन्ध में वे अव-तारों के बिना भी काम चला लेते हैं, यद्यपि सृष्टि के अन्य कार्यों में उन्हें कई बार इनकी आवश्यकता पड़ती है।

हिन्दू स्मृतियों के कर्त्ता ऋपि लोग। पृष्ठ ५२

ऐसा प्रतीत होता है कि नियमों का लोप करना हिन्दुओं के लिए असम्भव नहीं, क्योंकि वे कहते हैं कि कई वस्तुयें जो आज निपिद्ध समझी जाती हैं वासुदेव के प्रादुर्भाव के पूर्व निपिद्ध न थीं; जैसे कि गोमांस। मनुष्य-प्रकृति में परिवर्तन होने और उनके स्वकर्त्तव्यों के सारे बोझ को उठाने में अशक्त हो जाने के कारण ही इन परिवर्तनों की आवश्यकता होती है। विवाह-प्रणाली और सन्तति-सिद्धान्त के परिवर्तन भी इन्हीं में से हैं। प्राचीन

नियमों का लोप किया जाये या न किया जाये।

समय में सन्तति या आत्मीयता का निश्चय करने की तीन विधियाँ थीं:—

१. धर्म्मशास्त्र की रीति से व्याही हुई स्त्री से उत्पन्न हुआ बालक पिता का बालक है—जैसा कि हम लोगों और हिन्दुओं में माना जाता है।

विवाह की भिन्न भिन्न प्रणालियाँ।

२. यदि एक मनुष्य एक स्त्री से विवाह करता है— पर विवाह में यह प्रतिज्ञा हो जाती है कि जो सन्तान उत्पन्न होगी वह स्त्री के पिता की कहलायेगी—तो जो बालक उत्पन्न होगा वह नाना का होगा जिसने कि वह प्रतिज्ञा कराई थी, न कि बालक के प्रकृत पिता का जिसने कि उसे जन्म दिया।

३. यदि पर पुरुष किसी विवाहिता स्त्री में सन्तान उत्पन्न करे तो वह सन्तान उसके प्रकृत पति की होगी, क्योंकि स्त्री एक प्रकार की भूमि मानी गई है जिसमें कि सन्तान उगती है, और यह भूमि पति की सम्पत्ति है। इसमें यह बात पहले से ही मान ली गई है कि बीज बोने का कर्म्म अर्थात् सम्भोग पति की अनुमति से किया गया है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार पाण्डु शान्तनु का पुत्र माना गया था क्योंकि यह राजा एक मुनि के शाप के कारण अपनी स्त्रियों के साथ सम्भोग करने में सर्वथा असमर्थ था। साथ ही पहले कोई सन्तान न होने से वह बहुत दु:खित था। उसने पराशर के पुत्र व्यास से प्रार्थना की कि मेरी स्त्रियों में मेरे लिए सन्तान उत्पन्न कर दीजिए। पाण्डु ने उसके पास एक स्त्री भेजी, पर जब वह उसके साथ सम्भोग-करने लगा तो वह डर गई और काँपने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके गर्भ में एक पीत वर्ण रोगी बालक रह गया। तब राजा ने दूसरी स्त्री

व्यास और पाण्डु की कथा।

भेजी। उसने भी हृदय में व्यास के लिए भारी सम्मान का अनुभव किया और लज्जा से अपने आप को कपड़े में ढाँप लिया, फलतः उसके धृतराष्ट्र ऐसा रोगी और नेत्रहीन बालक उत्पन्न हुआ। अन्ततः उसने तीसरी स्त्री भेजी, और उसे समझा दिया कि मुनि से किसी प्रकार का भय या लज्जा न करे। वह हँसती खेलती उसके पास गई जिससे उसके गर्भ में ऐसा बालक रहा जो चन्द्र के समान सुन्दर और चतुराई तथा निर्भयता में एक ही था।

व्यास की उत्पत्ति।

पाण्डु के चार पुत्रों की एक स्त्री थी। यह बारी बारी से एक एक मास प्रत्येक के पास रहती थी। हिन्दुओं की पुस्तकों में लिखा है कि एक दिन पराशर मुनि एक नाव में यात्रा कर रहे थे। नाव में माँझी की लड़की भी बैठी थी। वे उस पर आसक्त हो गये और उसे प्रलोभन देकर फँसाना चाहा। अन्ततः वह मान गई। परन्तु नदी के तट पर लोगों से छिपने के लिए कोई ओट न थी। अपितु तत्क्षण ही वहाँ एक बंसलोचन का वृक्ष उग आया जिससे उन्हें कार्य्यसिद्धि में सुभीता हो गया। तब उसने उसके साथ उस वृक्ष की ओट में सम्भोग किया और वह गर्भवती हो गई। इससे उसे सर्वश्रेष्ठ पुत्र व्यास उत्पन्न हुआ।

तिब्बती और अरबी लोगों में विविध प्रकार के विवाह।

ये सब रीतियाँ अब बन्द और लुप्त हो गई हैं। इसलिए उनके ऐतिह्य से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उनमें नियमों का लोप कर देने की आज्ञा है। अस्वाभाविक प्रकार के विवाहों के विषय में हमें कहना पड़ता है कि वे अरबी लोगों के मुसलमान बनने के पूर्व भी होते थे और अभी तक हमारे समय में भी पाये जाते हैं, क्योंकि जो गिरिमाला पंचीर प्रदेश से आरम्भ होकर कश्मीर के पड़ोस तक चली गई है उसके अधिवासियों में अभी तक यह प्रथा प्रचलित है कि कई भाई मिल कर एक स्त्री रख

लेते हैं। मुसलमानी धर्म्म को न ग्रहण करने वाले अरबी लोगों में भी विवाह कई प्रकार के होते थे :—

१. एक अरबी अपनी स्त्री को किसी दूसरे के पास सम्भोग करने के लिए जाने की आज्ञा देता था। फिर वह जब तक गर्भ रहे उससे सर्वथा अलग रहता था क्योंकि वह उससे एक सत्कुलीन और उदार सन्तान की अभिलाषा रखता था। यह हिन्दुओं के तीसरे प्रकार के विवाह के सदृश है।

पृष्ठ ५१।

२. दूसरा ढंग यह था कि एक अरबी दूसरे से कहता था—"तुम मुझे अपनी स्त्री देदो, मैं तुम्हें अपनी देता हूँ"। इस प्रकार वे अपनी स्त्रियाँ बदला लेते थे।

३. तीसरा ढंग यह है कि अनेक पुरुष एक पत्नी से सम्भोग करते थे। जब बालक उत्पन्न होता था तो वह आप बतला देती थी कि इसका पिता कौन सा है। यदि वह न बताती थी तो दैवज्ञ ज्योतिषी को यह बात बतलानी पड़ती थी।

४. निकाहल मक्त अर्थात् जब मनुष्य अपने पिता या पुत्र की विधवा से विवाह करले तो उनकी सन्तान दैज़न कहलाती थी। यह प्रायः वही बात है जो यहूदियों के एक विशेष प्रकार के विवाह में पाई जाती है, क्योंकि यहूदियों में यह नियम है कि यदि किसी का भाई सन्तानहीन मर जाय तो उसे उसकी विधवा के साथ विवाह करके मृत भाई की वंशावली जारी रखने के लिए अवश्य सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए। यह सन्तान मृतक की समझी जाती है, प्रकृत पिता की नहीं। इस प्रकार वह उसके नाम को संसार से मिट जाने से बचाता है। जिस मनुष्य का इस प्रकार विवाह हो उसे इबरानी भाषा में याभाम कहते हैं।

प्राचीन ईरानियों में विवाह की रीति।

मग लोगों में भी इसी प्रकार की एक संस्था है। तौसर की पुस्तक या वड़ी हरवध वावक के पुत्र अर्दशीर पर पदशवार-गिरशाह के किये हुए आक्षेपों का उत्तर रूप है। इसमें एक मनुष्य के दूसरे का प्रतिपुरुष बन कर विवाहे जाने की विधि का विधान है। यह रीति फ़ारिस वालों में प्रचलित थी। यदि कोई मनुष्य सन्तानहीन मर जाये तो अन्य लोगों को उसकी अवस्था की जाँच करनी होती है। यदि मृतक के पीछे उसके स्त्री हो तो लोग उसे उसके निकटतम बन्धु के साथ ब्याह देते हैं। यदि उसकी स्त्री न हो तो वे उसकी लड़की अथवा निकटतम स्त्री-बन्धु को परिवार के निकटतम पुरुष-बन्धु के साथ ब्याह देते हैं। यदि उसकी कोई भी स्त्री वाक़ी न हो तो वे मृतक के धन द्वारा किसी अन्य स्त्री को, उसके कुल के लिए विवाहार्थ याचना करते हैं और उसे किसी पुरुष-बन्धु से ब्याह देते हैं। ऐसे विवाह की सन्तान मृतक की सन्तान समझी जाती है।

जो मनुष्य इस कर्तव्य पर ध्यान नहीं देता और इसका पालन नहीं करता वह असंख्यात आत्माओं का घात करता है क्योंकि वह मृतक के वंश और नाम को सदैव के लिए काट देता है।

इन बातों का यहाँ उल्लेख करने से हमारा तात्पर्य्य यह है कि पाठकों को ज्ञात हो जाये कि इस्लाम की संस्थायें कैसी उत्तम हैं। इस्लामी संस्थाओं से पृथक् रीति रिवाजों की बड़ी भारी मलिनता भी इससे स्पष्ट दीखने लगती है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

मूर्ति-पूजन का आरम्भ और प्रत्येक प्रतिमा का वर्णन ।

मनुष्य-प्रकृति में ही प्रतिमा पूजन का मूल है।

यह बात हर कोई जानता है कि सर्वसाधारण की प्रवृत्ति इन्द्रिय गोचर वस्तुओं की ओर होती है। निगूढ़ विचारों से वे घबराते हैं। इन सूक्ष्म विचारों को समझने वाले सब कालों में और सब कहीं केवल थोड़े से ही उच्च-शिक्षा-प्राप्त मनुष्य होते हैं। जन साधारण मूर्तिमान् चित्र देख कर ही सन्तुष्ट होते हैं। इसलिए कई एक धार्म्मिक सम्प्रदायों के नेता सत्य मार्ग से इतने विचलित हो गये हैं कि उन्होंने इन चित्रों को अपनी पुस्तकों और पूजनालयों में स्थान दे डाला है, यथा यहूदी, ईसाई और सबसे बढ़ कर मनीचियन लोग। मेरे इन शब्दों की सत्यता की जांच करनी हो तो भविष्यद्वक्ता (मुहम्मद साहब) अथवा मक्के और काबे का चित्र बना कर तनिक किसी अशिक्षित स्त्री या पुरुष को दिखलाइए। वह इसे देख कर इतना प्रसन्न होगा कि उसे चूमने लग जायगा, अपने कपोलों को उसके साथ मलेगा, और उसके सामने मिट्टी में लुढ़केगा मानों वह चित्र को नहीं बल्कि मूल पदार्थ को देख रहा है, और मानों वह किसी तीर्थ-स्थान में यात्रा का अनुष्ठान कर रहा है।

यही कारण है जिससे अत्यन्त श्रद्धाभाजन मनुष्यों, अवतारों, ऋषियों, मुनियों और देवताओं की अनुपस्थिति में अथवा उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी स्मृति को क़ायम रखने के लिए स्मारक-चिह्न और प्रतिमूर्तियाँ बनाने की उत्तेजना मिलती है—ताकि उनकी मृत्यु के

पश्चात् मनुष्यों के हृदयों में उनके लिए चिरस्थायी सम्मान बना रहे। जब इन स्मारक-चिह्नों को बने कई पीढ़ियाँ और शताब्दियाँ व्यतीत हो जाती हैं तो इनकी मूल व्युत्पत्ति को लोग भूल जाते हैं और ये चिन्ह एक प्रचलित रीति रह जाते हैं तथा इनका सम्मान करना एक साधारण नियम बन जाता है। यह बात मनुष्य-प्रकृति में गहरी गड़ी है। इसी से प्राचीन व्यवस्थापकों ने मनुष्यों की इस त्रुटि से लाभ उठाते हुए उन पर प्रभाव जमाने का यह यत्न किया था और चित्रों और ऐसे ही अन्य स्मारक-चिह्नों का पूजन उनके लिए अनिवार्य्य ठहराया था। इस का विस्तृत वर्णन जल प्रलय के पूर्व तथा पश्चात् के ऐतिहासिक लेखों में पाया जाता है। यहाँ तक कि कई मनुष्य यह जानने का भी बहाना करते हैं कि परमात्मा की ओर से भविष्यद्वक्ताओं के आने के पूर्व सारी मानव-जाति मूर्ति-पूजक थी।

पृष्ठ ५४

तौरेत के अनुयायी मूर्त्ति-पूजन का आरम्भ इब्राहीम के पड़दादे सरुग के समय से बताते हैं। इस विषय में रोमन लोगों में निम्न-लिखित ऐतिह्य प्रचलित है—फ्रांक्स देश के रोमूलस और रोमानस (!) नामक दो भाइयों ने राजसिंहासन पर बैठ कर रोम नगर को बसाया। तब रोमूलस ने अपने भाई को मार डाला। इससे चिरकाल पर्य्यन्त देश में युद्ध और उपद्रव मचा रहा। जब रोमूलस का गर्व टूटा तो उसने स्वप्न देखा कि शान्ति तभी होगी जब वह अपने भाई को सिंहासन पर बैठायगा। उसने उसकी एक स्वर्ण की मूर्ति बना कर अपने साथ बिठला ली और तब से वह हमारी (मेरी नहीं) ऐसी आज्ञा है" इस प्रकार कहने लगा। (उसी समय से राजा लोगों में हम बोलने की रीति चली आती है) इससे सब अशान्ति दूर हो गई। फिर जो लोग भ्रातृवध

रोमूलस और रेमस की कथा।

के कारण उससे अप्रसन्न थे उन्हें अपने पक्ष में लाने के लिए उनके मनोरञ्जनार्थ उसने एक भोज दिया और उन्हें एक नाटक दिखलाया । इसके अतिरिक्त उसने सूर्य्य का एक स्मारक-चिह्न प्रतिष्ठित किया । इसमें चार मूर्तियाँ चार घोड़ों पर बैठी थीं । हरी पृथ्वी की, नीली जल की, लाल अग्नि की, और श्वेत वायु की । यह स्मारक-चिह्न अभी तक रोम नगर में विद्यमान है ।

मूर्ति-पूजन केवल नीच श्रेणियों तक ही परिमित है ।

इस विषय में हमें हिन्दुओं के सिद्धान्तों और शैली का वर्णन करना है इसलिए अब हम उन के हास्यजनक विचारों का उल्लेख करते हैं, पर साथ ही यह स्पष्ट कहदेना चाहते हैं कि ऐसे विचार केवल अशिक्षित जनता में ही मिलते हैं । जो लोग मोक्ष-मार्ग पर चल रहे हैं, अथवा जो दर्शन-शास्त्र तथा ब्रह्म विद्या का अध्ययन कर रहे हैं, और जो निर्मल सत्य को, जिसे वे सार कहते हैं, प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य के पूजन की आवश्यकता नहीं । वे उसे दर्शाने के लिए बनाई हुई मूर्तियों के पूजन का कभी स्वप्न में भी विचार नहीं करते । शौनक ने जो निम्नलिखित दृष्टान्त राजा परीक्ष (परीक्षित) को सुनाया था उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है:—

राजा अम्बरीप और इन्द्र की कथा ।

एक समय अम्बरीप नाम का एक राजा था । उसका सार्वभौम राज्य था । पीछे से वह राज्य से विरक्त हो गया और संसार से उपरत होकर चिरकाल तक ईश्वर-चिन्तन और भगवद्भक्ति में निमग्न रहा । अन्त को भगवान् ने देवताओं के राजा इन्द्र के रूप में हाथी पर चढ़ कर उसे दर्शन दिये । वे राजा से बोले:—"माँग, जो कुछ तू माँगेगा, वही मैं तुझे दूँगा ।"

राजा ने उत्तर दिया:—"मैं तेरे दर्शन पाकर बहुत कृतार्थ हुआ,

जो सौभाग्य और सहायता तू ने मुझे प्रदान की है उसके लिए तेरा धन्यवाद है। परन्तु मैं तुझ से कुछ नहीं चाहता। मैं उसी से माँगता हूँ जिसने तुझे उत्पन्न किया है।"

इन्द्र बोलाः—"पूजा का उद्देश उत्तम फल लाभ करना है इसलिए अपने उद्देश्य को समझो। जो आज तक तुम्हारी मनोकामनाओं को पूर्ण करता रहा है उसी के दिये हुए फल को स्वीकार करो। 'तुम से नहीं दूसरे से' ऐसे कह कर पसन्द मत करते फिरो।"

राजा ने उत्तर दियाः—"मैं सारी पृथिवी का स्वामी हूँ पर इसके सकल पदार्थों की मैं कुछ भी परवा नहीं करता। मेरी पूजा का उद्देश्य भगवान् के दर्शन पाना है और यह चीज़ देने में तू असमर्थ है, अतः अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए मैं तुझ से किस लिए प्रार्थना करूँ?"

"इन्द्र ने कहाः—"सारा संसार और जो कुछ उसके अन्तर्गत है सब मेरे अधीन हैं। तुम कौन हो जो मेरा विरोध करो?"

राजा ने उत्तर दियाः—"मैं भी सुनता हूँ और आज्ञापालन करता हूँ, परन्तु मैं पूजन उसी का करता हूँ जिसने तुम्हें यह शक्ति प्रदान की है, जो ब्रह्माण्ड का स्वामी है, और जिस ने राजा बलि और हिरण्याक्ष के आक्रमणों से तेरी रक्षा की थी। इसलिए मुझे अपनी मौज करने दो। मेरा अन्तिम नमस्कार है; कृपया यहाँ से पधारिए।"

इन्द्र बोलाः—"यदि तुम मेरा सर्वथा विरोध करोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा और तुम्हारा सर्वनाश कर दूँगा।"

राजा ने उत्तर दियाः—"लोग कहते हैं सुख की ईर्ष्या होती है पर दुःख की नहीं। जो मनुष्य संसार से उपरत हो जाता है देवगण उससे ईर्ष्या करने लगते हैं और उसे सत्य-मार्ग से विचलित कर देने

का यत्न करते हैं । मैं उन लोगों में से हूँ जिन्होंने संसार का सर्वथा परित्याग कर दिया है और जो भगवद्भक्ति में निमग्न हो गये हैं। जब तक मुझ में प्राण हैं मैं इसे कभी न छोड़ूँगा । मैं नहीं जानता मैं ने कौन सा अपराध किया है जिसके लिए मैं तुझ से मृत्यु-दण्ड पाने का अधिकारी हूँ । यदि तू विना अपराध के ही मुझे मारना चाहता है तो तेरी इच्छा । तू मुझ से क्या चाहता है ? यदि मेरी ईश्वर-भक्ति सर्वथा विशुद्ध और निष्काम है तो तुझ में मुझे हानि पहुँचाने का सामर्थ्य नहीं । जिस आराधना में मैं लग रहा हूँ, मेरे लिए वह पर्य्याप्त है, अब मैं फिर उसी में मग्न होता हूँ ।"

पृष्ठ ५५

राजा ने भक्ति का परित्याग न किया इसलिए भगवान् भूरे कमल के सदृश रंग वाले मनुष्य के रूप में उसके सामने प्रकट हुए । वे गरुड़ पक्षी पर आरूढ़ थे । उनके चार हाथों में से एक में शंख था । यह एक प्रकार का समुद्री घोंघा होता है और इसे हाथी पर चढ़ कर बजाते हैं । दूसरे हाथ में चक्र था । यह एक प्रकार का गोलाकार तीक्ष्ण शस्त्र होता है । जिस वस्तु से यह लगता है उसे काटता चला जाता है । तीसरे हाथ में कवच और चौथे में पद्म अर्थात् लाल कमल था । जब राजा ने उन्हें देखा तो वह अत्यन्त सम्मान से काँप उठा और साष्टाङ्ग दण्डवत कर उनका गुणानुवाद करने लगा । भगवान् ने उसके भय को दूर करके उसे वर दिया कि तुम्हारी सब मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी । राजा बोला:—"मेरा निष्कंटक चक्रवर्ती राज्य था । मेरे जीवन की अवस्थाएँ ऐसी थीं कि रोग और शोक मुझे दुःखित न कर सकते थे । ऐसा जान पड़ता था मानों सारा संसार मेरे ही अधिकार में है । इस पर भी मैंने संसार से मुख मोड़ लिया, क्योंकि मैं ने समझ लिया कि इस की अच्छी चीज़ें वस्तुतः

अन्त में बुरी हैं। मुझे जो कुछ इस समय मिल रहा है उसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं। यदि इस समय मुझे किसी बात की इच्छा है तो वह यह है कि मैं इस बन्धन से मुक्त हो जाऊँ।"

भगवान् बोले:—"यह बात तुम्हें संसार से अलग रहने, एकान्त सेवन, निरन्तर चिन्तन और इन्द्रियों को दमन करने से प्राप्त होगी।"

राजा ने कहा:—"सम्भव है कि मैं तो भगवान् की कृपापूर्वक दी हुई शुचिता के प्रताप से ऐसा कर पाऊँ, पर दूसरे मनुष्य ऐसा कैसे कर सकेंगे? मनुष्य को भोजन और वस्त्र की आवश्यकता है। इससे वह संसार से बँधा हुआ है। वह किसी अन्य वस्तु का ख़याल कैसे कर सकता है?

भगवान् बोले—"अपने राजकार्य्य को जहाँ तक हो सके दूर-दृष्टि और निष्कपटता से करते हुए, संसार को सभ्य बनाने, पृथ्वी के लोगों को रक्षा प्रदान करने, और प्रत्येक कार्य्य के अनुष्ठान में लगे हुए सदैव अपना ध्यान मेरी ओर रक्खो। यदि मानव-विस्मृति तुम पर अधिकार जमा ले तो अपने लिए इस प्रकार की एक मूर्त्ति बना लो जिस में कि तुम मुझे देखो। उस पर सुगंधि और पुष्प चढ़ाओ और उसे मेरा स्मारक-चिह्न समझो, ताकि तुम मुझे भूल न जाओ। यदि तुम शोकातुर हो तो मेरा ध्यान करो। यदि बोलो तो मेरे लिए बोलो। यदि कर्म्म करो तो मेरे निमित्त करो।"

राजा बोला—"अब मुझे साधारणतः अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होगया है, परन्तु सविस्तर उपदेश देकर कृतार्थ कीजिए।"

भगवान् बोले—"यही तो मैं ने अभी कहा। मैं ने तुम्हारे

धर्म्माध्यक्ष वसिष्ट के मन में सब आवश्यक बातों का ज्ञान डाल दिया है। इसलिए सब बातों में उसी पर भरोसा रक्खो।"

तब वह मूर्ति उसकी दृष्टि के सामने से अन्तर्धान हो गई। राजा अपने घर लौट आया और जो आदेश हुआ था उसी के अनुसार कार्य्य करने लगा।

हिन्दू कहते हैं कि लोग उसी समय से मूर्त्तियाँ बनाने लगे हैं। जिस चतुर्भुजी रूप का हमने ऊपर उल्लेख किया है कई लोग उसके सदृश मूर्ति बनाते हैं, और जिस व्यक्ति की प्रतिमूर्ति बनानी हो उस के अनुरूप, कई एक कथाओं और वर्णनों के अनुसार, दो भुजा वाली बनाते हैं।

नारद और अग्नि से शब्द।

उन की एक और कथा इस प्रकार है। "ब्रह्मा का एक पुत्र था जिसका नाम था नारद। नारद के मन में भगवान् के दर्शनों की एक मात्र अभिलाषा थी। बाहर घूमने जाते समय वह हाथ में एक छड़ी रक्खा करता था। इस छड़ी को जब वह पृथ्वी पर फेंकता था तो वह सर्प बन जाती थी और वह उस से चमत्कार दिखला सकता था। इस छड़ी के बिना वह कभी बाहर नहीं जाता था। एक दिन अपनी आशाओं के विषय पर ध्यान लगाये वह मग्न बैठा था कि उसने दूर से अग्नि देखी। वह आग के निकट गया। आग में से ये शब्द उसे सुनाई दिये:—"जो कुछ तुम चाहते और माँगते हो वह असम्भव है। तुम मुझे इस रूप के सिवाय और किसी भी रूप में नहीं देख सकते।" जब उसने उस ओर दृष्टि-पात किया तो मनुष्याकार के सदृश एक ओजस्वी रूप देख पड़ा। उसी समय से विशेष आकृतियों वाली मूर्त्तियां बनाने की प्रथा चली।"

पृष्ठ ५६

उन की एक प्रसिद्ध मूर्ति मुलतान में थी। सूर्य्य को समर्पित होने के कारण वह आदित्य कहलाती थी। वह लकड़ी की बनी थी और ऊपर से लाल चमड़े में मढ़ी थी। उस के दोनों नेत्रों के स्थान में दो लाल पद्मराग थे। कहते हैं यह पिछले कृतयुग में बनी थी। यदि यह कल्पना कर ली जाय कि यह कृतयुग के अन्त में बनी तो उस समय से आज तक २१६,४३२ वर्ष हुए। जब मुहम्मद इब्न अलक़ासिम इब्न अलमुनब्बिह ने मुलतान को पराजित किया तो उसने पूछा कि नगर के इतना ऐश्वर्य्यवान होने और अनेक ख़ज़ानों के वहां इकट्ठा होने का कारण क्या है? इस पर उसे पता लगा कि इसका कारण यह मूर्त्ति ही है, क्योंकि चारों ओर से यात्री लोग उसके दर्शनार्थ आते थे। अतः उसने मूर्त्ति को वहीं का वहीं रहने दिया पर परिहास के लिए उस के गले में गो-मांस का एक टुकड़ा लटका दिया। उसी स्थान में एक मसजिद बना दी गई। जब क़रामत वालों ने मुलतान पर अधिकार पाया तो राज्यापहारी जलम इब्न शैबान ने मूर्त्ति को टुकड़े टुकड़े कर डाला और पुजारियों को मार डाला। उसने पुरानी मसजिद को छोड़ कर अपने भवन को, जो कि एक उच्च स्थान पर ईंटों का बना दुर्ग था, मसजिद बनाया। उमैया वंशीय ख़लीफ़ों के शासनकाल में किसी बात के हो जाने से जो घृणा उत्पन्न हो गई थी उसी के कारण उसने पुरानी मसजिद को बन्द करा दिया। पीछे से, पुण्यश्लोक राजा महमूद ने उन देशों में उनके राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर के फिर पुरानी मसजिद को शुक्रवार की नमाज़ (पूजा) का स्थान नियत किया और दूसरी मसजिद को उजाड़ दिया। आज कल यह केवल अनाज का खिलवाड़ा रह गई है जहां कि हिना (मेंहदी) के गुच्छे इकट्ठे बांधे हुए हैं।

मुलतान की आदित्य नामक मूर्ति।

अब यदि ऊपर दी हुई वर्ष-संख्या में से सैकड़ों, दहाइयों, और इकाइयों अर्थात् ४३२ वर्षों को, कोई १०० वर्ष के जोड़ फल का स्थूल तुल्यार्ध मान कर—क्योंकि क़रामत वालों का उदय हमारे समय से इतने ही वर्ष पहले हुआ—निकाल दिया जाय तो शेष हमारे पास कृत युग के अन्तकाल और हिजरी संवत् के आरम्भकाल के लिए २१६००० वर्ष रह जाते हैं। तब वह लकड़ी इतने दीर्घ काल तक कैसे रह सकी होगी, विशेषतया ऐसे स्थान में जहाँ कि भूमि और वायु दोनों नम हैं ? परमात्मा सर्वज्ञ है !

चक्र-स्वामिन् नाम की थानेश्वर की मूर्ति।

थानेश्वर (तानेपर ?) नगरी के लिए हिन्दुओं के हृदयों में पूजा का बड़ा भाव है। वहाँ की मूर्ति का नाम है चक्र-स्वामिन् अर्थात् चक्र का स्वामी। चकर एक प्रकार का शस्त्र है। इसका उल्लेख पहले हो चुका है। यह मूर्ति पीतल की बनी है और मनुष्य के बराबर लम्बी चौड़ी है। यह इस समय सोमनाथ स्वामी के साथ गज़नी नगरी की घुड़दौड़ के चक्कर में पड़ी है। सोमनाथ स्वामी महादेव के लिङ्ग अर्थात् मूत्र की इन्द्रिय की प्रतिमूर्ति है। इस का वर्णन उचित स्थल पर आगे किया जायगा। कहते हैं यह चक्र-स्वामिन् भारत के समय में महाभारत-युद्ध का स्मारक बनाया गया था।

कश्मीर में शारद की प्रतिमूर्ति।

अन्तर्वर्ती कश्मीर में, बोलर पर्वतों की ओर, राजधानी से तीन दिन के मार्ग पर एक शारद की मूर्ति है। इस का बड़ा पूजन होता है। असंख्य यात्री वहाँ जाते हैं।

वराहमिहिर की संहिता से अवतरण।

अब हम मूर्ति-निर्माण के विषय में संहिता से एक पूरा परिच्छेद यहाँ देते हैं। उपस्थित विषय को भली भांति समझने के लिए जिज्ञासु को इस से बड़ी सहायता मिलेगी।

वराहमिहिर कहता है—"यदि दशरथ के पुत्र राम अथवा विरोचन के पुत्र बलि की मूर्ति बनानी हो तो १२० कला ऊँची बनाओ!"

ये मूर्ति की कलायें हैं । इन्हें सामान्य अङ्कों में लाने के लिए इन में से इनका दशांश घटादेना चाहिए। अतः इस दशा में मूर्ति की ऊँचाई १०८ कला होगी ।

"विष्णु की मूर्ति के या तो आठ हाथ बनाओ, या चार, या दो, और बाईं ओर छाती के नीचे श्री स्त्री की मूर्ति बनाओ । यदि आठ हाथ बनाओ तो दहिने हाथों में से एक में कृपाण, दूसरे में सोने या लोहे की गदा, तीसरे में बाण पकड़ाओ, और चौथे को ऐसा बनाओ मानो जल खींच रहा है। बाएं हाथों में धनुष, चक्र और शंख पकड़ाओ । पृ० ११

"यदि तुम उसके चार हाथ बनाते हो तो धनुष, बाण, कृपाण, और ढाल को छोड़दो ।

"यदि दो हाथ बनाते हो तो दहिना हाथ पानी खींचता हुआ बनाओ और बाएं में शंख दो ।

"यदि नारायण के भाई बलदेव की मूर्ति बनानी हो तो उसके कानों में कुण्डल चाहिएं और आंखें मद्यप की सी ।

"यदि नारायण और बलदेव दोनों की मूर्ति बनाओ तो उन के साथ उन की बहिन भगवती (दुर्गा एकानंशा) को भी मिलादो। उस का बायाँ हाथ कक्ष से थोड़ा परे अङ्क पर धरा हो और दाहिने हाथ में एक पुस्तक तथा कमल का फूल पकड़ा दो ।

"यदि उसे चतुर्भुजी बनाते हो तो दाएं हाथों में से एक में जपमाला दो और दूसरे को जल खींचता हुआ बनाओ । बाएं हाथों में पुस्तक और कमल दो ।

"यदि उसे अष्टभुजी बनाना हो तो बांयें हाथों में कमण्डलु अर्थात् पात्र, कमल, धनुष, और पुस्तक दो; दाहिने हाथों में से एक में जपमाला, एक में दर्पण, एक में बाण और एक जल खींचता हुआ बनाओ ।

"यदि विष्णु के पुत्र साम्ब की मूर्ति बनानी हो तो केवल उसके दाहिने हाथ में एक गदा दे दो। यदि विष्णु के पुत्र प्रद्युम्न की मूर्ति हो तो उसके दाहिने हाथ में बाण और बाँये में धनुष दो। यदि उनकी दो स्त्रियाँ बनाते हो तो उन के दाहिने हाथ में कृपाण और बाँये में ढाल दो।

"ब्रह्मा की मूर्ति के चारों ओर चार मुख होते हैं और वह कमल पर बैठी होती है।

"महादेव के पुत्र स्कन्द की मूर्त्ति मोर पर चढ़ा हुआ एक लड़का होता है। उसके हाथ में एक शक्ति अर्थात् दुधारी तलवार जैसा एक शस्त्र होता है जिसके मध्य में ओखली के मूसल जैसा एक मूसल होता है।

"इन्द्र की मूर्त्ति के हाथ में एक शस्त्र होता है जिसे हीरे का वज्र कहते हैं। इसकी मूँठ शक्ति की मूँठ के समान होती है, परन्तु दोनों ओर दो दो कृपाणें होती हैं जोकि मूँठ में आकर मिली होती हैं। उसके ललाट पर एक तीसरा नेत्र होता है। वह चार दाँतों वाले श्वेत हाथी पर चढ़ा होता है।

"इसी प्रकार महादेव की मूर्ति के ललाट पर दाईं तरफ़ ऊपर की ओर एक तीसरा नेत्र बनाओ, उसके शिर पर एक अर्धचन्द्र, उस के हाथ में शूल नामक शस्त्र और एक कृपाण दो। शूल गदा के आकार का होता है और इसमें तीन शाखाएँ होती हैं। महादेव के बायें हाथ में उसकी स्त्री—हिमवन्त की पुत्री गौरी हो जिसे वह छाती से लगा रहा हो।

"जिन अर्थात् बुद्ध की मूर्त्ति का मुखमंडल तथा अङ्ग यथासंभव बहुत सुन्दर बनाओ। उसके पाँव और हथेलियों की रेखाएँ कमल के सदृश हों। उसे कमल पर बैठा हुआ दिखलाओ। उसके

बाल श्वेत हों, आकृति बड़ी शान्त हो, मानों वह सृष्टि का पिता है।

"यदि तुम अर्हन्त की मूर्ति बनाओ जो कि बुद्ध के शरीर का दूसरा रूप है, तो उसे एक नङ्गे युवा के रूप में दिखलाओ, जिसका मुख कि शोभायुक्त और सुन्दर हो, और जिसके हाथ घुटनों तक पहुँचते हों। उसकी स्त्री—श्री—की मूर्ति उसकी बाईं छाती के नीचे हो।

"सूर्य्य के पुत्र रेवन्त की मूर्ति व्याध की भाँति घोड़े पर चढ़ी हुई होती है।

"मृत्यु के देवता यम की मूर्ति भैंस पर सवार होती है और उसके हाथ में एक गदा होती है।

"सूर्य्य की मूर्ति का मुख लाल कमल के गूदे की भाँति लाल और हीरे की भाँति उज्ज्वल होना चाहिए। उसके अंग आगे को बढ़े हुए, कानों में कुण्डल, गले में मोतियों की माला, सिर पर कई छिद्रों वाला मुकुट, हाथ में दो कमल, और वस्त्र उत्तरीय लोगों की भाँति टखनों तक लम्बे होते हैं।

पृष्ठ ५८ "यदि सात माताओं की मूर्ति बनानी हो तो उन में से अनेक को एक मूर्ति में इकट्ठा दिखलाओ। ब्रह्माणी के चारों दिशाओं में चार मुख हों। कौमारी के छः मुख, वैष्णवी के चार हाथ, वाराही का शिर सूअर और शरीर मनुष्य के समान; इन्द्राणी की अनेक आंखें और उसके हाथ में गदा; भगवती (दुर्गा) साधारण लोगों की तरह बैठी हुई; चामुण्डा कुरूपा, दाँत आगे को बढ़े हुए और कटि-देश क्षीण हो। उनके साथ महादेव के पुत्रों को मिला दो-एक तो क्षेत्रपाल, जिसके पुलकित केश, मलिन मुख, और कुरूप आकृति है; परन्तु दूसरा विनायक जिसका धड़ मनुष्य का,

शिर हाथी का, और हाथ चार हैं जैसा कि हम पहले कह आये हैं।"

इन देव-प्रतिमाओं के पुजारी भेड़ों और भैंसों को कुल्हाड़ों से काटते हैं ताकि ये देवता उनके रुधिरसे अपना पोषण करें। प्रत्येक अंग के लिए मूर्ति-अँगुलियों द्वारा नियत किये हुए विशेष प्रमाणों के अनुसार ही सब मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। परन्तु कई बार किसी एक अङ्ग के मान के विषय में उन में मत-भेद भी पाया जाता है। यदि शिल्पी माप ठीक रखता है और किसी अङ्ग को न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा ही बनाता है तो वह पाप से रहित है और निश्चय ही जिस सत्ता की वह प्रतिमूर्ति बनाता है वह उस पर कोई विपत्ति न भेजेगी। "यदि वह मूर्ति को एक हाथ और सिंहासन सहित दो हाथ ऊँची बनायगा तो उसे उत्तम स्वास्थ्य और सम्पत्ति मिलेगी। यदि वह इससे भी अधिक ऊँची बनायगा तो उसकी प्रशंसा होगी।

"परन्तु उसे विदित होना चाहिए कि मूर्ति—विशेषतः सूर्य्य की मूर्ति—को बहुत बड़ा बनाने से राजा को, और बहुत छोटा बनाने से स्वयम् शिल्पी को हानि पहुँचती है। यदि वह उसका पेट पतला बनायगा तो इस से देश में दुर्भिक्ष बढ़ेगा, यदि पेट ढीला बनायगा तो सम्पत्ति नष्ट हो जायगी।

"यदि शिल्पी का हाथ फिसल जावे और मूर्ति पर घाव हो जाय तो इससे ख़ुद उसके ही शरीर में घाव लग जायगा जिससे उसकी मृत्यु हो जायगी।

"यदि यह पूर्णतया दोनों ओर से बराबर न हो जिससे एक कन्धा दूसरे की अपेक्षा ऊँचा हो जाय तो उसकी पत्नी मर जायगी।

"यदि वह नेत्रों को ऊपर की ओर फेर देता है तो वह उम्र भर के लिए अन्धा हो जाता है। यदि वह नीचे की ओर फेरता है तो

उसे अनेक कष्ट होते और शोकजनक दुर्घटनाएँ सहन करनी पड़ती हैं।"

किसी बहुमूल्य पत्थर की मूर्ति लकड़ी की मूर्ति से, और लकड़ी की मिट्टी की मूर्ति से अच्छी समझी जाती है। "बहुमूल्य पत्थर की मूर्ति देश के सब नर-नारियों के लिए मङ्गलकारिणी होती है। सुवर्ण की मूर्ति अपने स्थापन करनेवाले को शक्ति, चांदी की मूर्ति यश, काँसे की दीर्घ शासन-काल, और पत्थर की बहुत स्थावर सम्पत्ति पर अधिकार प्रदान करती है।"

हिन्दू लोग मूर्तियों का सम्मान उन्हें स्थापित करने वालों के कारण करते हैं न कि उस द्रव्य के कारण जिसकी कि वे बनी होती हैं। हम पहले कह आये हैं कि मुलतान की मूर्ति काठ की थी। असुरों के साथ युद्ध की समाप्ति पर जो मूर्ति राम ने स्थापित की थी वह रेत की थी। इस रेत को उसने स्वयम् अपने हाथ से इकट्ठा किया था। परन्तु तब वह सहसा पाषाण की बन गई, क्योंकि ज्योतिष के हिसाब से मूर्ति-स्थापन का ठीक मुहूर्त्त उस समय के पहले आ पड़ा था जब कि शिल्पी और मजूर लोग उस पाषाण-मूर्ति की कटाई समाप्त कर सके जिसके निर्माण के लिए कि राम ने वस्तुतः आज्ञा दी थी। देवालय और उसके चारों ओर स्तम्भों के बनाने, चार भिन्न भिन्न प्रकार के वृक्षों को काटने, स्थापना के लिए ज्योतिष के हिसाब से शुभ मुहूर्त्त निकालने, और ऐसे अवसर के अनुकूल अनुष्ठानों के पूरा करने आदि सब बातों के विषय में राम ने बहुत विस्तृत विधि बताई थी। इसके अतिरिक्त उसने आदेश किया था कि मूर्तियों के पुजारी और सेवक भिन्न भिन्न जातियों के लोग नियत किये जाएँ। "विष्णु की मूर्ति के पुजारी भागवत जाति के लोग हैं; सूर्य्य की मूर्ति के मग अर्थात् मजूस; महादेव की मूर्ति के भक्त-

एक प्रकार के साधु और यति हैं जो कि लम्बे लम्बे केश रखते हैं, शरीर पर विभूति रमाते हैं, अपने साथ मुर्दों की हड्डियाँ लटकाये फिरते हैं, और खप्परों में भोजन करते हैं। ब्राह्मण अष्ट मातात्र्यों के, शमन बुद्ध के, और नग्न लोग अर्हन्त के भक्त हैं । सारांश यह कि प्रत्येक मूर्ति के भक्त अलग अलग हैं, क्योंकि जिन लोगों ने जिसकी मूर्ति बनाई है वही उसका भली भांति पूजन करना जानते हैं" ।

पृष्ठ ५९

गीता के ऐसे अव-तरण जो यह स्पष्ट बत-लाते हैं कि परमात्मा देव-प्रतिमाओं से भिन्न वस्तु है ।

इस सारे उन्मत्त-चित्तविभ्रम के वर्णन से हमारा तात्पर्य यह था कि पाठकों को यदि कभी किसी देव-प्रतिमा के देखने का अवसर मिले तो वे उसका यथार्थ वृत्त जान लें और साथ ही उन्हें यह भी मालूम हो जाए कि ऐसी प्रतिमाएँ, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, केवल अशिक्षित तथा नीच जाति के मन्द-बुद्धि लोगों के लिए ही बनाई जाती हैं; और हिन्दुओं ने, परमात्मा की बात तो दूर रही, किसी अन्य अलौकिक सत्ता की भी कभी मूर्ति नहीं बनाई; और अन्त में उन्हें यह विदित हो जाय कि सर्वसाधारण किस प्रकार पुरोहितों के नाना प्रकार के प्रपंचों और छलों के द्वारा दासत्व में रक्खे जाते हैं। इसलिए गीता नाम की पुस्तक कहती है "बहुत से लोग अपनी आकांक्षाओं में मुझे किसी ऐसी वस्तु के द्वारा प्राप्त करने का यत्न करते हैं जो कि मुझ से भिन्न है। वे मुझ से भिन्न किसी दूसरी वस्तु के नाम पर दान, स्तुति, और प्रार्थना करके मेरे कृपापात्र बनना चाहते हैं। मैं फिर भी उनके इन सब कामों में उन्हें दृढ़ता और सहायता प्रदान करता हूँ और उनकी मनोवाञ्छित कामनाओं को पूर्ण करता हूँ क्योंकि मैं उनसे अलग रह सकता हूँ" ।

उसी पुस्तक में वासुदेव अर्जुन से कहते हैं :—"क्या तुम नहीं

देखते हो कि किसी वस्तु की कामना करने वालों में से बहुत से लोग अनेक प्रकार की आध्यात्मिक सत्ताओं और सूर्य्य, चन्द्र, तथा अन्य दिव्य पिण्डों का पूजन करते और उन्हें नैवेद्य चढ़ाते हैं ? यदि परमात्मा उनकी आशाओं को पूर्ण करता है (यद्यपि उसे उनसे अपना पूजन कराने की कोई आवश्यकता नहीं); यदि वह उन्हें उससे भी अधिक दे देता है जितने के लिए कि वे याचना करते हैं; यदि वह उनकी इच्छाओं को इस प्रकार पूर्ण करता है मानों उनका उपास्य देव—वह देव-मूर्ति—ही पूर्ण कर रहा है तो वे उन्हीं मूर्तियों को पूजते चले जायेंगे, क्योंकि उन्होंने उसे जानना नहीं सीखा, चाहे वही इस प्रकार बीच में आकर उनके कर्म्मों का उनकी कामना के अनुकूल फल देता है। परन्तु जो वस्तु कामना और बीच में पड़ने से प्राप्त होती है वह चिरस्थायिनी नहीं होती क्योंकि वह केवल किसी विशेष पुण्य का ही फल होती है। केवल वही वस्तु चिरस्थायिनी है जो अकेले परमात्मा से प्राप्त होती है। पर लोग वृद्धावस्था, मृत्यु, और जन्म (और मोक्ष के द्वारा इससे छुटकारा पाने की इच्छा) से घृणा करने लग जाते हैं"।

यह वासुदेव का कथन है। जब दैवयोग से मूर्ख-मण्डल को कुछ सौभाग्य अथवा लक्षित वस्तु प्राप्त हो जाती है, और जब इसके साथ पुरोहितों के उपर्युक्त छल-कपट का सम्बन्ध हो जाता है तो जिस अन्धकार के अन्दर वे रहते हैं वह बढ़ता है—उनकी बुद्धि नहीं बढ़ती। वे झट उन देव-प्रतिमाओं के पास भागे जाते हैं और अपने रक्त-पात तथा अंगच्छेदन से उनके सामने अपनी आकृति को बिगाड़ लेते हैं।

प्राचीन यूनानी भी देव-प्रतिमाओं को अपने और प्रथम कारण के बीच माध्यस्थ समझा करते थे और उच्च वस्तुओं तथा नक्षत्रों के नाम से उनका पूजन करते थे। वे प्रथम कारण का वर्णन भावसूचक

विशेषणों द्वारा नहीं वल्कि अभावसूचक द्वारा करते थे क्योंकि वे समझते थे कि वह इतना उच्च है कि मानुषी गुणों से उसका वर्णन नहीं हो सकता, और साथ ही वे उसे सर्व प्रकार की त्रुटियों से रहित वताना चाहते थे। इसी लिए पूजा में वे उसे सम्वोधन नहीं कर सकते थे।

जब प्रतिमापूजक अरवी लोग सिरिया देश से स्वदेश में देव-मूर्तियां लाये थे तो वे भी उनका पूजन इसी आशा से किया करते थे कि वे परमात्मा से उनकी वकालत करेंगी।

अफलातू अपनी "नियमों की पुस्तक" के चौथे अध्याय में कहता है :—"जो मनुष्य (देवताओं का) पूर्णरीति से पूजन करना चाहता है उसके लिए आवश्यक है कि देवताओं और सकीनात (विद्यादेवियों) के रहस्यों को परिश्रम से जान ले, और विशेष देव-मूर्तियों को पैतृक देवताओं की स्वामिनी न वनावे। इसके अतिरिक्त जीवित माता-पिता का यथासम्भव पूजन करना परम कर्तव्य है।"

रहस्य से अफलातू का तात्पर्य्य एक विशेष प्रकार की भक्ति से है। हर्रान के साइव लोगों, द्वैतवादी मनीचियों, और हिन्दुओं के ब्रह्मज्ञानियों, में इस शव्द का वड़ा प्रचार है।

जालीनूस अपनी किताव "अख़लाकुन नफ़्स" (De Indole Animæ) में कहता है कि "सम्राट क्रुमोदस के शासनकाल में, अर्थात् अलचेन्द्र (सिकन्दर) के पश्चात् ५०० से ५१० वर्ष के वीच, दो मनुष्य एक मूर्त्तियों के व्यापारी के पास गये और उससे हरमीस की एक मूर्त्ति का सौदा किया। उन मनुष्यों में से एक तो उस मूर्त्ति को एक देवालय में हरमीस के स्मारक-चिह्न के रूप में स्थापित करना चाहता था, और दूसरा उसे एक कृवर पर मृत मनुष्य की स्मारक-वस्तु के रूप में खड़ा करना चाहता था। पर वे व्यापारी

पृष्ठ ६०

के साथ मूल्य तै न कर सके अतः इस काम को उन्होंने दूसरे दिन के लिए छोड़ दिया। मूर्त्तियों के पुजारी ने उसी रात स्वप्न में देव-मूर्त्ति को देखा। मूर्त्ति उससे इस प्रकार कहने लगीः—"हे नरश्रेष्ठ! तू ने मुझे बनवाया है। मैं ने तेरे हाथों के द्वारा एक ऐसा आकार प्राप्त किया है जोकि एक तारे का आकार समझा जाता है। अब मैं पूर्ववत पाषाण नहीं रहा; मुझे लोग अब बुध देवता समझते हैं। अब यह बात तुम्हारे हाथ में है कि चाहे मुझे एक अनश्वर पदार्थ का स्मारक चिह्न बना दो, चाहे एक ऐसी वस्तु का जोकि पहले ही नष्ट हो चुकी है।"

अलक्षेन्द्र ने अरस्तू के पास ब्राह्मणों के कुछ प्रश्न भेजे थे जिनका उत्तर उस ने एक पुस्तक में दिया है। उसमें वह कहता हैः—"यदि तुम समझते हो कि कई यूनानियों ने यह झूठी कथा बना ली है कि देव-मूर्त्तियाँ बोलती हैं, और लोग उन्हें भेंट चढ़ाते और अमूर्त प्राणी समझते हैं, तो हमें इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं; और जिस विषय को हम नहीं जानते उसके विषय में एक वाक्य भी नहीं कह सकते।" इन शब्दों के द्वारा वह अपने आप को मूर्ख और अशिक्षित लोगों की श्रेणी से ऊपर उठा लेता है और यह प्रकट करता है कि वह स्वयम् ऐसी बातों में नियुक्त नहीं होता। यह स्पष्ट है कि मूर्त्ति-पूजन का प्रथम कारण मृतों के स्मरणोत्सव मनाने और जीवितों को सान्त्वना देने की अभिलाषा थी, परन्तु इस मूल से बढ़ते बढ़ते यह अन्त को एक हानिकारक और मलिन कुरीति बन गई है।

इस पहले विचार में कि देव-मूर्त्तियाँ केवल स्मारक-चिह्न ही हैं सिसली की मूर्त्तियों के विषय में ख़लीफ़ा मुआवीया भी सहमत है। जब संवत् ५३ हिजरी में सिसली विजय हुई और विजेताओं

ने मुकुटों और हीरों से जड़ित देव-मूर्त्तियों को, जोकि वहाँ उनके हाथ आईं, उसके पास भेज दिया तो उसने आज्ञा दी कि इन्हें सिंध देश में भेज कर वहाँ के राजाओं के हाथ वेच दिया जाय। इसका कारण यह था कि वह उन्हें इतने इतने दीनार की वहुमूल्य वस्तुएँ समझ कर वेच डालना ही अच्छा समझता था। उसे यह तनिक भी विचार न था कि ये मूर्त्तियाँ पूजन की जघन्य वस्तुएँ हैं। वह इस वात को राजनैतिक दृष्टि से देखता था न कि धार्म्मिक से।

टीका

टीका ।

पृष्ठ १. नाम—ग्रन्थकार अपने सारे लेख में हिन्दू-विचार-सरणि की यथार्थता (हक़ीक़त) को जानने का प्रस्ताव करता है। वह भारत के धार्मिक, साहित्यिक, और वैज्ञानिक ऐतिह्यों का वर्णन करता है न कि देश और उसके अधिवासियों का। फिर भी किसी किसी परिच्छेद में, जो कुछ पुस्तक के नाम से अनुमान होता है उससे अधिक—सड़कों और नदियों के मार्गों पर टीका-टिप्पणी—देता है।

एक मुसलमान ग्रन्थकार का प्रतिमा-पूजकों के विचारों—मुसलमानों के लिए न केवल उपादेय वल्कि हेय भी—का निरूपण करना, और क़ुरान तथा बाइबल दोनों के साथ ही साथ अवतरण देना, विचार की उस विशालता और मन की उस उदारता का प्रमाण है जो कि अलग़ज़ाली (१११११ ईसवी में मरा) के मुसलमानी हठधर्म्मी को प्रतिष्ठित करने के पहले प्राचीन इसलाम में प्रायः पाई जाती थी। जब इसलाम के सब राष्ट्रों के विचार ढल कर एकत्व को प्राप्त नहीं हुए थे, जब सारा इसलाम एक भारी धार्म्मिक समाज नहीं बना था, जिसमें कि मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के निमित्त स्थानीय और राष्ट्रीय प्रभेद अपने मौलिक महत्त्व को बहुशः खो बैठे प्रतीत होते थे, उस समय स्वतन्त्र विचार प्रकट करने के लिए अधिक क्षेत्र था। इसलाम के साहित्य में अलबेरूनी का काम अपूर्व है। उसने मूर्ति-पूजक जगत् के विचारों का अध्ययन करने के लिए सच्चा यत्न किया है। उन पर आक्षेप करने या उनका खण्डन करने के

प्रयोजन से उसने ऐसा नहीं किया। बल्कि जहाँ विरोधियों के विचार त्याज्य भी थे वहाँ भी वह पक्षपात-शून्य और समदर्शी बना रहने की अभिलाषा बराबर दिखला रहा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अन्य अवस्थाओं में, अन्य देशों और मुसलिम इतिहास के अन्य कालों में यह कार्य्य ग्रन्थकार के लिए प्राणघातक सिद्ध होता। इससे जान पड़ता है कि हिन्दू-मन्दिरों और देव-मूर्तियों के तोड़ने वाले सम्राट् महमूद की धार्म्मिक नीति, जिसके शासन-काल में कि अलबेरूनी ने यह पुस्तक लिखी, ऐसी उदार थी कि इसलाम के इतिहास में वैसी और कहीं दिखाई नहीं देती।

उस्ताद अबू सहल। काकेशस के अन्तर्गत तिफ़लीस नगर का रहने वाला था। इसके विषय में और कहीं से कुछ पता नहीं चलता। मेरा अनुमान है कि वह महमूद की कचहरी में एक उच्च-पदाधिकारी था। शब्द सहल उस समय के फ़ारस-वंशीय लोगों में प्रायः मिलता है, और उस्ताद की उपाधि तारीख़े बैहकी में महमूद और मसऊद के उच्चतम नागरिक कर्म्मचारियों और मंत्रियों के नामों के पहले सम्मानार्थ लगाई गई है—यथा बू सहल ज़ौज़नी, बू सहल हमदूनी, राजमंत्री बू नसर मुशकान जिसका अलबैहकी लेखाधिकारी था, और अलबेरूनी के नामों के साथ। यह उपाधि सैनिक लोगों के नामों के साथ कभी नहीं लगाई जाती। सीसान साम्राज्य के संगठन से कार्यनिर्वाहक-कौशल पिछलो शताब्दियों के फ़ारसियों को उत्तरदान रूप से मिला था, परन्तु रुस्तम के वंशजों में सैनिक गुण सर्वथा लुप्त हो गये थे क्योंकि महमूद और मसऊद के सेनापति और अफ़सर तुर्क थे—यथा अलतुन्तश, अर्सलान जादहिब, अरियरोक, बग्तगीन, बिल्कातगीन, नियाल्तगीन, नोश्तगीन, इत्यादि। ग़ज़नी के सम्राट् अपने नागरिक (सिविल) कर्म्मचारियों के साथ फ़ारसी,

और सेनापतियों और सैनिकों के साथ तुर्की भाषा बोला करते थ। (Elliot, History of India, ii. 81, 102).

पृष्ठ ९ मोतज़िला सम्प्रदाय—परमात्मा को कुछ ज्ञान नहीं। यह उनके परमात्मा के विशेषण-सम्बन्धी मन्तव्य का एक भाग है। मअमर इब्न अब्बाद अलसुलमी ने इस मत की विशेष पुष्टि की थी। यूनानी तत्त्वज्ञान के अध्ययन से इस सम्प्रदाय के धर्म्म-नेताओं ने प्रारब्धवाद के विरुद्ध मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा की रक्षा करने का उद्योग किया था। एक समय इन्होंने और इनके प्रतिवादियों ने अरबी में बड़ा साहित्य तैयार किया था जो कि अब प्रायः अप्राप्य है। इनकी अधिकतर पुस्तकें तर्कात्मक थीं। इनके वादरत पक्षपात के विरुद्ध ही अलबेरूनी का आक्षेप है। अपनी पुस्तक के विषय में वह स्पष्ट कहता है कि इसमें वादविवाद नहीं। जो पुस्तक अबू सहल के पास थी और जिससे उसके और हमारे ग्रन्थकार के बीच वाद-प्रतिवाद उत्पन्न हुआ वह सम्भवतः अलग़ज़ाली के बड़े पूर्वाधिकारी, अबुल हसन अलअशारी (मृत्यु ९३५ ई०), की "परमात्मा के विशेषणों पर" नामक पुस्तक की सी होगी, जिसमें कि वह परमात्मा की सर्वज्ञता को न मानने के मोतज़िला सिद्धान्त पर आक्षेप करता है। उसी ग्रन्थकार ने ब्राह्मण, ईसाई, यहूदी और मग आदि इसलाम के विरोधियों के विरुद्ध एक भारी पुस्तक लिखी है।

धर्म्म और तत्त्वज्ञान के इतिहास पर प्राचीन साहित्य के विषय में हमारी जानकारी बहुत ही अपर्याप्त है और अधिकतर पुस्तकों के नामों तक ही परिमित है। शहरस्तानी (मृत्यु ११५३ ई०) की पुस्तक एक नूतन संक्षेप या مختصر है। अलनादिम की फ़िहरिस्त में धर्म्मों के इतिहास पर लिखी गई एक उत्कृष्ट पुस्तक का नाम मिलता है। वहीं ग्रंथकार सिद्धान्तों और धर्म्मों पर अलहसन इब्न मूसा अलनौबख़ती

रचित एक पुरानी पुस्तक का उल्लेख करता है। इसने पुनर्जन्म के विरुद्ध भी लिखा था। इब्न हज़्म नामक स्पेन देश के एक अरबी (१०६४ ई० में मरा) की इसी प्रकार की एक पुस्तक के कुछ भाग वायना और लीडन के पुस्तकालयों में अभी तक पाये जाते हैं। Mr. C. Schefer ने अबुल मुआली मुहम्मद इब्न उकैल रचित 'किताब बयानुल अदयान' كتاب بيان الاديان नामक एक छोटी सी फ़ारसी पुस्तक प्रकाशित की है। यह पुस्तक राजा मसऊद इब्न इबराहीम (१०८९ से १०९९ ई० तक) के शासन काल में ग़ज़नी में, अलबेरूनी के कोई पचास वर्ष बाद लिखी गई थी। इसमें अलबेरूनी की इस पुस्तक का उल्लेख है। इसे वह 'आराए उलहिन्द' آراءالهند नाम से पुकारता है जिसका अर्थ है 'हिन्दुओं के सिद्धान्त'। एक और ग्रंथकार जिसने धर्म्मों के इतिहास-सम्बन्धी विषयों पर कुछ लिखा मालूम होता है सजिस्तान का कोई अबू याकूब है। अलबेरूनी ने उसकी "किताब करफुल महजूब" से पुनर्जन्म पर उसके सिद्धान्त का प्रमाण दिया है।

पृष्ठ ८ अलेरानशहरी और ज़रकान। हिन्दुओं के विश्वास पर अलबेरूनी से पूर्व जो जो मुसलमानों की बनाई पुस्तकें थीं उनका उसने कोई उपयोग नहीं किया; इससे स्पष्ट है कि वह उन्हें ऐतिहासिक जानकारी का वास्तविक स्रोत नहीं समझता था। अपनी सारी पुस्तक में जो बातें उसने लिखी हैं वे सब की सब या तो उसने भारतीय पुस्तकों से ली हैं या स्वयम् अपने कानों सुनी हैं। इस नियम का अपवाद केवल अलेरान शहरी के पक्ष में ही हुआ है जो कि धर्म्मों के इतिहास पर एक व्यापक पुस्तक का रचयिता था। ऐसा जान पड़ता है कि अलबेरूनी को इस पुस्तक का ज्ञान अपनी "काल-गणना" नामक पुस्तक लिखने से भी पहले से था क्योंकि इसमें उसने

अलेरान शहरी के प्रमाण पर दो अवतरण, एक ईरानी और दूसरा आरमीनी ऐतिह्य, दिये हैं। देखो "Chronology of Ancient Nations," etc. Translated by Dr. C. Edward Schau, London, 1879, pp. 208,211.)

अरबी लोग ऑक्सस नदी से लेकर यूफ्रेटीज़ नदी तक समस्त सीसानी साम्राज्य का नाम ईरान शहर समझते थे। अबू अली अहमद इब्न उमर इब्न दुस्त ने अपनी भूगोल की पुस्तक में इस सारे प्रान्त का वर्णन करते हुए इन्हीं अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया है। यदि ईरानशहर का अर्थ यहाँ उस स्थान से है जहाँ कि ग्रंथकार अबुल अब्बास का जन्म हुआ था तो हमें इसका अर्थ अधिक परिमित समझना चाहिए जैसा कि अलबलाद हुरी ने लिखा है, क्योंकि यह सीसानी साम्राज्य के एक खण्ड अर्थात् ख़ुरासान के चार प्रान्तों में से भी एक का नाम है। निशापुर,- तूस, और हरात के बीच के प्रदेश को ख़ुरासान कहते हैं। इसलिए हमारी सम्मति में अलेरान शहरी का अर्थ इस विशेष प्रान्त का अधिवासी है। (देखो अलमकद्दसी, पृष्ठ ३।३, याक़ूत, i. 418)। एक और ऐतिह्य के अनुसार ईरान शहर निशापुर की भी संज्ञा थी, अर्थात् प्रान्त का नाम इसकी राजधानी के लिए प्रयुक्त होता था।

ईरान शहरी की पुस्तक में .ज़ुर्कान नामक एक अज्ञात लेखक का बौद्ध धर्म्म पर एक निबंध सम्मिलित है। यद्यपि अलबेरूनी इस लेखक का बहुत अवज्ञापूर्वक उल्लेख करता है, और यद्यपि भूमिका के अतिरिक्त उसने इस का और कहीं भी नाम नहीं लिया, तो भी जो बातें उसने अपनी इस पुस्तक में बौद्ध विषयों पर लिखी हैं वे सब इसी से ली जान पड़ती हैं। इस प्रकार की जानकारी बहुत उच्च कोटि की नहीं; परन्तु बौद्ध-धर्म्म-विषयक बातों के जानने के लिए अलबेरूनी

के पास और कोई शास्त्रीय या अलिखित साधन नहीं देख पड़ते। जिन हिन्दुओं के साथ उसका मेल जोल था वे ब्राह्मण धर्म्म के अनुयायी थे, बौद्धमतावलम्बी न थे। ख़्वारिज़्म, जुर्जान, गज़नी के चारों ओर के प्रदेश, और पंजाब आदि देशों में, जहां कि वह रहा था, बौद्धमत के अध्ययन के लिए उसे कोई सुयोग न था। साथ ही गज़नी और अन्य स्थानों में जो असंख्य सिपाही, अफ़सर, शिल्पी, और अन्य भारतीय लोग महमूद के नौकर थे उन में बौद्ध प्रतीत नहीं होते, अन्यथा अलबेरूनी अपने ज्ञान-भण्डार के इस रिक्त स्थान को भरने का अवश्य यत्न करता।

फ़िहरिस्त (ed. G. Felügel, Leipzig, 1871) में पृष्ठ ٣٤٥-٣٥١ पर भारत और चीन के विषय में एक विस्तृत विवरण है। यह इस आधार पर है:—

१. यम्बू के अबू-दुलफ़ का वृत्तान्त। इसने कोई ९४१ ई० में भारत और चीन की यात्रा की थी।

२. नजरान से एक ईसाई सन्यासी का वृत्तान्त। इस ने ९८० से ९८७ ई० तक नस्टोरियन कैथोलिकोस Nestorian Katholikos) की आज्ञा से भारत-भ्रमण किया था।

३. एक अज्ञात लेखक की ८६३ ई० की पुस्तक। यह पुस्तक प्रसिद्ध अलकिन्दी के हाथों में गुज़री थी।

शहरस्तानी (ed.Cureton, London, 1846) में भारतीय विषयों पर जो परिच्छेद है उसका मूल ज्ञात नहीं। यह निश्चय है कि ग्रंथकार ने अलबेरूनी की पुस्तक का उपयोग नहीं किया।

पृष्ठ ९ यूनानी, सूफ़ी, ईसाई। हिन्दू विचारों को स्पष्ट करने और उन्हें मुसलमान पाठकों को भली भांति समझाने के लिए अलबेरूनी (१) यूनानियों, (२) ईसाइयों, (३) यहूदियों, (४) मनी-

चियों, और (५) सूफ़ियों के उन से मिलते जुलते विचार उपस्थित करता है।

इसलाम में अद्वैतवाद या सूफ़ियों का सिद्धान्त यूनानी तत्त्व-ज्ञान के नवीन-अफलातूनी (Neoplatonic) और नवीन-पायथे-गोरियन मत के इतना ही समीप है जितना कि हिन्दू तत्त्ववेत्ताओं के वेदान्त-मत के। हमारे ग्रंथकार के समय में पहले ही से इस मत की बहुत की पुस्तकें मौजूद थीं।

मानी और मनीचियों के विषय में टीका-टिप्पणी और उनकी पुस्तकों के अधिकांश अवतरण सम्भवतः अलेरान शहरी से लिये गये हैं। पर यह बात याद रहे कि हमारे ग्रंथकार के समय में मानी की पुस्तकें प्राप्तव्य थीं। अलबेरूनी ने मानी की निम्नलिखित पुस्तकों के अवतरण दिये हैं:—"रहस्यों की पुस्तक "كتاب الاسرار" तथा प्राणीभण्डार "كنز الاحياء" -

यहूदियों के विषय में, हमें ज्ञात नहीं कि उन दिनों मध्य एशिया में यहूदी उपनिवेश कितने फैले हुए थे। सम्भवतः अलबेरूनी ने यहूदियों के विषय में भी अलेरान शहरी से ही ज्ञान प्राप्त किया था।

ईसाई मत-विषयक ज्ञान अलबेरूनी को अपने अग्रगामी अलेरान शहरी की पुस्तक के अतिरिक्त और भी दूसरे मार्गों से प्राप्त हुआ होगा, क्योंकि उसके समय में यह मत मध्य एशिया में दूर दूर तक फैल चुका था—यहां तक कि महमूद की कचहरी में—ग़ज़नी में—भी (यथा अबुलख़ैर अलख़म्मार) ईसाई रहते थे। इस बात का अभी तक पूर्ण रीति से पता नहीं लग सका कि नस्टोरियन ईसाई मत पूर्व दिशा में मध्य एशिया के परली तरफ़ चीन की ओर और उसके अन्दर कहाँ तक फैला था। अलबेरूनी अपनी जन्म-भूमि ख़्वारिज़्म

(ख़ीवा) और ख़ुरासान में ईसाइयों का उल्लेख करता है, न केवल नस्टोरियन का ही बल्कि मेलकाईट का भी । पर वह जैकोबाइट्स को बिलकुल नहीं जानता ।

अलबेरूनी ने यूनानी तत्त्वज्ञान कहाँ सीखा और किसने उसे अफलातू के कथनोपकथनों से परिचित कराया इस विषय में वह स्वयम् कुछ नहीं कहता । जिन अरबी अनुवादों का उसने उपयोग किया और जो केवल कामचलाऊ मात्र ही शुद्ध थे वे सिरियक भाषान्तरों से किये गये थे । अलबेरूनी का एक ऐसे मनुष्य से व्यक्तिगत परिचय और शास्त्रीय सम्बन्ध था जो सारे मुसलिम जगत् में उस समय यूनानी पाण्डित्य के प्रथम प्रतिनिधियों में से एक था । इसका नाम था अबुलख़ैर अलख़म्मार । यूनानी विद्या अलबेरूनी ने शायद इसी से सीखी थी । अबुल ख़ैर का जन्म सन् ९४२ हिजरी में बग़दाद नगर में एक ईसाई घराने में हुआ था । कुछ दिन वह ख्वारिज्म में रहा; फिर जब महमूद ने उस देश को अपने साम्राज्य में मिला लिया तो अलबेरूनी और अन्य लोगों सहित वह १०१७ ई० में ग़ज़नी को चला गया । महमूद के शासन-काल में ही अर्थात् १०३० ई० के पूर्व उसका ग़ज़नी में देहान्त हो गया । कहते हैं अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह मुसलमान हो गया था । वह एक प्रसिद्ध वैद्य था । उसने वैद्यक और यूनानी दर्शन शास्त्र पर पुस्तकें लिखीं । इसके अतिरिक्त उसने यूनानी तत्त्ववेत्ताओं के ग्रंथों का सिरियक भाषा से अरबी में अनुवाद किया । इसकी पुस्तकों में से 'ईसाई और यूनानी तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्त की तुलना की पुस्तक,' 'विधाता और नियमों के विषय में प्राचीन यूनानी तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्त का समाधान,' 'प्रकृति पर' 'उल्का शास्त्र पर' इत्यादि पुस्तकें उल्लेख योग्य हैं । वह ईरानी. वंश का मालूम होता है । देखो शहरज़ूरी की पुस्तक

نزهة الارواح و روضة الافراح यह बात विचारणीय है कि अलबेरूनी हिन्दू सिद्धान्तों की अफलातू के सिद्धान्तों के साथ तुलना करते हुए सगस्थनीज़ का अनुकरण करता है ।

पृष्ठ ९ सांख्य और पातञ्जल। पहला शब्द यहाँ साङ्गु سانک लिखा है । इस में सन्देह है कि दूसरे को पतंजल पढ़ा जाए या पतञ्जलि । अलबेरूनी प्रायः کتاب پاتنجل कहता है जिसका अर्थ है पतञ्जलि की पुस्तक , या पुस्तक (जो) पतञ्जलि या पातञ्जल (कहलाती है) । केवल एक स्थान पर वह صاحب کتاب پاتنجل अर्थात् पतञ्जलि की पुस्तक का रचयिता कहता है । यहाँ پاتنجل से अभिप्राय पुस्तक के नाम से है न कि ग्रंथकार के नाम से । अरबी का दीर्घ आ पतंजलि की अपेक्षा पातञ्जल उच्चारण को अधिक दर्शाता है । पर यह कोई अटूट नियम नहीं । कई बार लघु भारतीय अ अरबी में दीर्घ आ करदिया जाता है जैसे—तल تال-ब्रह्म براهم गन्धर्व گاندهرب मध्यलोक مات لوك सुतल سوتال, विजय नन्दिन بجیانند, पर پار, वसु باسو, महातल مهاتل, अलबेरूनी ने अपने सांख्य और पतञ्जलि के भाषान्तरों का एक बड़ा भाग इस पुस्तक में मिला दिया है ।

पृष्ठ २२ अलबेरूनी की तरह कवि मीर खुसरो ने अनो नूह-सिपिहर में श्रेष्ठ भाषा और साधारण बोली पर कुछ लिखा है । उसने संस्कृत शब्द का उल्लेख किया है परन्तु अलबेरूनी केवल हिन्दी ही कहता है । (V. Elliot, "History of India," iii 562, 556 ; also V. 570, "On the Knowledge of Sanscrit by Mohammadans.")

नागरिक शासन और सेना-विभाग दोनों में बहुत से हिन्दू दुभा-षिये महमूद के यहां नौकर थे । सेना में बड़ा भाग हिन्दू अफ़सरों के अधीन हिन्दू सिपाहियों का था । इन में से कई एक किर्मान, ख्वारिज़्म और मर्व में अपने मुसलमान स्वामियों की ओर से लड़े थे । इस सेना

में कितने ही सिपाही कन्नर अर्थात् कर्नाटदेश के अधिवासी थे । इन दुभाषियों का एक नमूना जयसेन का पुत्र तिलक है । कश्मीर में विद्या समाप्त करने पर पहले वह क़ाज़ी शीराज़ी बुलहसन अली का (जोकि महमूद और मसऊद के अधीन एक उच्च नागरिक पदाधिकारी था) दुभाषिया बना; फिर अहमद इब्न हसन मैमन्दी का बना जोकि पहले महमूद के अधीन (१००७ से १०२५ ई०) और दूसरी बार (१०३० से १०३३ तक) मसऊद के अधीन महामंत्री था । और पीछे से वह एक सेना का सेनापति बन गया । (Elliot ii, 125—127) । ये दुभाषिये लोग हिन्दी बोलते और अरबी अक्षरों में उसे लिखते थे । ये फ़ारसी बल्कि तुर्की भी बोलते थे क्योंकि उस समय सेना में इसी भाषा का प्रचार था । सम्भवतः इसी मंडल में उर्दू या हिन्दुस्तानी का जन्म हुआ । इस भाषा का पहला लेखक मसऊद नाम का एक व्यक्ति हुआ है । इस का देहान्त सम्राट् महमूद की मृत्यु (५२५ हिजरी—११३१ ईसवी) के कुछ वर्ष ऊपर एक शताब्दी बाद हुआ । (Cf. A. Sprenger, "Catalogue of the Arabic, Persian, and Hindustany Manuscripts of the Libraries of the King of Oudh," Calcutta 1854, pp.407, 485.)

पृ १२ الاحتيال نضبطها بتغيرالنقط والعلامات و نقيدها باعراب اما مشهور , اما معمول का हमने यह अनुवाद किया है:—अपने वर्ण-विन्यास-सम्बन्धी चिह्नों और लग-मात्रा को बदलना पड़ेगा और विभक्तियों के अन्तिम भागों को या तो साधारण अरबी नियमों के अनुसार या इसी के निमित्त बनाये विशेष नियमों के अनुसार उच्चारण करना पड़ेगा ।

संस्कृत में एक शब्द एक या दो या तीन संयुक्त व्यञ्जनों के साथ आरम्भ हो जाता है (जैसे द्वि, ज्ञा, स्त्र), पर अरबी में यह

बात असम्भव है। इसमें प्रत्येक शब्द एक ही व्यञ्जन के साथ आरम्भ और समाप्त होता है। अलबेरूनी की तुलना का सम्बन्ध, इसलिए, अरबी के साथ नहीं हो सकता।

फ़ारसी में शब्दों के आरम्भ और अन्त के विषय में अलग नियम हैं। प्राचीन ईरानी बोली में शब्द का आरम्भ दो संयुक्त व्यञ्जनों के साथ हो सकता था (जैसा कि फ्रतम, ख़स्प) पर नवीन फ़ारसी एक ही व्यञ्जन के साथ शब्द को आरम्भ होने की आज्ञा देती है यथा फ़रदम, शब। परन्तु शब्द के अन्त में दो संयुक्त व्यञ्जन हो सकते हैं, जैसे याफ़्त يافت वख़्श بخش, ख़ुश्क خشك, मर्द مرد इत्यादि।

नवीन फ़ारसी में थोड़ी सी संख्या ऐसे शब्दों की भी है जो वस्तुतः दो व्यञ्जनों خو के साथ आरम्भ होते हैं, यथा خواب, خويش, خواستن, خواهر, استخوان.

पृष्ठ २५ सगर—सगर की कथा विष्णुपुराण में मिलती है।

पृष्ठ २६ शमनिय्या—अरबी में बौद्धों को शमनिय्या कहते हैं। यह संस्कृत के प्राकृत रूप श्रमण से निकला है। المحمرة लाल वस्त्रों वाले लोग (रक्तपट) इस का आशय बौद्ध भिक्षुओं के काषाय वस्त्रों से है। बौद्ध धर्म्म के पश्चिमीय-विस्तार के विषय में ग्रंथकार के कथनों की पड़ताल करना, ऐतिहासिक ऐतिह्य के सर्वथा अभाव के कारण, अत्यन्त कठिन है। पर यह निश्चय है कि यह धर्म्म मोसल तक नहीं पहुँचा। सब से पहले इस बात की जांच करना आवश्यक है कि ईरान के प्राचीन इतिहास और संस्थाओं का वर्णन करते समय अलबेरूनी अपने समय के दक़ीक़ी, असदी, और फ़िरदौसी आदि कवियों से कहाँ तक प्रभावित था। इन कवियों ने सामानी और ग़ज़नी के

साम्राज्यों के राजमंत्रियों की ज्ञानवृद्धि के लिए ईरानी ऐतिह्य को श्लोक-बद्ध करदिया था क्योंकि ये नीतिज्ञ सब ईरानी वंश के थे ।

याद रहे कि सिन्ध देश के नगरों के पथिक जिन्हें उन नगरों के अधिवासियों ने मुसलिम विजेताओं के पास उनके पहले आक्रमण पर, भेजा था श्रमण ही थे (देखो अलबलाद हुरी)। इससे मालूम होता है कि उस समय, कोई ७१० ई० में, सिन्ध बौद्ध धर्म्मावलम्बी था।

पृष्ठ २१ मुहम्मद इबन अलक़ासिम–इस सिन्ध-विजेता का शासनकाल ७०७ ई० से ७१४ ई० तक है। अलबलाद हुरी (पृ० ४३५), इबन अलअतहिर और दूसरे लोगों ने उसका इबनलमुनब्बिह के स्थान में मुह इबनलक़ासिम इबन मुहम्मद नाम से उल्लेख किया है । जिस समय अलबेरूनी ने यह पुस्तक लिखी उस समय सिन्ध में लोग ३५० वर्ष पहले ही से इसलाम को जानते थे, और यह मत वहाँ ३२० वर्ष (कोई ७१० ई०) से स्थापित हो चुका था। सिन्ध-विजय के इतिहास पर देखो अलबलाद हुरी की पुस्तक "किताबुल फुतूह" पृ० ४३ Translated by Reinaud, "Fragments" p. 182; Elliot, History of India, i. 193.)

बहमन्वा के स्थान में बम्हन्वा = अल्मवाट पढ़ो।

यूनानी तत्त्वज्ञान के इतिहास के विषय में अलबेरूनी तथा उसके सहयोगियों की जानकारी का विशेष स्रोत क्या है इसका हमें कुछ ज्ञान नहीं। अरबी साहित्य में इस विषय पर शास्त्रीय ऐतिह्य की एक चौड़ी नदी बह रही है, परन्तु इस बात का अभी तक पता नहीं चला कि इस का स्रोत एक ही है या अनेक। जिन लोगों ने तत्कालीन यूनानी शिक्षा का आनन्द लिया था वे अधिकतर हर्रान के यूनानी मूर्तिपूजक या शाम देश के ईसाई थे। उन्होंने अपने अरबी प्रभुओं के लाभार्थ यूनानी पुस्तकों के अरबी और शामदेशीय भाषाओं में न

केवल भापान्तर ही किए वल्कि यूनानी विद्या और साहित्य के इतिहास पर साधारण पुस्तकें भी लिखीं । ये पुस्तकें सम्भवतः असकन्दरिया, एथन्स, अन्टियोच आदि के स्कूलों में प्रचलित इस विपय की किसी पुस्तक विशेष का छायानुवाद या मर्मानुवाद ही थीं । ग्रन्थकारों में से जिन लोगों ने ऐसी पुस्तकें लिखीं वे हुनैन इवन इसहाक़, उसका पुत्र इसहाक़ इवन हुनैन, और क़ुस्ता इवन लूका हैं । इनकी पुस्तकें या तो यूनानी महात्माओं के कथनों का संग्रह रूप थीं और या इतिहास-विपयक । ऐसा जान पड़ता है इन लोगों ने पोर्फ़ीरियस और अमोनियस की पुस्तकों का उपयोग किया था ।

पृष्ठ ३१ वह कौनसा उपास्य देव है । पतंजलि के इस अवतरण के अधिकांश का फ़ारसी भापान्तर अबुल मुआली मुहम्मद इवन उवैदुल्ला ने अपनी पुस्तक "किताबबयानल अद्‌यान" में इस प्रकार किया है ।

سوال کدامست آں معبود که همه کُن بتوفیق او راه با بند
بعبادت او- جواب آنکه همه اُمیدها بدوست و همه بیمها الخ -

पृष्ठ ३२ पतञ्जलि—अलवेरूनी का पतञ्जलि "पतञ्जलि के योग सूत्रों" से, जिस पर भोजराज की टीका है, सर्वथा भिन्न है । जो अवतरण इस पुस्तक में दिये गये हैं उनका भोजराज की टीका से कोई सम्बन्ध नहीं, यद्यपि टीकाकार के विचार कहीं कहीं अलवेरूनी के विचारों के सदृश हैं । दोनों पुस्तकों का अभिप्राय उस शास्त्र का स्पष्टीकरण है ।

पातञ्जल सूत्रों के अतिरिक्त एक और टीका का भी उल्लेख किया गया है । इस से अवतरण भी दिये गये हैं । यह वात ध्यान देने लायक़ है कि इस टीका के अवतरण सव के सब दार्शनिक ही

नहीं बल्कि स्पष्टतया पौराणिक भी हैं। इन में सृष्टि-उत्पत्ति-विषयक बातों, लोकों, मेरु पर्वत, और भिन्न भिन्न नक्षत्रों का वर्णन है। टीकाकार का नाम नहीं दिया गया। शायद यह बलभद्र हो।

पृष्ठ २१ गीता। अलबेरूनी के अवतरण वर्तमान 'भगवद् गीता' से लिये प्रतीत नहीं होते। यदि यह मान भी लिया जाय कि ग्रन्थकार ने अनुवाद करते समय मूल पुस्तक के शब्दों का बहुत कम ख़याल किया है और उनका यथासम्भव विशुद्ध अनुवाद देने का भी यत्न नहीं किया (जो अलबेरूनी की पुस्तक से प्रकट नहीं होता) तो भी बहुत से ऐसे वाक्य रह जाते हैं जिनका वर्तमान संस्कृत गीता में उनके सर्वथा अभाव के कारण, कुछ पता नहीं चलता। तो क्या फिर अलबेरूनी ने मूल संस्कृत के स्थान में किसी टीका से अनुवाद किया है? इस पुस्तक में दिये हुए अवतरणों के मूलवचन बहुत ही निश्चित और छोटे हैं। उनकी शब्द-रचना भी उत्तम है। लेख-शैली के ये गुण टीका में बहुत ही कम पाये जा सकते हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि अलबेरूनी के पास भगवद्गीता का जो संस्करण था वह हमारी परिचित वर्तमान गीता की पुस्तक से सर्वथा भिन्न था। यह अधिक प्राचीन होगा, क्योंकि इसमें योग के तत्त्व जो कि वर्त्तमान टीकाकारों की सम्मति में प्रक्षिप्त हैं नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त, यह अधिक पूर्ण होगी क्योंकि इसके अनेक वाक्य वर्तमान गीता में नहीं मिलते।

हिन्दुओं के साहित्य के इस बहुमूल्य ग्रन्थ-रत्न में उनके पूर्वज विद्वानों की अनेक पीढ़ियों ने नाना परिवर्तन किये हैं। पर आश्चर्य है कि जो संस्करण अलबेरूनी के समय में मिलता था वह अब नहीं मिलता।

यहाँ जो अवतरण दिये गये हैं उनका सार गीता के दशम अध्याय के तीसरे श्लोक से कुछ मिलता है ।

पृष्ठ १० सांख्य । अलबेरूनी के सांख्य और सांख्यप्रवचनम् में बहुत दूर का सम्बन्ध है। सांख्य-सूत्र में तो दुःखों के पूर्णतया दूर हो जाने का वर्णन है, परन्तु अलबेरूनी का सांख्य ज्ञान के द्वारा मोक्ष की शिक्षा देता है ।

अब अलबेरूनी के सांख्य की ईश्वर कृष्ण की सांख्य-कारिका से तुलना कीजिए। दोनों ज्ञान के द्वारा मोक्ष की शिक्षा देते हैं; दोनों का विषय बहुत स्थलों पर एक ही है; पर जो दृष्टान्त अलबेरूनी के सांख्य में पूरे पूरे मिलते हैं सांख्य-कारिका में उनकी ओर सङ्केत मात्र है।

तीसरे स्थान पर, जब हम गौडपाद के भाष्य की पड़ताल करते हैं तो यह अलबेरूनी के सांख्य से अभिन्न नहीं मालूम होता। हाँ, उसका इससे निकट सम्बन्ध अवश्य है। अलबेरूनी के बहुत से अवतरण थोड़े से परिवर्तन के साथ इसमें पाये जाते हैं। कई एक शब्दशः मिलते हैं। अलबेरूनी के दृष्टान्त भी प्रायः सभी गौडपाद में हैं।

पृष्ठ १८ परमात्मा अपनी सृष्टि के सदृश है, जब्रिया सम्प्रदाय की शिक्षा। जब्रिया, जबरिया, और मुजबरा नामक जो सम्प्रदाय है वह कहता है कि मनुष्य के कर्म्म परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। ये लोग अल-नज्जार के अनुयायी हैं।

अहलुल तशबीह का मत है कि परमात्मा अपनी सृष्टि के सदृश है । देखो अल-उत्बी कृत "किताबे यमीनी" (Translated by G. Reynolds, London) और अलशहरस्तानी कृत "धार्म्मिक और दार्शनिक सम्प्रदायों की पुस्तक" (ed. by Cureton).

पृष्ठ ४१ अहलस्सुफ़ा—ये कई एक निर्धन, शरणागत, और निरा-श्रय मनुष्य थे। मुहम्मद साहब के वास का प्रथम वर्ष उन्हों ने मदीना में—हज़रत की मसजिद के सुफ़ा में—व्यतीत किया था।

अबुल फ़तह अलबुस्ती अपने समय का एक प्रसिद्ध कवि था। वह उत्तरीय अफ़ग़ानिस्तान के अन्तर्गत बुस्त का अधिवासी था और वहाँ के शासक के यहाँ नौकर था। यह शासक सामानी कुल के अधीन था। जब सबुक्तगीन ने बुस्त विजय किया तो कवि ने इस की और इस के पुत्र महमूद की नौकरी की। मसऊद के शासन-काल में भी वह ग़ज़नी में जीवित था, क्योंकि वैहक़ी कहता है कि 'उसका बहुत अपमान हुआ है और उसे राजकीय अश्वशाला के लिए जल लाना पड़ता है।' वैहकी की सहायता से वह महामंत्री-अहमद इब्न हसन मैमन्दी का कृपापात्र बन गया। हाजी ख़लीफ़ा के कथनानुसार उसकी मृत्यु ४३० हिजरी (१०३९ ई०) में हुई। अधिक जानकारी के लिए देखो शहराज़ूरी कृत नुज़हतुल अरवाह (M.S. of the Royal Library, Berlin, MSS. Orient. Octav. 217); अलवैहकी कृत ततिम्मत सुवानुल हिक्मा" (M S. of the same Library, Petermann, ii 737) कहते हैं कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसने ट्रान्स औक्शियाना के खक़ान का दूत बन कर उस देश की यात्रा की और वहीं उसका शरीरपात हुआ।

पृष्ठ ४२ गैलेनस। अरबी में इसका नाम जालीनूस लिखा है। अल-बेरूनी ने इस की छः पुस्तकों के अवतरण दिये हैं यथा—

كتاب المعامه – كتاب البرهان – اخلاق النفس – كتاب قاطاجانس۔;

पृष्ठ ४३ प्लेटो। इसका अरबी नाम अफ़लातू افلاطن है। अल-बेरूनी ने इसकी निम्नलिखित तीन पुस्तकों के अवतरण दिये हैं।
1. Phaedo فاذن, 2. Timœus طيماوس, 3. Leges.

पृष्ठ ४९ गीता । इन की भगवद्गीता, अध्याय १५, श्लोक १४, १५ से तुलना करो ।

पृष्ठ ४९ अपोलोनियस । टायना के अपोलोनियस की इस नाम की यूनानी पुस्तक का मुझे पता नहीं लगा, परन्तु अरबी में यह كتاب في العلل विद्यमान है ।

पृष्ठ ५० पच्चीस तत्त्वों का सांख्य का सिद्धान्त ईश्वर कृष्ण कृत सांख्यकारिका पर गौडपाद की टीका में मिलता है ।

पृष्ठ ५१ वायुपुराण । पुराणों में से ग्रंथकार के पास आदित्य, मत्स्य, और वायुपुराण के कुछ खण्ड, और सम्भवतः सारा विष्णुपुराण था ।

पृष्ठ ५१ पाँच माताएं । यह ग्रथंकार की भारी भूल है । पांच माताओं के स्थान में पांच मान अर्थात् पंचमात्राणि (पञ्चतन्मात्राणि) चाहिए.।

पृष्ठ ५२ पोरफायरी Porphyry को अरबी में فرفوريوس लिखा है ।

पृष्ठ ५२ डायोजनीज़ Diogenes । अरबी नाम देव जानस लिखा है । इसी प्रकार Pythagoras पाईथेगोरस का नाम فوثاغورس (फ़ोसागोरस) लिखा है ।

पृष्ठ ५८ नर्तका । यह दृष्टान्त सांख्य-कारिका पर गौडपाद के भाष्य में भी पाया जाता है ।

पृष्ठ ६४ वासुदेव अर्जुन को कहते हैं । इस अवतरण की भगवद्-गीता अध्याय ४ श्लोक ५, तथा अध्याय १२ श्लोक १४—२०, और अध्याय २ श्लोक १३ से तुलना करो । शेष अवतरणों का आशय गीता अध्याय २ श्लोक २१, २२, २३, २४, २६, २७, १३ तथा अ० ४, श्लोक ४, ५, ६, ७ में मिलता है ।

पृष्ठ ६७ विष्णु-धर्म्म । अलबेरूनी इस पुस्तक से बहुत अव-तरण देता है । इस के मूल संस्कृत का कुछ पता नहीं मिला क्योंकि यह विष्णु-स्मृति या विष्णु-सूत्र, या वैष्णव-धर्म्मशास्त्र से सर्वथा

भिन्न है। इसके बहुत से अवतरण जो यहाँ दिये गये हैं वज्र और मार्कण्डेय मुनि में तथा राजा परीक्ष (परीक्षित) और शतानीक ऋषि में बातचीत है।

विष्णु-धर्मोत्तर पुराण नाम की एक और पुस्तक का पता भी चला है। सम्भव है अलबेरूनी का विष्णु-धर्म्म यही पुस्तक हो।

पृष्ठ ६० लक्ष्मी जिसने अमृत उत्पन्न किया। विष्णुपुराण में धन्वन्तरि के अमृत का प्याला लाने की कथा है न कि लक्ष्मी की। हस्तलेख में लक्ष्मण लिखा है, पर ग्रन्थकार का तात्पर्य लक्ष्मी देवी से है न कि राम के भाई लक्ष्मण से। लिखते समय अलबेरूनी ने लक्ष्मी को भूल से पुरुष समझा है, नहीं तो वह لکشمن के स्थान में لکشمة लिखता।

अलबेरूनी ने संस्कृत शब्द अमृत का अरबी अनुवाद इनाअ किया है जिसे उसके पाठकों ने शायद ही समझा हो।

पृष्ठ ६० वराहमिहिर। इस लेखक की पुस्तकों में से निम्नलिखित के अवतरण अलबेरूनी ने दिये हैं:—

१. बृहत्संहिता।

२. बृहज्जातकम्।

३. लघुजातकम्।

४. पञ्चसिद्धान्तिका।

इनके अतिरिक्त अलबेरूनी इसी लेखक की दो और स्तपुकों—षट्पञ्चाशिका-तथा هور سج ستری-होराविंशोत्तरी—का भी उल्लेख करता है, पर इनके अवतरण उसने नहीं दिये। शायद योग यात्रा और तिकनी (?) यात्रा नामक दो पुस्तकों का कर्त्ता भी यही है। इनके सिवा कई एक टीकाओं का भी उल्लेख है—यथा कश्मीर के उत्पल की बृहत् संहिता पर और बलभद्र की बृहज्जातकम् पर टीका। अलबेरूनी वराहमिहिर को

'एक सच्चा वैज्ञानिक', कह कर उसकी प्रशंसा करता है और उस को अपने से ५२६ वर्ष पहले हुआ बतलाता है। इस से वराहमिहिर की तिथि ५०४ ई० ठहरती है। अलबेरूनी ने बृहत् संहिता तथा लघुजातकम् दोनों का अरबी में भाषान्तर किया था।

पृष्ठ ७१ प्रोक्लस। इसे अरबी में एक स्थान में برروقلس और दूसरे स्थान में ابرروقلس। लिखा है।

पृष्ठ ७२ गद्दी और सिंहासन—सिंहासन (الكرسي) और गद्दी (العرش)। कुरान में मुहम्मद साहब इन दो शब्दों से परमात्मा के सिंहासन का उल्लेख करते हैं। मुसलमान ब्रह्मज्ञानियों में इस विषय पर बड़ा विचार होता रहा है।

पृष्ठ ७४ विष्णु-पुराण।—यह प्रकरण विष्णु-पुराण के द्वितीय अंश के छठे अध्याय में पाया जाता है। नरकों के नामों का जिस क्रम में अलबेरूनी ने उल्लेख किया है उसका मूल (संस्कृत) से कुछ भेद है।

अलबेरूनी	मूल (संस्कृत)
रौरव	रौरव
रोध	रोध
तप्तकुम्भ	शूकर
महाज्वाल	ताल
शवाल	५. तप्तकुम्भ
कृमीश	तप्तलौह
	महा ज्वाल
लालभक्ष	लवण
विशसन	विमोह
अधोमुख	१०. कृमिभक्ष
१०. रुधिरान्ध	कृमीश

अलबेरूनी	मूल (संस्कृत)
रुधिर	लालभक्ष
वैतरणी	वेधक
कृष्ण	विशसन
असिपत्रवन	१५ अधोमुख
१५ वन्हिज्वाल	पायवह
सन्दंशक	रुधिरान्ध
	वैतरणी
	कृष्ण
	२० असिपत्रवन
	वह्निज्वाल
	सन्दंश
	श्वभोजन

(यह क्रम विल्सन वाली और हाल साहब की प्रति में मिलता है। और संस्कृत प्रतियों से इस का भेद है)

पृष्ठ ७९ बर्ज़ख़ । इस का क़ुरान २३, १०२; २५, ५५; ५५, २० में वर्णन है ।

पृष्ठ ८० एक ब्रह्मज्ञानी । पुनर्जन्म की चार श्रेणियों के विषय में जो वचन है उसका फ़ारसी अनुवाद अबुल मुआली मुहम्मद इब्न उबैदुल्ला ने अपनी "बयानुल अदयान" नामक पुस्तक में दिया है ।

पृष्ठ ८१ वैयाकरण जोहनीज़ को अरबी में يحيى النحوى लिखा है ।

पृष्ठ ८५ सुख जोकि वास्तव में दुःख हैं । तुलना करो गीता अध्याय ५, श्लो० २२ से ।

पृष्ठ ९१ तीन आदि गुण या शक्तियों से मतलब रजस्, तमस् और सत्त्व से है ।

पृष्ठ ९४ हिन्दू धर्म की नौ आज्ञाएं। इन में से पाँच का उल्लेख योग सूत्रों में है।

पृष्ठ ९० विष्णु-धर्म्म में। अरबी में परीच लिखा है परीचित नहीं।

पृष्ठ ९९ शरीर के नौ दरवाज़े। देखो भगवद्गीता अ० ५, श्लो०१३.

पृष्ठ १०१ सांख्य। कुम्हार के चक्र से तुलना सांख्य-कारिका में भी मिलती है।

पृष्ठ १०५ सूफ़ी लोग कुरान की इस आयत। जब मुहम्मद से ज़ुलक़र-नैनी (सिकन्दर) के विषय में जिज्ञासा हुई तो उसने कहा—"हम (परमात्मा) ने उसके लिए पृथ्वी पर स्थान ख़ाली किया है" या जैसे सेल महाशय ने अनुवाद किया है कि "हमने पृथ्वी पर उसके लिए स्थापित किया है।" जिसका अर्थ यह है कि "हमने उसे पृथ्वी पर एक चिरस्थायी प्रभुत्व या शक्ति का आसन प्रदान किया है। इस प्रभुत्व या शक्ति का जो अर्थ सूफ़ी लोग अपने मतानुसार लेते हैं वह योगदर्शन के पूर्णतया अनुकूल है।

पृष्ठ १०७ अमोनियस। इसे अरबी में امونيوس लिखा है। यह नवीन अफलातूनी मत का तत्त्ववेत्ता था। अरबी लोगों से इस का परिचय अरिस्टॉटल (अरस्तू) के टीकाकार के रूप में था।

यहां पर हेरेक्लीज़ से तात्पर्य Heraclides Ponticus हेराक्लाई-डीज़ पौन्टीकस से मालूम होता है।

पृष्ठ १०९ ब्रह्म की अश्वत्थ वृक्ष से उपमा भगवद्गीता अध्याय १५ श्लोक १ से ६ तक, तथा अ० १०, श्लोक २६ में मिलती है।

पृष्ठ १११ अबूबकर अश्शिवली पर देखो इब्न ख़ल्लिकान (translated by De Slane, i, 511-513); अबुल मुहासिन, "पुरावृत्त"। वह बग़दाद में रहता था; जुनैद का शिष्य था, बग़दाद में ३३४ हिजरी = ९४६ ई० में उसकी मृत्यु हुई और वहाँ ही उसे दबाया गया। अबू

यज़ीद अलविस्तानी पर देखो इबन ख़ल्लिक़ान। इसका २६१ हिजरी = ८७५ ई० में देहान्त हुआ। जामी ने इन दो ईश्वरदर्शनवादियों पर अपनी "नफ़हतुल उन्स" में कई अवतरण देकर लेख लिखे हैं।

पृष्ठ ११४ गीता पुस्तक में। पहला अवतरण तीन गुणों में से एक के प्रधान होने के विषय में भगवद्गीता अ० १७, श्लो० ३, ४ तथा अ० १४, श्लो० ६-८ में देखो।

पृष्ठ ११५ लोग कहते हैं कि ज़र्दुश्त—ग्रंथकार को फ़ारसी शब्द देव (प्रेतात्मा) और संस्कृत शब्द देव (देवता) का ज्ञान था। इसी रीति से वह अर्थों की असंगति को स्पष्ट करने का यत्न करता है।

पृष्ठ १२१ सुम्बल। एक प्रकार की सुगंधित घास है। इसे अंग्रेज़ी में Andropogon Nardus कहते हैं।

पृष्ठ १२२ सिकन्दर की कथा। Pseudo-Kallisthenes(ed. Didot) की कल्पित कथा से ली गई है जिसे कि पूर्वीय पण्डितों ने भूल से एक ऐतिहासिक लेख समझ लिया है।

पृष्ठ १३० वासुदेव ने उत्तर दिया। पहला अवतरण भगवद्गीता अध्याय १८, श्लोक ४१—४५ से और दूसरा अध्याय २, श्लो० ३१—३८ से मिलता है।

पृष्ठ १३२ वासुदेव। गीता का यह अवतरण भगवद्गीता अध्याय ९, श्लोक ३२, ३३ से बहुत मिलता है।

पृष्ठ १२१ माजून फ़लोनिया-अफ़लन नामक वैद्य का बनाया हुआ एक विशेष अवलेह।

पृ० १३६ शान्तनु। देखो विष्णु-पुराण, चतुर्थ अंश, बीसवाँ अध्याय। पाण्डु के शाप की कथा महाभारत के आदि पर्व में है।

व्यास। इसकी माता का नाम सत्यवती है। इस के जन्म का वर्णन महाभारत के आदि पर्व में है।

पृ० १३८ पञ्चीर—ग्रंथकार का अभिप्राय हज़ारा प्रदेश, स्वात, चित्राल, और काफ़िरिस्तान आदि हिन्दूकुश के पार्वतीय प्रदेशों से है जोकि फ़ैज़ावाद से कावुल तक जाने वाली रेखा तथा कश्मीर के वीच वीच स्थित हैं। यह वात सव कोई जानता है कि तिव्वती जातियों में वहु-स्वामित्व की प्रथा प्रचलित है। पञ्जाव में वहु-स्वामित्व पर देखो Kirkpatrick in "Indian Antiquity." जिस पञ्चीर का ग्रंथकार ने उल्लेख किया है वह कावुल-रोद की उपनदी है। एक और पञ्चीर का उल्लेख याक़ूत नामक एक अरवी भूगोल शास्त्रज्ञ ने किया है। यह वाख़्तर प्रान्त (Bactriana) में एक नगरी थी जिस में कि चांदी की वड़ी वड़ी खानें थीं।

पृष्ठ १४० धर्शावार गिरशाह। यह वास्तव में پدشوار گرشاه अर्थात् पदशवारगिर का शाह या तवरिस्तान का राजा (यथा गीलानशाह = गीलान का शाह) मालूम होता है।

पृष्ठ १४२ रोमूलस की कथा जोएनीस मलालास के क्रोनोग्राफिया (Chronographia of Joannes Malalas, book vii) से लीगई है।

पृष्ठ १४३ अम्बरीप की कथा विष्णु-धर्म्म से ली प्रतीत होती है। सम्भवतः नभाग के पुत्र अम्बरीप से अभिप्राय है।

पृष्ठ १४८ जलम इब्न शैवान। पहले नाम का उच्चारण अटकल से किया है। इस कर्मातवंशी राजा का इतिहास अज्ञात है। महमूद ने शासन की डोर हाथ में लेने के नौ वर्ष पश्चात्, अर्थात् राजत्व को वलात् दवा वैठने केसात वर्ष पश्चात्, १००६ ई० में, मुलतान पर आक्रमण किया था। राज्याधिकार लेलेने के वाद भी उसने सिक्कों पर और सार्वजनिक प्रार्थना में अपने सामानी प्रभुओं का नाम रहने दिया था। और कर्मात वंश के सव से वड़े शत्रु और निग्रहकारक ख़लिफ़ अलक़ादिर से, जोकि उस समय मुसलिम जगत् में सारे औचित्य का स्रोत समझा

जाता था, अभिषेक रूप एक उपाधि और एक मान-परिच्छद पाया था। देखो Elliot, "History of India," ii., p. 441.

अरबी लोग प्रत्येक प्रकार के शब्द का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते। और न उनकी लिपि में ही प्रत्येक शब्द शुद्ध लिखा जा सकता है। इसलिए अलबेरूनी को विदेशीय शब्दों को अरबी ढांचे में ढालने की आवश्यकता पड़ी। नीचे हम ऐसे ही शब्दों की एक सूची देते हैं ताकि पाठकों को पता लग जाए कि इन में किस प्रकार परिवर्तन हुआ है।

असली नाम	अरबी
Bias	بيوس
Priene	فارين
Periander of Corinth	فاريانذروس القورنثى
Thales of Miletus	ثالس المليسوس
Chilon of Lacedæmon	كيلون اللقاذمونى
Pittacus of Lesbos	فيطيقوس لسبيوس
Cleobulus of Lindos	قيليبولوس لنذيوس
Asclepius	اسقليبيوس
Dionysos	ذيونوسيوس
Hippocrates	ابقراط
Demeter	ديميطر
Lycurgus	لوقرغوس
Syriac	سريانية
Psalter	زبور
David	داءود
Baal	بعلا
Ashtaroth	استروث
Hades	ايذس
Tartarus	طرطارس

असली नाम	अरबी
Empedocles	ابنادقلس
Zeus	زوس
Thora	تورية
Palastine	فلسطين
Uriah	اوريا
Salomo	سليمن
Manichœans	منانيت
Homer	اوميروس
Acheron	اقاروں
Heracles	هرقل
Koronos	قرودس
Phœnix	فونيكوس
Europa	اورفه
Asterios	اسطارس
Minos	منوس
Rhadamanthus	ردمنثوس
Zoroaster	زردشت
Dios	ديوس
Cecrops	ققرفس
Nectanebus	نقطنابوس
Artaxerxes	اردشير
Olympios	اولمفيدا
Philip	فيلبس
Aratos	اراطس
Magians	مجوس
Herbadh	هربذ
Karmatians	قرامطة
Commodus	قومودس
Hermes	هرمس

असली नाम	अरबी
Krates	اقراطس
Draco	دروقون
Minos	مينس
Mianos	ميانوس
Cyrus	كورس
Pompilius	فنفيلوس
Cnossus	قنوس
Apollo	افوللن
Romanus	روماناوس
Tausar	توسر